अध्याय-सूची

१—माङ्गलिका	३	३२—वेणु-वादन	१८६
२—गोकुल	८	३३—वस्त्रोद्धार	१९१
३—मथुरा	१४	३४—वक-वध	१९५
४—श्रीबलराम	२२	३५—व्योम-वध	१९९
५—श्रीकृष्णचन्द्र	२८	३६—अघ-अर्दन	२०३
६—कंस की कूटनीति	३८	३७—वन-भोजन	२१०
७—जय कन्हैयालाल की	४४	३८—विधि-विडम्बना	२१४
८—वंदे नंदनंदनं देवं	५३	३९—ब्रह्म-स्तुति	२२१
९—पूतना-परित्राण	६२	४०—गो-चारण	२२६
१०—दुग्धपान	७४	४१—कालिय-मर्दन	२३३
११—शकट-भञ्जन	७८	४२—धेनुक-वध	२४५
१२—नामकरण	८५	४३—दधि-दान	२५०
१३—भूमि का भाग्य	९०	४४—दुग्धदा की होली	२५५
१४—व्रजराज के प्राङ्गण में	९३	४५—प्रलम्ब का पाखण्ड	२५८
१५—अन्न-प्राशन	९९	४६—दावानल-पान	२६३
१६—तृणावर्त-त्राण	१०४	४७—गोवर्धन-पूजन	२६९
१७—वर्षगाँठ	१०९	४८—गिरिधर	२७५
१८—बालक्रीड़ा	११३	४९—गोविन्द	२८३
१९—मृद्-भक्षण	११८	५०—दिव्यदर्शन	२८८
२०—फल-विक्रयिणी	१२४	५१—चीर-हरण	२९४
२१—विप्र का सौभाग्य	१२८	५२—विप्र-पत्नियाँ	३०२
२२—व्रजजनानन्द	१३२	५३—मदन-विजय	३१०
२३—माखन-चोर	१३६	५४—मान-भङ्ग	३१९
२४—तस्कराणां पतये नमः	१३९	५५—महारास	३२८
२५—दामोदर	१४७	५६—सुदर्शन-उद्धार	३३३
२६—कर्ष-वेध	१५७	५७—शङ्खचूड़-वध	३३८
२७—गोकुल-परित्याग	१६१	५८—अरिष्ट-संहार	३४१
२८—वृन्दावन	१६९	५९—केशी-वध	३४६
२९—उधम	१७२	६०—अक्रूर का आगमन	३५१
३०—गोदोहन	१७६	६१—मथुरा-प्रस्थान	३६०
३१—गोपाल	१८१	६२—नगर-दर्शन	३७०

६३—रजक-मोक्ष ३७४
६४—सुदामा माली ३७८
६५—कुब्जा पर कृपा ३८१
६६—धनुर्भङ्ग ३८४
६७—गजोद्धार ३८८
६८—मल्ल-मर्दन ३९२
६९—कंस-कदन ३९९
७०—पितृदर्शन ४०२
७१—यादव महाराज उग्रसेन ४०५
७२—बाबा की विदाई ४०९
७३—माता रोहिणी मथुरा को ४१३
७४—उपनयन ४१८
७५—गुरुकुल में ४२३
७६—गुरुपुत्रानयन ४३२
७७—कुब्जा ४३९
७८—उद्धव व्रज में ४४२
७९—श्रीराधा ४५८
८०—भद्र ४६२

विप्र-पत्नियाँ

नालं द्विजत्वं देवत्वमृषित्वं वासुरात्मजाः। प्रीणनाय मुकुन्दस्य न वित्तं न बहुज्ञता॥
न दानं न तपो नेज्या न शौचं न व्रतानि च। प्रीयतेऽमलया भक्त्या हरिरन्यद् विडम्बनम्॥

—भागवत ७।७।५१,५२

'मुझे तो भूख लगी है।' मधुमङ्गल ने सुबल के कंधे पर हाथ रखा। सचमुच उसका मुख कुछ म्लान-सा हो रहा है।

'भूख तो मुझे भी जान पड़ती है; पर इस वन में तो कोई अच्छे फल भी नहीं देख पड़ते।' सुबल ने इधर-उधर देखा।

'मैं पहले कहता था कि दूर मत चलो। कलेऊ साथ लाये नहीं और भला, यहाँ कोई कैसे पहुँचेगा कलेऊ लेकर!' मधुमङ्गल भोजन के सम्बन्ध में धैर्य नहीं रख सकता। वह झल्लाया। सचमुच बालक आज दूर तक बढ़ आये हैं। मध्याह्न होने को आया। अवश्य कलेऊ लेकर आनेवाले उन्हें कहीं दूसरी ओर वनमें ढूँढ़ते होंगे। इधर आने की बात वे कैसे सोचेंगे। मथुरा की ओर आने के लिये तो बार-बार, नित्य मैया सबको मना करती है; पर इस गोपाल का क्या हो। वह नवीन वन देखने की ही उमंग में रहता है। गायों को नवीन वन में बढ़े तृण मिलते हैं, यह तो ठीक—पर आज यह जो कलेऊ नहीं आया सो?

'कन्हैया न नाचता है न गाता है, न कूदता है और न वंशी ही बजाता है। देखो न, वह कैसा थका-सा तमाल के नीचे बैठ गया है दाऊ के साथ। दोनों ही भूखे दीखते हैं।' भद्र को लगा कि कन्हैया का मुख सचमुच भूख से कुछ उदास लगता है। दाऊ भी तो चुपचाप बैठा है।

'मुझसे तो रहा जाता नहीं!' मधुमङ्गल बैठ गया और फिर लेट गया घास पर। सबने अनुभव किया कि वे बहुत भूखे हैं। वहीं उनकी मंडली बैठ गयी कोई उपाय सोचने।

'यह कनूँ ही सब उत्पात करता है; वह इधर न ले आता तो यह कठिनाई आती ही क्यों। उसी से कहो कि भोजन लाये!' श्रीदामा झल्लाया।

कन्हैया कोई उपाय चाहे तो निकाल सकता है!' भद्र ने भी वही बात कही, पर दूसरे ढंग से। उसका कनूँ अवश्य ऐसे समय उपाय सोच निकालने में बड़ा कुशल है, यह सब जानते हैं।

'अरे, तुम सब वहाँ क्या पंचायत कर रहे हो!' श्यामने सखाओं को दूर इस प्रकार कुछ मन्त्रणा करते, मण्डली बनाकर बैठे देखा तो पहिले दाऊ से कुछ कहा और फिर पुकारने लगा।

'कनू, मुझे भूख लगी है—बड़ी जोर की भूख!' मधुमङ्गल सबसे आगे दौड़ा। उसे लगा कि कन्हैया झट कहीं से भोजन निकाल देगा।

'तब तू पत्ती खा ले या फिर उस बड़े बछड़े के साथ घास चर!' श्याम ने मुख बनाकर चिढ़ाया उसे।

'गोविन्द!' भद्र ने उसका दाहिना हाथ अपने दोनों हाथों में ले लिया। 'सचमुच हम सब भूखे हैं, तू कोई उपाय सोच तो!'

'कन्हाई! आज यहाँ तक भला, कलेऊ कैसे आयेगा! अभी तो आया नहीं! लौटने में भी कितनी देर लगेगी!' सुबल ने श्रीदाम का हाथ दबाकर उसे बोलने से रोक दिया। श्रीदाम के बोलने पर कहीं कन्हैया उससे झगड़ने लगे तो भोजन की समस्या अटकी रह जायगी। बालकों ने दूर तक इधर-उधर जाकर, पेड़ों पर चढ़कर देख लिया है—कलेऊ लाता कहीं कोई दीखता नहीं। बड़ी देर हुई आज तो।

'इसमें सोचने की क्या बात है !' श्याम ने अँगुली से एक ओर संकेत किया। 'वह धुआँ उठ रहा है न, वहाँ मथुरा के ब्राह्मण यज्ञ कर रहे हैं। उनसे जाकर भोजन माँग लाओ।'

'वहाँ, वहाँ भोजन मिल जायगा ! वे ब्राह्मण भोजन दे देंगे ! चल तब !' सब उठ खड़े हुए !

'वे ब्राह्मण हैं न !' बात तो ठीक है। ब्राह्मण तो बड़े दयालु होते हैं, सीधे होते हैं।

'अरे ! प्रणाम करके कह देना कि हम सब वन में गायें चराते दूर आ गये हैं और भूखे हैं—बस !' कन्हैया ने समझाया। 'न हो तो मेरा नाम बता देना और दाऊ भैया का भी। कह देना कि हम दोनों थोड़ी ही दूर पर हैं।' भला, यह भी कोई बात है कि श्याम और राम का नाम सुनकर भी कोई उनके लिये भोजन नहीं दे।

'तू क्यों नहीं चलता ? हम अकेले नहीं जायँगे !' श्रीदामने ठीक तो कहा है। दाऊ बड़ा है, वह न जाय तो ठीक, यह कन्हैया क्यों नहीं जाता ?

'मैं थक गया हूँ ! मुझसे तो भूख के मारे चला ही नहीं जाता !' मुँह बनाया उस नटखट ने।

'यज्ञ-मण्डप है कितनी दूर, इसे यहीं रहने दो !' वरूथप को अच्छा नहीं लगा कि श्याम से इस समय चलने का हठ किया जाय। वह आगे बढ़ा।

'सब-के-सब मत जाओ ! वहाँ गैया भागेंगी तो ..!' श्रीदामा नहीं जा रहा है, पर वह क्या गायें घेरेगा। वह तो कहने पर झगड़ेगा। कन्हैया ने भद्र को रोका। उसके साथ कुछ बालक रुक गये।

'अरे, सुनो !' श्याम ने खड़े होकर पुकारा ! सब दौड़े जा रहे हैं, भूख जो लगी है। 'बता देना कि सौत्रामणि यज्ञ को छोड़कर दूसरे किसी यज्ञ में अतिथि को अन्न देने से यज्ञ में दोष नहीं आता !' पता नहीं इस कन्हैया को क्या-क्या ज्ञात है। बालकों को भोजन करने का अवकाश होता तो वे पूछते —क्यों दोष नहीं होता ? तुझे कैसे पता ? आदि। पर इस समय तो वे दूसरी धुन में हैं।

× × × ×

कदली-स्तम्भ से सज्जित, तोरण बँधे मुख्य द्वार के समीप पहुँचकर बालकों ने पृथ्वी पर लेट कर प्रणाम किया ब्राह्मणों को। माता-पिता ने उन्हें यह शिक्षा दी है। उन्होंने देख लिया कि मण्डप में भीतर चारो कोनों पर वेदियों पर कुछ चित्रित मण्डल बने हैं। उनके समीप कलशों पर दीपक प्रज्वलित हो रहे हैं। मध्य में बड़ी-सी वेदी है और तीन हवन-कुण्ड हैं। एक गोल, एक चन्द्राकार और एक चौकोर। हवन कुण्डों में अग्नि प्रज्वलित हो रहे हैं। सुगन्धित धुआँ उठ रहा है। यज्ञ-मण्डप में चारो ओर ब्राह्मण पंक्तिबद्ध बैठे हैं। अधिक देखने का अवकाश नहीं है, उन्होंने केवल यह देख लिया है कि किसी कारण से मन्त्रपाठ तथा आहुतियाँ कुछ क्षणों के लिये रुक गयी हैं। उनके काम योग्य पकान्नों का वहाँ अभाव नहीं है।

प्रार्थना करने के लिये उपयुक्त समय है। वरूथप ने नम्रता से कहा—'विप्रवरों, आप सब व्रजराज-कुमार श्रीकृष्णचन्द्र और बलराम को तो जानते ही हैं।' भला, ऐसा भी कोई हो सकता है, जो राम-श्याम को न जाने—यह तो बालक सोच ही नहीं सकते। आशा थी कि इतना कहना ही पर्याप्त होगा, पर ब्राह्मण तो बोलते ही नहीं। उनमें से कुछ ने मुख फेर कर देखा है जिज्ञासा से और कुछ ने तो सुना ही नहीं। वरूथप ने ही कुछ और ऊँचे स्वर से कहा—'हम सब उनके साथी हैं।' 'अरे, ब्राह्मण तो इतने पर भी कुछ बोलते नहीं !' एक बालक ने दूसरे के कान में धीरे से कहा। वे सब बहुत संकुचित हुए, एक दूसरे से सटे खड़े हैं।

'गायें चराते हुए हम सब यहाँ से थोड़ी दूर तक आ गये हैं। श्याम और दाऊ वहीं—यहाँ से पास ही बैठे हैं। आज यहाँ तक कलेऊ आया नहीं। वे दोनों और हम सब बहुत भूखे हैं। यदि आप लोग कृपा कर...।' वरूथप से आगे बोला नहीं गया। वह संकोच के कारण चुप हो गया। पीछे उसने सखाओं की ओर देखा।

'वह सौत्रामणीवाली बात !' एक ने धीरे से उसके कान में कहा। सब उसी को कहने का संकेत करते हैं। दूसरा कोई बोलना नहीं चाहता।

'श्याम ने बताया है कि सौत्रामणी यज्ञ को छोड़कर और किसी यज्ञ में अतिथि को अन्न देने से यज्ञ में कोई दोष नहीं आता !' श्याम ने ठीक ही कहा होगा, इसमें तो संदेह नहीं; पर ये ब्राह्मण तो कुछ बोलते ही नहीं। जिन्होंने मुख फेरकर देखा था, वे भी मुख मोड़ चुके। ये लोग तो अपने काम में लग गये !

बालकों ने एक दूसरे की ओर देखा। कुछ क्षण वे प्रतीक्षा में खड़े रहे। किसी ने उनकी ओर नहीं देखा। इतनी उपेक्षा तो उन्होंने कभी सही नहीं। धीरे-धीरे पीछे हटे वे। उनके मुख नीचे झुक गये। निर्मल नेत्रों में जल भर आया।

'कन्हैया ने हमें यहाँ भेजा ही क्यों ? क्या पता ये सब ब्राह्मण सौत्रामणी यज्ञ ही कर रहे हों; दूसरों से न बोलने का नियम लिया हो इन्होंने तो ? श्याम बड़ा नटखट है।' अनेक प्रकार के विकल्प उठे परस्पर। सब कन्हैया से कुछ रुष्ट हैं। उसे जाकर उलाहना देंगे कस के। एक तो भूख लगी है, दूसरे इतनी दूर दौड़ा दिया और वह भी ऐसे स्थान पर कि जहाँ कोई बोलता तक नहीं !

× × × ×

'अबकी बार अवश्य भोजन मिलेगा ! एक बार उन ब्राह्मणों की पत्नियों के पास जाओ और मेरा नाम लेकर कहो। वे बड़ी सीधी हैं। मुझसे बहुत स्नेह करती हैं। वे खूब बढ़िया भोजन देंगी।' श्यामसुन्दर ने सखाओं को दूसरी बार भेजने का प्रयत्न किया। उसका खिन्न-सा मुख, बार-बार उदर पर हाथ फेरना, थक कर बैठ रहना क्या ऐसा है कि उसे देखकर भी कोई उलाहना दे सके। सबने केवल लौटकर उसके मुख की ओर देखा और सबके नेत्र भर गये। 'वे ब्राह्मण तो बोलते ही नहीं।' टप-टप आँसू गिराते हुए उन्होंने इतना ही कहा है। कन्हैया ने तुरंत फिर जाने का प्रस्ताव कर दिया।

'कनूँ, तू साथ चल न ! स्त्रियों से तेरी ही खूब पटती है।' एक ने आग्रह किया।

'मुझे बड़े जोर की भूख लगी है ! मैं चल कैसे सकता हूँ ! तुम सबों के हाथ जोड़ता हूँ, एक बार और जाओ ! जल्दी से जाओ तो !' उस चपल ने सचमुच हाथ जोड़ लिये और फिर घास पर लेट गया। जैसे उससे बैठा भी नहीं जायगा। 'वहाँ अबकी बढ़िया-बढ़िया खूब सारा भोजन अवश्य मिलेगा ! देखो, कहीं रास्ते में ही मत खाने लगना।'

'भोजन मिलेगा, श्याम कहता है न !' इस समय बालक बहुत भूखे हैं। वे फिर दौड़ पड़े शीघ्रता से उस यज्ञ स्थान की ओर।

× × × ×

'इधर से नहीं, उधर के द्वार से !' बात ठीक है। बालक ब्राह्मणों की दृष्टि बचाकर ही जाना चाहते हैं। क्या पता कि वे अपनी स्त्रियों को भी कुछ देने से मना कर दें। क्या पता कि वे डाँटने ही लगें। पीछे के द्वार से सबने उस यज्ञस्थान के घेरे में प्रवेश किया और अग्निशाला को दूर छोड़कर सीधे 'पत्नीशाला' के सम्मुख गये।

रंग-विरंगे वस्त्र पहने, आभूषणों से सुसज्जित, कुछ गाती हुई ब्राह्मण-पत्नियाँ विविध कार्यों में लगी थीं। कोई व्यञ्जन बना रही थी, कोई वस्तु-सम्भार में लगी थी, कोई हवि प्रस्तुत कर रही थी, कोई स्थान स्वच्छ कर रही थी। जल, समिधा, फल, पुष्प, माल्य-ग्रन्थन आदि अनेक कार्य चल रहे थे। आभूषणों की झंकृति के साथ उनका कोमल गायन-स्वर गूँज रहा था। सहसा सबके हाथ रुक गये। इतने सुन्दर बालक तो उन्होंने मथुरा में देखे नहीं। एक दो नहीं, शतशः छोटे-छोटे सुन्दर बालक कहाँ से आ गये ? उत्सुकता वश उन्होंने द्वार की ओर देखा।

'आप सब विप्र-पत्नियों को प्रणाम ! आप हमारी प्रार्थना सुनें !' अरे, कितने नम्र, भोले बालक हैं। सबने भूमि पर मस्तक रखकर प्रणाम किया और तब वरूथप ही आगे होकर बोला।

'नन्दग्राम से गायें चराते हुए हम सब यहाँ तक आ गये हैं। हम सब बहुत भूखे हैं। हमारे साथ श्रीकृष्ण और बलराम भी हैं। वे यहाँ से थोड़ी ही दूर पर गायों के समीप हैं। यदि आप हम सबको कुछ खाने को दे सकें....!' वरूथप ने मस्तक झुका लिया था। उसने देखा नहीं कि बात पूरी होने से पूव ही उन विप्र-पत्नियों में कितनी व्यग्रता प्रकट हुई।

'श्रीकृष्ण और बलराम पास ही हैं! वे ही श्रीकृष्ण जो अनेक असुर मार चुके हैं! परम सुन्दर, भुवन-मोहन, मुरलीधर श्रीकृष्ण पास ही हैं! वे भूखे हैं!' नारियों ने जो थाल पास मिला, उसी को उठा लिया। कौन देखे कि थाल किसका है। कौन देखे कि अन्न जो मैंने बनाया है, वही है या दूसरे का बनाया है। कौन सोचे कि कौन-सा अन्न यज्ञ में अभी आवश्यक होगा। 'श्रीकृष्ण पास हैं, वे भूखे हैं!' थालियों में अन्न भरा जाने लगा। थाल उठाते-उठाते कई बार नीचे रखे गये। अनेक पदार्थों का स्मरण हुआ। कोई वस्तु छूटनी नहीं चाहिये। मथुरा में घर-घर श्रीकृष्णचन्द्र की चर्चा होती है। विप्र-पत्नियों ने बड़ी आशा की थी यहाँ यज्ञ-मण्डप आते समय कि वे उस त्रिभुवन-सुन्दर का वन में दर्शन कर सकेंगी। कई दिन व्यतीत हो चुके थे। वे निराशप्राय हो चुकी थीं। आज यह सहसा समाचार मिला, जैसे उन्हें अपार निधि लूटनी है। स्वर्ण-थालों में विविध पक्वान्न भरकर वे निकलीं। वस्त्र-आभरण—किसे इनका स्मरण है। वे स्वयं अस्त-व्यस्त हो रही हैं।

'चलो, शीघ्रता करो!' बालक तो यह चाहते ही हैं। उन्हें भी भय है कि कहीं कोई ब्राह्मण-देवता इधर न आ जायँ। कोई इन सबों को रोक न दे। बार-बार वे सशङ्क दृष्टि से देख लेते हैं, यज्ञ मण्डप की ओर।

'अरे, क्या हो रहा है? कहाँ जा रही हो तुम सब? ठहरो! रुको! बात सुनो! महाराज कंस सुनेंगे तो सबको मरवा डालेंगे!' ब्राह्मणों में से एक ने थाल लेकर पत्नीशाला से निकलती स्त्रियों को देख लिया। उसने देख लिया पिछले द्वार से शीघ्रतापूर्वक एक दूसरे को ठेलते, भागते बालकों को। उसके बोलते ही सब चिल्लाने लगे। कुछ उठकर दौड़े भी। स्रुवा छोड़कर, पात्र लुढ़काते वे दौड़े।

'अरे वे ब्राह्मण आ रहे हैं!' लड़कों ने जो पुकारते-दौड़ते ब्राह्मणों को देखा तो भाग चले। 'भागो! भागो!

'सुनो! रुको! मत जाओ!' क्रोध से, अनुरोध से पुकारते ब्राह्मण दौड़े कुछ दूर। आभूषणों की झंकार करती भोजन-थाल का भार सम्हाले स्त्रियाँ इतनी तीव्र गति से दौड़ सकती हैं, उन्होंने कभी सोचा नहीं था। पति, पिता, भाई, कौन पुकार रहा है, क्या कह रहा है—यह वे सुनती कहाँ हैं। वे तो लड़कों से तनिक पीछे रहनेवाली नहीं। कहीं कोई पकड़ न ले। किसी के पीछे कोई हिंस्र पशु दौड़े और वह प्राण लेकर भागे—कुछ इसी प्रकार भाग रही हैं वे। ब्राह्मण क्रोध से काँपते, पुकारते, ओष्ठ काटते खड़े हो गये हैं। वे समझ गये हैं कि आज दौड़कर वे इनको पकड़ नहीं सकते।

'चल, कहाँ चली है!' हाय, हाय, बेचारी को थाल सजाने में कुछ क्षण अधिक लग गये थे। सबसे पीछे रह गयी थी यह एक ब्राह्मणी। उसका युवक पति कितना निष्ठुर है। दौड़कर उसने वेणी पकड़ ली। स्वर्ण-थाल झन-झनाकर गिर पड़ा। व्यंजन बिखर गये। वह तो रोती भी नहीं, चिल्लाती नहीं। नेत्र बंद करके पति के केश खींचते ही उसके पैरों के पास भूमि पर गिर पड़ी। मुखपर एक ज्योति आयी, मन्द मुस्कान आयी और—शरीर विवर्ण हो गया।

'उठती है या नहीं!' अपने कर्कश कण्ठ से चीत्कार-सा करता ब्राह्मण पत्नी के हाथ को स्पर्श करते ही चौंक गया। कहाँ है उसकी स्त्री? वह जिसे पकड़ने चला था, उसका प्राणहीन पार्थिव देह पड़ा है उसके सम्मुख। वह—वह तो हृदय में उसे पाकर उसके शाश्वत सांनिध्य में पहुँच गयी, जिसके लिये चली थी।

× × × ×

आगे-आगे लकुट लिये, कंधों पर चित्र-विचित्र पटुके रक्खे गोप-बालक और उनके पीछे, रंग-बिरंगी साड़ियाँ पहिने हाथों से व्यञ्जन-भरे स्वर्ण-थाल सिर पर रखकर किसी प्रकार सम्हाले,

आभूषणों की झंकार से वन को गुंजित करती ब्राह्मणों की स्त्रियाँ दौड़ी जा रही हैं—दौड़ी जा रही हैं पूरे जोर से। श्वास की गति बढ़ गयी है। मुखों पर स्वेद की बड़ी-बड़ी बूँदें झलमला उठी हैं। कोई पकड़ न ले! कोई आ न जाय!

'कहाँ, कोई तो नहीं आता!' एक बालक ने पीछे देखकर सबको बताया। सब-के-सब खड़े हो गये। उन्होंने पीछे देखकर हँसते हुए तालियाँ बजायीं, जैसे बड़ा समर जीत लिया हो। ब्राह्मण-स्त्रियों ने भी तनिक रुककर पीछे देखा और सन्तोष की दीर्घ श्वास खींची। बालक अब क्यों दौड़ने लगे। उन स्त्रियों को यह अच्छा नहीं लगा। इससे दौड़ना कितना अच्छा था! श्यामसुन्दर के समीप शीघ्र पहुँच जातीं; किंतु बालकों को छोड़कर वे दौड़ें तो जायँ किधर? वे ही तो उनके मार्ग-दर्शक हैं।

दोनों ओर ऊँचे-ऊँचे सघन वृक्ष हैं। उनपर पुष्पित लतायें चढ़कर छायी हैं। वन-मृग स्त्रियों की आभूषण-ध्वनि से चकित होकर बार-बार घूम-घूमकर उनकी ओर देखते हैं। स्त्रियाँ आगे, इधर-उधर बराबर देखती जाती हैं। उनके नेत्र किसी को ढूँढ़ रहे हैं, बड़ी आतुरता से।

'वह रहा धर्म, वह नन्दिनी है!' बालकों ने फिर ताली बजायी। दूर सघन झुरमुट से कुछ पशु दीख पड़ गये। बालक हर्षित हैं। उनके मुख-कमल खिल गये हैं। 'हम सब आ गये अब!' ब्राह्मण-स्त्रियों के नेत्र ललक उठे। हृदय की गति तीव्र हो गयी। चरणों में और वेग आया।

× × × ×

चारो ओर ऊँचे-ऊँचे अशोक के वृक्ष हैं। उनके कोमल-कोमल लाल-लाल पल्लव वायु से धीरे-धीरे हिल रहे हैं, जैसे वे अपने अरुण करों से संकेत द्वारा किसी को समीप बुला रहे हों। वृक्षों से घिरा एक छोटा-सा मैदान है उनके मध्य में। दूर्वादल ने उस भूमि पर हरित-मृदुल आस्तरण बिछा रक्खा है। कहीं-कहीं कुछ नन्हे कुसुम हैं भूमि के उन तृणों पर। पूँछ फैलाकर इधर-उधर मयूर नृत्य कर रहे हैं! निदाघ में मयूरों का यह नृत्य? किंतु उनका श्यामघन उनके सम्मुख जो है। वृक्षों पर बंदर उछल-कूद कर रहे हैं। तोते, कोयल तथा दूसरे पक्षी फुदकते, बोलते धूम मचाये हैं। नीचे चारों ओर गायें-ही-गायें वन में फैली हैं। कुछ बैठ गयी हैं, कुछ खड़ी हैं और कुछ चरने में लगी हैं। वृषभ बार-बार गर्जन करते हैं और बछड़े उछल कूद मचाये हैं। मृग, वाराह, रीछ, सिंह, शशकादि वनपशुओं का दल—यह क्यों है यहाँ? समस्त वन का जैसे यहीं केन्द्र हो।

बछड़ों ने दौड़कर बालकों को सूँघा। समीप की गायों ने नाम लेने पर मुख उठाया। बरूथप ने जोर से पुकारा—'कनूँ!' सम्मुख कुछ बालक मैदान में खड़े हो गये झट से। ओह, मैदान में भी बहुत-से बालक हैं। सब एक साथ हर्ष से खड़े हो गये हैं उछलकर।

'वह दाऊ भैया है!' एक बालक ने ब्राह्मण-स्त्रियों को संकेत से बताया। स्वर्णगौर, नीलाम्बरधारी वह दिव्य छटा परिचय की अपेक्षा नहीं रखती।

'वह—वह खड़ा है कन्हाई भद्र के कंधे पर हाथ रखके!' दिखलाने से पूर्व ही नेत्र वहाँ पहुँच चुके हैं। उन आगताओं को भला, उस सजल-जलद-श्याम को भी क्या पहिचानना होगा? वह क्या खड़ा है वह अपने दीर्घ अरुणाभ दृगों से कुछ हँसता-सा, पतले लाल अधरों से मुस्कराता इधर ही देखता। मस्तक पर मयूर-पिच्छ लहरा रहा है, अलकों में ढेर-से वन-कुसुम उलझे हैं, विशाल भाल पर गोरोचन का तिलक है, कपोलों पर पद्मराग के कुण्डल झलमल कर रहे हैं। नेत्रों में माता का लगाया काजल है—और भी कुछ है—कुछ अवर्णनीय। गले में वनमाला है, मुक्तामाल और गुँजामाल भी है। कंधे पर पटुका है, कटि की कछनी में मुरली लगी है और ललित त्रिभङ्गी से खड़े वे अरुण-मृदुल चरण....। पूरा श्याम शरीर वन धातुओं से चित्रित है। वाम भुजा सखा के कंधे पर है और दाहिने हाथ में डंठल सहित एक अरुण शतदल लिये बार-बार घुमा रहा है उसे। विश्व में इतनी सुषमा की कल्पना भी कहाँ। ब्राह्मण-स्त्रियों के नेत्रों से अश्रु-धारा गिरने लगी। पलकों के

साथ उनके चरण भी स्थिर हो गये, यह उन्हें पता ही नहीं। बालकों ने आश्चर्य से उनकी ओर देखा। 'इन सबों को हो क्या गया ?'

× × × ×

'ब्राह्मण-पत्नियो, आप स्वयं यहाँ आ गयीं ! आपका स्वागत !' कन्हैया हँसा। वह भद्र के साथ स्वयं उनके सम्मुखतक बढ़ आया। तनिक मस्तक झुकाकर उसने प्रणाम किया। स्वर—उस परम मधु स्वर ने उन सबको सावधान किया। सबने, जैसे निद्रा से चौंककर उठी हों, थालों को झुककर सम्मुख रख दिया और फिर स्थिर खड़ी हो गयीं सिर झुकाकर।

'अरे, आप सबने इतना कष्ट क्यों किया ? आपके यहाँ तक आने की क्या आवश्यकता थी ? भोजन तो मेरे सखा ही ले आते !' वह इतना गम्भीर बन गया है कि क्या पूछना। ब्राह्मणियाँ क्या कहें। कहने को तो बहुत है; पर मुख जो नहीं खुलता।

'अच्छा, आप सब मुझे देखने आयी हैं। बड़ा अच्छा हुआ। प्रायः मै जहाँ जाता हूँ, सब लोग—सब प्राणी मुझे देखने दौड़ आते हैं; पर आप यहाँ चली आयीं, वहाँ आपके परिवार के लोग आप सबों को ढूँढ़ते होंगे !' अपने-आप ही श्याम सब कहे जा रहा है।

'वे ब्राह्मण तो इन्हें पकड़ ही लेने दौड़े थे, पर ये सब हमारे साथ खूब दौड़कर चली आयी हैं। ब्राह्मण दौड़ ही नहीं सके इतना।' कुतूहलपूर्वक एक बालक ने कहा। स्त्रियों ने सिर झुका लिया।

'अरे, वे ब्राह्मण आप सबकी प्रतीक्षा करते होंगे ! अब उनके यज्ञ का समय हो गया है। बिना पत्नी के यज्ञ-कार्य कैसे आगे चलेगा ? उनके देव-पूजन में विघ्न नहीं पड़ना चाहिये। आप सब अब जल्दी लौट जाइये !' कन्हैया तो इस प्रकार कह रहा है, जैसे प्रार्थना कर रहा हो।

ब्राह्मणों की स्त्रियों के मस्तक बहुत झुक गये हैं। उनके नेत्रों से टपा-टप बूँदे गिरने लगी हैं। वे अपने पैर के अँगूठों से भूमि खोदने लगी हैं। भरे कण्ठ से किसी प्रकार उनका स्वर सुनायी पड़ा—'तुमको तो हम लोगों ने सर्वसमर्थ सुना है। सारी विधि-मर्यादाओं को छोड़कर, पति-पिता-भाई आदि के आग्रह, आदेश की उपेक्षा करके तुम्हारे श्रीचरणों में आयी हैं। अब तुम्हें तो इस प्रकार निष्ठुर नहीं बनना चाहिये। ऐसी बातें मत कहो। हमें अब वे हमारे पति, पिता, भाई, पुत्रादि अपने पास फटकने भी नहीं देंगे। तुम्हारे लिये ही हम सब यों निराश्रय हुई हैं। तुम्हीं हमारी एकमात्र गति हो !'

'अरे, तो ये लौटेंगी नहीं !' बालकों ने एक दूसरे की ओर देखा। 'तब ये क्या करेंगी ? गायें चरायेंगी हमारी या घर चलकर मैया की सेवा करेंगी ?' मन के इस प्रश्न को कहने या पूछने का अवसर नहीं है। कभी उन स्त्रियों की ओर और कभी कन्हैया की ओर वे देख रहे हैं।

'नहीं, नहीं, ब्राह्मण बहुत सीधे हैं। वे लोग तुममें से किसी से कुछ नहीं कहेंगे। अब तक कभी ऐसा नहीं हुआ कि मेरे पास से लौटे व्यक्ति से कोई द्वेष करे ! वे तुम्हारा स्वागत करेंगे !' श्याम सुन्दर ने इतने स्थिर स्वरों में यह बात कही है कि बालक भी इसपर अविश्वास नहीं कर सकते; परंतु ये स्त्रियाँ तो खड़ी ही हैं। वे तो जाने का नाम ही नहीं लेतीं।

'समीप रहने से उतना प्रेम नहीं होता, जितना दूर रहकर मनसे चिन्तन करने से होता है। मुझ में मन लगाकर घर में ही रहो ! मैं तो मथुरा भी आऊँगा ही। तुम सब बहुत शीघ्र मुझ से मिल सकोगी !' उस मदनमोहन ने लौटने के लिये पूरा आग्रह स्वरों में भर लिया।

'तुम···!' ब्राह्मणियाँ क्या कहें ? नेत्र वृष्टि कर रहे हैं। कण्ठ बोलने नहीं देता और··· 'मैं कहाँ दूर हूँ !' पता नहीं यह मथुरा पधारने की भूमिका है या और कुछ। श्याम ने स्वर को अद्भुत बना लिया। 'पर यज्ञ में बाधा पड़ेगी न ? चलो, मैं पहुँचा आऊँ !' 'तुम पहुँचा आओगे ?' भला, भूखा श्यामसुन्दर साथ चले, यह कौन पसंद करता। वे विवशतः मुड़ीं।

× × × ×

'अरे, तुम सब लौट आयीं ! बड़ी शीघ्रता से लौटी हो ! अच्छा, बड़ा अच्छा किया ! अब जल्दी से पैर धो डालो और यज्ञ-मण्डप में चलो ! समय हो गया है !' स्त्रियाँ किस प्रकार लौट

आयी हैं, यह वे ही जानती हैं। उनके चरण किसी प्रकार चले आये हैं। बार-बार मुड़कर वे देखती आयी हैं, कोई तो पुकार ले फिर से—मार्ग में क्या पड़ा, कौन मिला। उन्हें कुछ पता नहीं। उनका मन तो वहाँ वन में रह गया। उनके नेत्रों में है वह ग्वाल-बाल-मण्डली, वह नील सुन्दर और अब वे भोजन करते होंगे···पर इन ब्राह्मणों को क्या हो गया है ? इतने हर्ष से तो उन्होंने अपनी स्त्रियों का स्वागत किया नहीं था पहिले कभी। यज्ञशाला से आभूषणों की ध्वनि सुनते ही दण्ड लेकर द्वार तक दौड़े क्या वे स्वागत करने आये थे ? पर स्त्रियों पर दृष्टि पड़ते ही उन्हें कुछ हो गया है। दण्ड उन्होंने फेंकने, छिपाने का लज्जापूर्वक प्रयत्न क्या यों ही किया है ? स्त्रियाँ चौंकीं—पुरुषों के कण्ठ-स्वर ने एक क्षण के लिये भीतर के भय से उनके चरणों को स्थिर किया और फिर वे साधे पत्नीशाला में चली गयीं। यह अनपेक्षित स्वागत, पुरुषों द्वारा यह अभ्यर्थना उनकी उदासीनता को प्रभावित करने में तनिक भी सफल नहीं हो सकी। जैसे उन्हें किसी की अपेक्षा नहीं। जैसे उनके शरीर यन्त्र-चालित हों।

'हम सब लोगों को शिक्षा देते हैं, पवित्र आचार्य कहलाते हैं, उच्च कुल में उत्पन्न हुए हैं और सभी ने वेदों का स्वाध्याय किया है; परंतु मूर्ख हैं हम ! हमारी श्रेष्ठता को धिक्कार है। हम जानते हैं कि ये श्रीकृष्णचन्द्र, वसुदेव-नन्दन साक्षात् परमात्मा हैं, परंतु हमने उनके सहचरों का अपमान किया। हम यज्ञ करने चले हैं और यज्ञेश ने दया करके जब हमसे अन्न चाहा तो हम सब-के-सब उपेक्षा कर गये !' स्त्रियों के जाते ही उनमें जो सबसे वृद्ध ब्राह्मण हैं, वे फूट-फूट-कर रोने लगे।

'भला, उन पूर्णकाम सर्वेश प्रभु को क्या आवश्यकता ! वे इच्छा करते ही त्रिभुवन को तृप्त करने में समर्थ हैं। प्रत्येक देश में, प्रत्येक समय में, नाना द्रव्यों, विविध मन्त्रों तथा उपचारों से उन्हीं की तो आराधना होती है। वे ही मन्त्र, यन्त्र, मूर्तिस्वरूप हैं। वे यज्ञमूर्ति, धर्मस्वरूप ही यदु-वंश में अवतीर्ण हुए हैं—यह हमने सुना है, पर मूर्खतावश इसे हमने समझा नहीं। हम पर परम दयालु होकर जब वे हमारी सेवा स्वीकार करने को प्रस्तुत हुए, हमारे मुख से उनके स्वजनों की प्रार्थना के उत्तर में एक शब्द तक नहीं निकला।' वृद्ध के नेत्र झर रहे हैं। हिचकी बँध गयी है। आज भर्त्सना किसकी करे वह। सभी ने मस्तक झुका लिये हैं। हतप्रभ हो रहे हैं सब।

'मनुष्य-जीवन का परम स्वार्थ हमें प्राप्त हो रहा था और समाज के गुरु होकर भी हम सब-के-सब मूर्खतावश उसे खो बैठे, यह उन सर्वेश की माया ही है ! वह मुनियों-योगियों को भी मोहित करनेवाली माया—हम सब उससे पार पायें, ऐसी शक्ति है हमारी ?' दूसरे ने अपने नेत्र पोंछ लिये।

'ये स्त्रियाँ—न इनका द्विजाति-संस्कार होता, न ये वेदों की अधिकारिणी हैं, न ये तपस्या करतीं, न पवित्र रहतीं और न इन्हें आत्मज्ञान ही है; परंतु कितना प्रेम है इनका श्रीकृष्णचन्द्र में ! हम सबके रोकने पर, गृह से निकाल देने का भय दिखाने पर भी सबको तृण की भाँति ठुकराकर चली गयीं। और एक हम हैं—सब संस्कारों से सम्पन्न, तप-यज्ञादि करके अपने को पवित्र मानने वाले, गोप-बालकों ने कहा—बताया कि 'श्रीकृष्ण और बलराम ने हमें भेजा है' इतने पर भी हमें स्मरण न हुआ।' अब प्रभुकी माया स्मरण करके सबमें कुछ आश्वासन का भाव आया है। सबने नेत्र पोंछ लिये। उनमें परस्पर कुछ बातचीत चलने लगी।

'हम सब धन्य हैं ! हमें ऐसी परम भागवत पत्नियाँ मिलीं, जिनके कारण श्रीकृष्णचन्द्र में हमारा अनुराग हुआ !' एक तरुण ने गद्गद स्वर से कहा और पत्नीशाला की ओर देखने लगा।

'श्रीकृष्णचन्द्र को प्रणाम ! वे सर्वसमर्थ हम सबको क्षमा करें। हम अल्पशक्ति जीव उनकी माया से मोहित होकर इस कर्ममय प्रपञ्च में फँसे भ्रान्त हो रहे हैं !' सबने एक साथ मस्तक झुकाया अञ्जलि बाँधकर।

'श्रीकृष्णचन्द्र दूर तो हैं नहीं, हम सब भी दर्शन कर आयें और उनके श्रीचरणों में पहुँच-कर क्षमा प्रार्थना करें !' एक युवक ने उत्साहपूर्वक कहा—

'यदि कहीं महाराज कंस को पता लग गया ?' दूसरे ने शङ्कित स्वर में कहा। 'स्त्रियों की बात दूसरी है; पर हम स्वयं गये थे, यह सुनने पर तो कोई बहाना नहीं रहेगा बचने के लिये।'

'जो सर्वव्यापक सर्वेश हैं, वे क्या हमारे हृदय को नहीं देखते !' दूसरे ने अपने भय को दूसरा रूप दिया। श्रद्धा चाहे जितनी हो, कंसका रोष सहने का साहस उनमें नहीं है। स्त्रियों ने पैर धो लिये हैं और कुछ आश्वस्त होकर अनमने भाव से यज्ञ-मण्डप में वे आ रही हैं। यज्ञ भी तो पूरा करना है।

× × × ×

'अच्छा, तुम सब पंचायत किया करो !' मधुमङ्गल ने एक बड़े-से थाल के पास आसन लगाया। अब तक तो किसी को भोजन का स्मरण ही नहीं आया था। ब्राह्मण-स्त्रियाँ थाल छोड़कर लौटने लगीं। वे बिचारी बार-बार मुड़कर देखती गयी हैं। कन्हैया भी उनकी ओर देखता रहा है। अब भी वह उधर ही देख रहा है। स्त्रियाँ अब दिखायी नहीं पड़तीं। बंदरों ने कूँ-काँ करना प्रारम्भ कर दिया है। मधुमङ्गल को ही पहले भोजन का स्मरण हुआ। है भी वही भोजनभट्ट।

'तू इस थाल से उठना मत !' सबने एक साथ हाथ डालकर थाल खाली कर दिया। भला, इन चञ्चल बालकों में कोई इस प्रकार थाल परसकर भोजन कर सकता है।

दाऊ को कहने को तो एक पूरा थाल दिया गया और श्रीदाम, सुबल, कन्हैया ने भी एक एक थाल सम्मुख किया, पर कितने क्षण को ? भद्र बिना दाऊ के साथ भोजन किये रह नहीं सकता और दाऊ का पेट भरने से रहा, जब तक दो-चार उसके पात्र के सामने न बैठ जायँ। श्याम ने अपने थाल की पूरी सामग्री सुबल के सम्मुख ढेर कर दी और श्रीदाम के थाल को अपना बताकर झगड़ना ही है उसे। भला, श्रीदाम वह रिक्त पात्र कैसे ले ले।

छीना-झपटी, हास-परिहास, एक दूसरे के थाल से उठा लेना, एक दूसरे के थाल में ढेरों पदार्थ डाल देना, इस उछल-कूद के बिना क्या श्याम का वन-भोजन चल सकता है ? कुछ मुख में गया, कुछ वस्त्रों पर या शरीर पर गिरा, कुछ भूमि पर गिरा और बहुत कुछ बंदरों, पक्षियों, मृगों आदि के लिये फेंका जाता रहा। कहाँ तक अन्न की यह सद्गति की जाय। अन्त में बचा भाग पशु-पक्षियों के लिये थालों के साथ वहीं छोड़कर वे सब श्रीयमुनाजी की ओर दौड़े जलपान के लिये। यहाँ तक कि पशु-पक्षी, कीट-पतङ्ग, पिपीलिकाएँ भी उस अवशेष उच्छिष्ट में भाग लेने एकत्र हो गयीं।

—❀⊂❀⊂❀—

मदन-विजय

दृष्ट्वा कुमुद्वन्तमखण्डमण्डलं रमाननाभं नवकुङ्कुमारुणम् ।
वनं च तत्कोमलगोभिरञ्जितं जगौ कलं वामदृशां मनोहरम् ॥

—भागवत १० । २९ । १

प्रेम और काम—पिता और पुत्र—श्रीकृष्ण और प्रद्युम्न; किंतु हृदय इतना छोटा है कि वहाँ एक ही रह सकता है। जहाँ काम है, वहाँ प्रेम कैसे आ जाय और जहाँ प्रेम है, वहाँ काम का काम भी क्या ?

काग—जगद्विजयी कुसुमधन्वा मकरध्वज, सामान्य प्राणी किस गणना में हैं उसके सम्मुख ! भगवान् शंकर ने उसे भस्म कर दिया यह ठीक; किंतु उसके छोटे भाई क्रोध ने तो वहाँ भी विजय प्राप्त ही कर ली। वह पराजित हुआ है— बुरी तरह पराजित हुआ है हिमप्रान्त के उन जटिल तपस्वि-युगल नर-नारायण से ! अनेक बार, अनेक ऋषियों, साधकों ने उसका सम्मोहन-बाण व्यर्थ कर दिया है, उन्हीं श्रीनारायण के अरुण-मृदुल श्रीचरणों के बलपर। नारायण—वश उनसे उसकी नहीं चलती। प्रत्यक्ष उनसे तो क्या चलेगी; जो मनमें भी उनकी एक झलक पा लेते हैं, जो उनका नाम लेकर ही उन्हे कातर भाव से पुकार लेते हैं—व्यर्थ हो जाते हैं मन्मथ के कुवलय, आम्रमौर, मल्लिका, शिरीष और करवीर के पाँचो सुमन-शर वहाँ।

यह भी कोई विजय है—मार लज्जित होना तो जानता ही नहीं। मार और लज्जा—उसे गर्व है कि कोई उसे चुनौती देकर कभी पराजित नहीं कर सका। उसकी मीनाङ्कित सिन्दूरी ध्वजा जगद्विजयिनी है। अकेले तपोवन में, शरीर को उपवासादि से सुखाकर किसी ने उसे विमुख ही कर दिया तो हुआ क्या। उसकी पराजय तो तब हो, जब कोई सुपुष्ट काय, युवावस्था लेकर उसके साधनों के मध्य ललकारकर उसे नीचा दिखा सके। वह ठूँठ में सरसता ला देने में समर्थ है, यह ठीक; किंतु ये मनुष्य—कभी-कभी ये नारायण में एकाग्र होकर जब पार्थिव जीवन से ही ऊपर उठ जाते हैं—मृतकों को भला, कौन जीवित कर सकता है। कोई जीवनधारी चुनौती दे उसे तो ठीक भी है।

ये देवर्षि—ये क्यों बार-बार मुस्कराते हुए उसे छेड़ते हैं—क्या धरा है व्रज के गोपों में। ये क्यों बार-बार कहते हैं—'देवता, अच्छे-भले सुकुमार सुमन-देवता ! देखो, कहीं व्रज की ओर मत भटक पड़ना ! वहाँ वह जो मयूर-मुकुटी कमल-दल-लोचन नव-जलधर-सुन्दर कुमार है—बड़ा चञ्चल है। बड़ा नटखट है। बड़ी दुर्गति करेगा तुम्हारी !'

'नव-जलधर-वर्ण—ठीक मेरा ही स्वरूप, कमल-दल-लोचन--मयूर-मुकुटी—मेरी विजय के, मेरी उत्तेजना के प्रोत्साहन के, सब साधन जुटाये, वह कुमार और चञ्चल--न कोई वृद्ध, न स्थिर संयमी ! कोई ब्राह्मण भी नहीं—गोप-कुमार ! और वह मेरी दुर्गति कर लेगा !' भुवन-विजयी मकरध्वज इस चुनौती को कैसे सहन कर ले।

'यह शरत-पूर्णिमा—आज वन स्वभावतः मेरे बाण के सर्वश्रेष्ठ मल्लिका-सुमनों से भर जायगा। आज सुधांशु पूर्ण होकर अमृत के साथ मादकता की वर्षा करेगा। आज गो-धूलि के पश्चात् का अरुणिम राग हृदयों को रञ्जित करेगा दिशाओं को रञ्जित करने के स्थान में। आज—आज ही मैं इस गोप-कुमार की शक्ति देख लूँगा !' मार की ध्वजा लहरायी। उसके कुसुम-धनुष पर ज्या आयी और मल्लिका के सुमनों ने उसके सम्मोहन-शर की शक्ति प्राप्त कर ली !

'यह हो क्या रहा है !' मन्मथ आरम्भ में ही चौंका। यह श्रीगणेश ही हतोत्साह करनेवाला ! उसे स्मरण है, जब उसने त्रिलोक-गुरु योगीश्वर भगवान शंकर पर विजय करने के लिये इसी प्रकार धनुष चढ़ाया था—जड़ तक उन्मत्त हो गये थे उस दिन। त्रिलोकी मर्यादा भूलकर उसके प्रभाव में पशु हो गयी थी और आज--आज एक सामान्य गोप-कुमार उसका लक्ष्य है ! आज भी वही धनुष चढ़ा है और अब तो वह प्रयत्न भी कर रहा है कि कम-से-कम भूमण्डल पर तो वह अपना प्रभाव पहुँचने से पूर्व देख ले ! ये जगती-प्राणियों के मानस क्षुब्ध क्यों नहीं होते ? क्यों आज वह किसी के अन्तर को उल्लसित--उन्मद नहीं कर पाता ?' देवर्षि चले न गये होते तो बता देते—'भैया काम, तुम इस समय आक्रमण के लिये ही सही, उस प्रेम-धाम व्रज की ओर दृष्टि लगाये हो ! अपने ही अन्तर को देखो तो--उसमें क्या विकार है इस समय ? जब तुम में ही विकार नहीं तो तुम्हारे प्रभाव में विकारोत्पादन आये कहाँ से।'

'काम—वह क्या इतने से भीत होनेवाला शूर है ? वह त्रिभुवन-विजयी ! ये पञ्चबाण क्यों जगती के लिये इस समय प्रयुक्त हों ! वह रहा वृन्दावन ! वह रहा कालिन्दीकूल ! वह पुष्पित कानन--वास्तविक युद्ध-भूमि तो यहाँ है।' मीनकेतु ने अमरावती छोड़ दी और वह अनङ्ग व्रज की पावन कुञ्जों में एकाकार हो गया।

× × × ×

योगमाया—ये निखिल-कौतुकमयी, आज-कल इनके आराध्य व्रज में हैं। ये भी व्रज को छोड़ कहाँ अपना केन्द्र बनायें। काम--काम क्या जाने इनकी लीला, वह इनके दर्शनों में समर्थ भी कहाँ ? पर आज ये कर क्या रही हैं ? यह बरसाने की बालिकाओं में सहसा कैशोर--बालिकाएँ स्वयं कुछ नहीं समझ पातीं और ये महामाया—ये तो वह चलीं कालिन्दी कूल की ओर। वहीं तो उनके आराध्य पहुँच रहे हैं।

श्याम आज वन से शीघ्र लौट आया है। उसे क्या शीघ्रता है ? उसने गायें बाँधी, मैया ने मुख-हाथ-पैर धोये उष्णोदक से और आज तो कलेऊ करने में उसने मचलने का नाम ही नहीं लिया। दिन भर वन में रहा है, भूखा होगा। कलेऊ करके वह निकला, गो-दोहन भी तो होगा ही सायंकालीन—पर अभी तो गायें गोष्ठ में आयी हैं। अभी उन्हें यवस दिया गया है। गो-दोहन में तो अभी विलम्ब है। अभी तो बाबा सायंकालीन पूजा-प्रार्थना में लगे हैं। मैया को स्वयं गोष्ठ में सुगन्धित धूप देनी है और घृत-दीप रखना है। गो-पूजन दासियों पर छोड़ा नहीं जा सकता।

मोहन कलेऊ करके उस गो-धूलि-वेला में ही पुनः वन की ओर चल पड़ा है। आज वह एकाकी क्यों जा रहा है ? वह तो श्रीयमुनातट के एकान्त मार्ग से जा रहा है ! इस प्रकार छिपकर, सबकी दृष्टि बचाकर कहाँ चला है ? क्या करना है उसे ?

मैया ने गो-रज धो दी है; वनमाला, पटुका, कछनी—सब बदलवा दिये हैं। अलकों में सुगन्धित तैल मल दिया है और भाल पर गोरोचन की खौर के मध्य यह कुङ्कुम-तिलक और कस्तूरिका-बिन्दु भी अभी ही लगा है। अच्छा, आज यह अकेला वन-शोभा देखने आया है। देखने योग्य ही है यह वन-श्री। और इस समय—भला, दिन में यह छटा कैसे देखने को मिले ? वह पश्चिम में दिवाकर का किंशुक-अरुण बिम्ब क्षितिज से नीचे जा रहा है और वह पूर्व में सुधांशु उठ रहा है क्षितिज पर। राग-रञ्जित दिशाएँ, अबीर-घोला-सा यमुना-जल और सिन्दूरी-आभा में स्नान-सी किये यह वन-श्री ! उडुराज का यह पूर्ण बिम्ब—अभी अरुणिमा है उसपर ! यह सिन्धुसुता के सहोदर का ज्योतिर्मय अरुण मुख— कुङ्कुमारुण रमानन भी सम्भवतः ऐसा ही होगा। हिमांशु की ये कोमल किरणें फैलीं—यह कुञ्जों की छटा, ये चमचमाते पत्र और ये ढेर-के-ढेर उज्ज्वल नन्हे सुकुमार सुमनों से पुष्पित मल्लिका-कुञ्जें—जैसे नील नभ अपने समस्त तारक-मण्डल के साथ धरा पर उतर आया है। ये हर शृङ्गार के पुष्पित पादप—राग के सुकुमार आधार पर सत्व का छत्र-सा सम्हाले इनके ये सुन्दर सुमन—ये स्वतः नीचे झर रहे हैं, कोई उठा ले—कोई अलकों में उलझा ले—कोई सार्थक कर दे, जैसे अन्तर की उत्कण्ठा सम्हालने में विवश उझक पड़े हों।

यह सुन्दर सुरभित सुकुमार नन्हे उज्ज्वल पुष्पों से सुसज्ज, धवल-कौमुदी-स्नात वनराजि, यह जगमग करता रत्नभूमि-सा उज्ज्वल मृदुल पुलिन और यह नीलम के दर्पण-सा झलमल करता श्रीयमुना-जल—श्याम देखता रहा दो क्षण मुग्ध-सा चारों ओर और अब तो वह एक शिला पर बैठ गया। पारिजात का यह सघन तरु जैसे छत्र किये है उसके मस्तक पर और शिलापर तो वृक्ष से गिरे सुमनों का आस्तरण पहले से प्रस्तुत है। मल्लिका और पारिजात के पुष्पों से वायु की मादकता अवर्णनीय हो उठी है। अब तो वंशी बजेगी। यह एकान्त शान्त सुरभि से झूमता कानन, यह श्री यमुनातट, यह शारदीय पूर्ण ज्योत्स्ना, मुरली अब बजे बिना कैसे रह सकता है। वह निकाली मोहन ने कछनी से, वे अँगुलियाँ जमीं छिद्रों पर और वह अधर तनिक सिकुड़े।

वंशी तो नित्य ही बजती है, नित्य वह परम सम्मोहन स्वर में बजती है; पर आज—आज उसका स्वर—आज वह इस अद्भुत कम्प से क्यों कुहक-सी रही है। मार—भ्रम हो गया है उसे कि वह आज मुरली में आ बैठा है। आज वंशी में उसका राग है। वंशी आज प्रणव को प्रत्यक्ष करने के स्थान पर काम-बीज को जीवन दे रही है। मूर्ख मार—काम-बीज तो नित्य कन्हैया का स्वरूप है, मदन-बीज कब हुआ वह? मन्मथ-नाम के कारण उसे अपना बीज मान ले तो क्या वह उसका हो जायगा? फिर यह श्याम की मुरलिका से निकलता कण्ठ-तालु के स्पर्श को इकार की गति देता, हृदय को मथित करता उन्मद कामबीज—मार ने देखा होता कि उसका उत्थान मदन के स्वाधिष्ठान से होता भी है या नहीं! यह हृदय के अन्तरतम अष्टदल की कर्णिका से उठनेवाला दिव्य राग, मार का नहीं, महामाया ने श्याम की योगमाया का स्वर है। मोहन के अधर मुरली पर लगे हैं और उसके नेत्रों में अधरों का वह नित्य मन्दहास्य आ बैठा है।

गोपियाँ नित्य ही तो वंशीध्वनि सुनती हैं, लेकिन आज की यह वंशीध्वनि—आज तो वंशी उनका नाम लेकर पुकार-सी रही है! आज उनके लिये—केवल उनके लिये गूँज रहा है यह मोहन राग। नित्य वे वंशी सुनती हैं और जहाँ-का तहाँ स्तम्भित हो जाती हैं। उनका शरीर स्पन्दहीन हो जाता है। प्राण कर्णों में आ जाते हैं। उनकी ही नहीं, पूरे व्रज की यही दशा होती है। किन्तु दूसरे तो आज सुनते ही नहीं वह वंशी-राग और गोपियाँ 'वंशी उन्हें ही पुकार रही है! श्याम बुला रहा है!' घर, द्वार, परिजन, शरीर—सब भूल गया उन्हें। जो जहाँ, जैसे, जिस दशा में हैं, वहीं से दौड़ीं—दौड़ना कहना भी ठीक नहीं, उड़ी जा रही हैं वे। अस्तव्यस्त उड़ा जा रही हैं। गिरती-उठती, उलझती-सुलझती वे उड़ी जा रही हैं इस ध्वनि को लक्ष्य बनाये।

आज किसी को पुकारना नहीं है, किसी से कहना नहीं है। वे कहाँ जा रही हैं—आज सखियों से भी वे छिपाना ही चाहती हैं। परस्पर और कदाचित् अपने से भी उन्हें शङ्का है। कोई कुछ पूछे नहीं, कोई एक क्षण का विलम्ब न कर दे। मुख झुकाये, सबसे बचती वे भागी जा रही हैं।

कोई-कोई गोदोहन के लिये बछड़े खोल रही थीं; वंशी बजी, बछड़े छूटे या बँधे है—पता नहीं! कूदते बछड़े से उलझकर उनकी साड़ी भूमि में गिरकर लोट रही है, उनके नूपुरों में बछड़े की रस्सी उलझी और वह टूट गया—पता किसे है। वह भागी जा रही है। कुछ तो दूध दुहने बैठ गयी थीं-दोहनी गिर पड़ी, दूध फैल गया, साड़ी सन गयी दूध से—लेकिन मन जो पहुँच गया उस मुरली-मोहन के समीप।

किसी ने बालक को गोद में लिया था दूध पिलाने के लिये और किसी के अग्निपर चढ़े दूध में उफान उठा था। वह दूध उतारने को उठी—बालक भूमि पर पड़ा रोता है, दूध अग्नि पर गिर रहा है। वे भागीं—वे भागी जा रही हैं।

किसी-किसी को शृङ्गार करना था। अञ्जन, अङ्गराग, आभरण, लाक्षाद्रव—प्रसाधन-सामग्री लेकर बैठी थी। अञ्जन एक या आधी आँख में ही लगा रह गया है और इसने तो ओष्ठों में ही लगा लिया है—दौड़ते में कज्जल-सम्पुट पर चरण पड़ा और काला हो गया, एक चरण में लाक्षाद्रव लगा, यह भी कुशल। नहीं तो लाक्षाद्रव मुखपर और अङ्गराग चरण में भी तो किसी-किसी

ने पोत ही लिया है, एक कान में ही कुण्डल पहिन पायी कोई और किसी-किसी के एक कर में ही कङ्कण या एक चरण में ही नूपुर हैं। कानों में कङ्कण, हाथों में नूपुर भी इस अस्त-व्यस्त दशा में हो गये हैं। मुरली बज गयी--मन-प्राण खिंचे और वे दौड़ी जा रही हैं।

किसी-किसी के पिता, पुत्र, भाई या पति भोजन करने ही बैठे थे। थाल परसी गयी या माँगने पर परसने को कुछ उठाया गया; यह वंशी जो बजने लगी। थाल धरा रहा, स्वजन देखते रह गये, परसने को उठाया पदार्थ हाथ में ही है और वे चलीं—वे दौड़ चलीं उस अमृत के पथ, सूक्ष्म रँगीले 'नाद' के मार्ग से।

बालिकायें, युवतियाँ, तरुणियाँ—आज सभी अद्भुत उन्मादभाव में भागी जा रही हैं। उनके वस्त्र लताओं में, पादपों की झुकी शाखाओं में उलझ रहे हैं, आभरण टूट रहे हैं, कबरियाँ खुल गयी हैं—पृथ्वी पर खिंचते वस्त्र को सम्हालने-जितनी चेतना कहाँ है। वह वंशी-ध्वनि आ रही है। इधर—इधर—ठीक इधर से ही वह ध्वनि पुकार रही है। श्याम बुला रहा है! प्राण तो कब के पहुँच चुके। मन तो कभी उनके पास मोहन को छोड़कर आया ही नहीं। शरीर—श्वास उसे खींचे लिये जा रहे हैं। जैसे वंशी के स्वरों में उनके श्वास आबद्ध हो गये हों।

'कहाँ चली तू!' वह तरुण गोप—बड़ा रूक्ष, बड़ा क्रूर, बड़ा निष्ठुर और बड़ा बलवान् है। बेचारी पत्नी उससे काँपती ही रहती थी। आज वह पति के चरण दबाने बैठी थी। वंशी बजी और फिर क्या उसे पता था कि वह क्या कर रही है। उठी ही थी कि गोप ने झपटकर हाथ पकड़ लिया। किसी ने पकड़ भी लिया, उसे पता नहीं; किन्तु श्वास—श्वास तो मुरली खींच रही है। वह दुर्बल सुकुमार रमणी और वह सुपुष्ट मल्ल गोप—पर गोप को लगा कि आज वह पत्नी को पकड़े रहने में समर्थ नहीं है। आज वह पता नहीं कहाँ की शक्ति पा गयी है—प्रश्नों का उत्तर तक तो देती नहीं और हाथ छुड़ाकर भागने के लिये छटपटा रही है। आज झटक दिया उसने पति को और गोप—सचमुच लड़खड़ा गया वह।

'चल, जा! देखें कैसे जाती है!' अपने को सम्हालकर वह गोप दौड़ गया कक्ष से बाहर और शीघ्रता से द्वार बंद कर दिये। 'श्याम!' गोपी को यह सब कहाँ पता है। वह तो दौड़ी—मस्तक टकरा गया द्वार से—गिर पड़ी धम् से भूमि पर। 'श्याम!' ओह, वह त्रिभुवनमोहन मिला नहीं। वह तड़पन, वह व्याकुलता—वह क्या वाणी में आ सकती है। कल्प-कल्प की नरक-यातना भी उससे कम ही दुःख देगी। पाप—जिसने कभी पाप किये हों, उसका जन्म भी क्या इस व्रजभूमि में हो सकता है। श्याम के सुन्दर श्रीमुख को जिनके नेत्रों ने देखा हो, उनके पाप कहाँ और कैसे! लेकिन यदि कोई कषाय, कुछ अमङ्गल, कुछ प्राकृतांश रहा हो—यह वेदना, यह कल्पनातीत मर्म-पीड़ा—हो चुका उसका प्रतिकार।

'श्याम!' कोई व्याकुल प्राण पुकारे और कन्हाई न आये! 'यह आया मोहन—यह मयूर-मुकुट, यह गोरोचन-तिलकाङ्कित भाल, यह कुटिल भ्रूमण्डल, ये हँसते-से विशाल लोचन, ये कुण्डल-छवि-मण्डित झलमल करते मणि-दर्पण-से कपोल-युगल, ये मन्द-मन्द मुस्कराते पतले किंशुकारुण अधरोष्ठ—भुजाएँ—दीर्घ भुजाएँ बढ़ीं—हृदय में लगा लिया उसने!' पुण्य—जन्म-जन्मान्तर के पुण्य भी क्या यह परमानन्द देने में समर्थ हैं? बड़े पुण्यों से व्रज में जन्म होता है, कोटि-कोटि जन्मों के तप से मोहन एक क्षण के लिये हृदय में आता है, अपार पुण्य-राशि होगी इसकी—वह सब तो घलुए में चली गयी। पाप-पुण्य का लेखा-जोखा तो तभी समाप्त हो चुका, जब मोहन को पाने की प्यास उठी। जो चला उसकी ओर—कौन अटका सकता है उसे। वह गयी—वह तो पहुँच भी गयी अपने हृदय-धन के समीप।

'क्या हुआ?' गोप ने भड़-भड़ाकर द्वार खोल दिये। द्वार पर सिर टकराने का धक्का, गोपी के भूमि पर गिरने का शब्द—दोनों सुने उसने और आतुरता-पूर्वक द्वार खोले। एक क्षण—एक क्षण ही तो लगा उसे; किंतु एक क्षण तो पता नहीं कितने कल्पों का अन्तर्भाव किये रहता है। ये उत्तान

नयन, यह श्रीहीन शरीर—जिसे शरीर ही चाहिये, वह सम्हाल ले अपना शरीर। श्रुतियों के मन्त्रों द्वारा, अग्नि की साक्षी में उसे यह शरीर ही तो मिला था, अपने स्वत्व पर ही तो उसे गर्व था—यह धरा है उसका स्वत्व। प्राण—वे तो जिसके थे, उसके समीप पहुँच गये।

गोपिका नहीं जा पायी, वह—उसका शरीर नहीं जा सका, यही कहना ठीक है और उसे रोकनेवाला उस शरीर के पास मस्तक पर हाथ रखे उसके शरीर के समीप भूमि पर बैठ गया है। जैसे उसमें भी चेतना न हो। वह सोचने की शक्ति ही खो बैठा है। कितना अनर्थ हो गया उससे! ऐसी—लगभग इसी प्रकार की दशा उन सबकी हुई—जिन्हें उनके निष्ठुर स्वजन बलात् रोकने में सफल हो गये। उनकी सफलता—शव मिला उन्हें। इससे तो विफल होना ही श्रेष्ठ था।

× × × ×

गोपियाँ दौड़ती, उलझती, भागती आयीं—एक साथ ही आयीं। वे एक साथ ही तो चली थीं। एक साथ ही तो वंशी-ध्वनि पड़ी थी उनके श्रवणों में। अस्त-व्यस्त वस्त्राभरण, बिखरे-से केश-पाश, दौड़ने की गति ने श्वासों का वेग बढ़ा दिया। एक साथ आयीं और श्याम के चारो ओर मण्डलाकार झम् से सहसा रुक गयीं। वह शिलातल, वह पारिजात-पादप, उसके झरते उज्ज्वल श्वेत सुमन। उस शिला पर बैठा वह मयूर-मुकुटी। उसकी अलकों में पारिजात के उज्ज्वल पुष्प नील क्षितिज में तारकों की भाँति उलझ गये हैं। गोपियों के परिशुद्ध चित्त ही तो वहाँ उलझकर व्यक्त नहीं हुए? सब के नेत्रों में लालसा, लज्जा और जाने क्या क्या है। अधरों पर मन्द हास्य, जैसे बिकच कमलिनियों ने इन्दीवर को घेर लिया हो।

'बड़ी भाग्यवती हैं आप सब! आप सबका स्वागत! यहाँ कैसे पधारीं आप? मैं आप लोगों का कौन-सा प्रिय कार्य कर सकता हूँ?' नटखट कहीं का, पहुँचते ही वंशी झटपट अधरों से हटाकर कटि में खोंस ली और सम्हलकर बैठता हुआ इस प्रकार पूछने लगा। जैसे कभी का परिचय ही न हो इन गोपियों से।

'अरे, मुझे कुछ विलम्ब हो गया इधर आये। व्रज में कुशल तो है? वहाँ कोई असुर तो नहीं आया? आप सब इस प्रकार अस्त-व्यस्त भागी-दौड़ी कैसे आयी हैं?' क्या कहना है, जैसे व्रज में कोई गोप नहीं है, जो समाचार देने आ सके। कैसा स्वर शङ्कायुक्त बना लिया है! गोपियों को हंसी न आये तो क्या हो।

'यह बड़ी भयानक रात्रि है। इसमें बड़े-बड़े भयंकर जीव गुफाओं और बिलों में से निकलकर घूमते हैं। यह वन है, यहाँ रात में स्त्रियों को ठहरना नहीं चाहिये। आप लोग झटपट व्रज को लौट जायँ।' यह श्याम, जैसे वन में उसे कोई भय नहीं और स्त्रियों के लिये बड़ा भय है। कैसी बातें गढ़ना और मुख बनाना सीख गया है यह।

'तुम्हारे माता-पिता, तुम्हें ढूँढ़ते होंगे, वे बड़े चिन्तित होंगे, तुम्हारे पुत्र तुम्हारे लिये रो रहे होंगे, तुम्हारे भाई तुम्हारा पता लगाने इधर-उधर निकल पड़े होंगे, सब तुम लोगों की प्रतीक्षा करते होंगे। तुम लोग स्वजनों को दुखी मत करो!' आज ही पता नहीं स्वजनों की इतनी चिन्ता क्यों जाग्रत् हो गयी है; लेकिन वाणी में 'आप' के बदले 'तुम' आया, लक्षण तो अच्छे हैं।

'अरे, तुम सब तो खड़ी ही हो! अब भला, यहाँ रुकने का प्रयोजन क्या! तुमने इस उज्ज्वल धवल चन्द्रिका में स्नान-से किये पुष्पित वृन्दावन की शोभा तो देख ही ली, श्रीयमुनाजी को स्पर्श करके आते शीतल मन्द वायु के झूले पर झूलते-झूमते अरुण किसलय, पत्र एवं पुष्पगुच्छों की छटा भी देख ली; अब देर मत करो! जल्दी घरों को लौटो। तुम सब तो साध्वी हो, पतिव्रता हो, शीघ्र जाकर पतियों की सेवा करो। तुम्हारे बछड़े बार-बार पुकारते होंगे, जाकर गायों को दुहो! तुम्हारे बच्चे क्रन्दन करते होंगे, भूमि पर लोट-लोटकर हिचकियाँ लेते हुए रोते होंगे, उन्हें जाकर दूध पिलाओ।' ये लड़कियाँ—इन्हें माता पिता, भाई, किसी का भय नहीं लगता! ये युवतियाँ—ये पतियों से भी डरती नहीं! ये तरुणियाँ—वात्सल्य भी इन्हें विचलित नहीं करता! ये तो हिलने का नाम तक नहीं ले रही हैं। सब मुख नीचे झुकाये खड़ी हैं चुपचाप।

'अच्छा, तुम्हारा चित्त मुझमें लगा है। तुम मेरे प्रेम के कारण यहाँ दौड़ी आयी हो!' अब की बार श्याम ने ठीक बात कही। सबके मुखों की अरुणिमा बढ़ गयी। यह चपल कितनी देर पर तथ्य पर आया, लेकिन यह तो वैसा ही गम्भीर बना कहता जा रहा है--'यह कोई बुरी बात नहीं, यह तो स्वाभाविक है। मुझसे सभी प्राणी प्रेम करते हैं!' धूर्त कहीं का—सभी प्राणियों का प्रेम और इनका यह लोकोत्तर विशुद्ध परम प्रेम-- दोनों समान ही हैं? जान-बूझकर यह वञ्चना!

"स्त्रीका परमधर्म बिना किसी छल-कपट के पति की सेवा करना और पति के स्वजनों एवं संतानों का भरण-पोषण करना है। जो स्त्री परलोक में कल्याण चाहती हो, उसे शील-हीन (क्रोधादियुक्त) ऐश्वर्यहीन। कुरूप एवं समाज में निन्दित) वृद्ध, मूर्ख तथा निर्धन पति का भी त्याग नहीं करना चाहिये, यदि पति पापी (धर्म-भ्रष्ट) न हो। तुम्हारे पतियों में तो इनमें से कोई दुर्गुण नहीं हैं। फिर कुलीन स्त्री के लिये उपपति (परपुरुष) की कामना परलोक नष्ट करनेवाली, अयश देनेवाली, अत्यन्त दुःखद, भयप्रद और सब कहीं (शास्त्र और लोक में) निन्दित मानी गयी है। रही मेरी बात—सो मेरे गुण एवं चरित्रों को सुनने से, मुझे देखने से, मेरा ध्यान करने से और निरन्तर मेरे नाम-गुण एवं लीला के कीर्तन से जैसा मुझ में प्रगाढ़ भाव प्राप्त होता है, वैसा भाव मेरे समीप रहने से नहीं प्राप्त होता। प्रत्येक दृष्टि से तुम लोगों का लौटना ही उचित है। अतः तुम सब अपने-अपने घरों को अभी लौट जाओ।" बड़ी गम्भीरता से, बड़े शान्त-स्निग्धस्वरों में यह पाण्डित्य प्रकट किया गया। ऐसा बैठा है यह वनमाली, जैसे गोपियों से उसका किसी प्रकार का कोई लगाव ही न हो।

'श्यामसुन्दर तो परिहास नहीं कर रहे हैं, वे तो बड़ी ही स्थिरता से बैठे हैं।' गोपियों ने देखा—क्या-क्या सोचा था उन्होंने, कितनी उमंग, कितना उल्लास लिये दौड़ी आयी हैं वे। यहाँ सुनना था क्या उन्हें। उनके मुख झुक गये, जैसे सायंकाल कमलिनियाँ संकुचित हो गयी हों। वे उत्फुल्ल मुखपीताभ हो गये। उनका संकल्प ही नष्ट हो गया। उनका विषाद—उनकी चिन्ता—कहाँ पार है उनकी इस मनोवेदना का। कष्ट का अपार वेग—नीचे झुके मुख के कमल-दल-विशाल लोचनों से अश्रुप्रवाह चल रहा है, उष्ण निःश्वास ने पतले बिम्बारुण अधरों को सुखा दिया है, अश्रु के साथ अञ्जन ने कपोल से वक्ष तक पर कालिमा फैला दी है; जैसे भीतर की निराशा, अन्तर की आकुलता व्यक्त हो गयी हो। अपने चरणों के अरुण मृदुल अङ्गुष्ठों से भूमि कुरेदती वे चुपचाप खड़ी हैं। 'यह निष्ठुर—यह तो पिघलता नहीं; पर क्षमामयी, तुम क्यों अपनी गोद में स्थान नहीं देतीं!' जैसे भूमि को वे पादाङ्गुष्ठ से प्रेरित करती हों कि अब तो फटो और हम सबों को अङ्क में ले लो।

ये श्रीकृष्ण—ये परम प्रियतम—इन्हीं के लिये घर-द्वार, स्वजन-बान्धव, समस्त कामनाएँ छोड़कर वे दौड़ी आयी हैं और ये इस प्रकार बोल रहे हैं—जैसे कोई परिचय ही न हो। किया क्या जाय, आशा बलवती होती है; जिसमें अधिक प्रेम हो, वही पराजित होता है। श्रीकृष्ण निष्ठुर हो जायँ, ठुकरा दें, उपेक्षा कर दें; पर ये—ये कहाँ जायँ उनको छोड़कर। 'युगों के समान पल बीत रहे हैं, कोई आशा नहीं, वैसे ही बैठा है यह निष्ठुर!' किसी प्रकार नेत्र पोंछे उन्होंने, वाणी स्पष्ट नहीं होती, कण्ठ भरा है; किंतु प्रार्थना के अतिरिक्त मार्ग भी क्या? रोती, हिचकियाँ लेती, गद्गद स्वर, अस्पष्ट वाणी में वे कहने लगीं—वे प्रार्थना करने लगीं! भगवती हंसवाहिनी, वीणापाणि कब ऐसा सौभाग्य मिलेगा उन्हें सार्थक होने का। सेवा का यह स्वर्ण—सुयोग वे कैसे छोड़ देंगी। गोपियों की वाणी—प्रेम-विह्वल उस वाणी में प्रतिभा की अधिष्ठात्री अपनी सम्पूर्ण सेवा अर्पित कर के कृतार्थ ही हो सकती हैं।

'मोहन, संत और शास्त्र तुम्हें विभु कहते हैं। तुम जानते हो कि समस्त लौकिक पार-लौकिक भोगों को छोड़कर हम तुम्हारे श्रीचरणों में आयी हैं! यह जानकर तुम्हें ऐसी नृशंस बात नहीं कहनी चाहिये! हम तुम्हारी सेविकाएँ हैं, दुराग्रह के वश होकर हमारा त्याग मत करो! हमें उसी प्रकार स्वीकार करो, जैसे आदिपुरुष श्रीमन्नारायण मुमुक्षु-जनों को स्वीकार करते हैं!'

'श्यामसुन्दर, तुम आज बड़े धर्मज्ञ बन गये हो ! तुमने अभी जो पति-पुत्रों तथा सुहृदों के अनुकूल रहकर उनकी सेवा करना स्त्रियों का परम धर्म बताया है, यह तुम्हारा उपदेश तुम्हारे श्रीचरणों की सेवा में ही सार्थक होता है; क्यों कि समस्त शरीरधारियों के तुम परम प्रिय एवं आत्मा हो। तुम्हारी सेवा ही सबकी वास्तविक सेवा है !'

'ये पति, पुत्र, स्वजनादि--ये तो नित्य संसार में लगाकर कष्ट ही देने वाले हैं, इनसे प्रयोजन क्या। जो चतुर हैं, विज्ञ हैं, वे यह समझकर तुमसे ही अनुराग करते हैं। तुम्हीं हमारे परमेश्वर हो, हम पर प्रसन्न हो ! कृपा करो ! चिरकाल से हमने आशा की है तुमसे; कमल-लोचन, उस सुदीर्घ आशा को इस प्रकार झट से तोड़ो मत !'

'बड़े मजे से तुमने हमारे चित्त को चुरा लिया, अब कहते हो कि घर लौट जाओ। अब तो हमारे हाथ गृहकृत्य में लगेंगे ही नहीं, हमारे पैर तुम्हारे श्रीचरणों के समीप से एक पद हटाने पर भी हटने में समर्थ नहीं। तुम्हीं बताओ, हम कैसे व्रज लौटें, और वहाँ जाकर करें भी क्या ?'

'तुम्हारे मन्द हास्य, चपल कटाक्ष तथा इस श्रवण-मोहन वंशीनाद ने हमारे हृदय में उत्कण्ठा की अग्नि प्रज्वलित कर दी है। अच्छा यही है कि तुम इसे-अपने स्पर्श से शान्त कर दो; नहीं तो ध्यान के द्वारा इस विरहाग्नि में शरीर भस्म करके तुम्हें प्राप्त तो कर ही लेंगी। इससे तो तुम हमें रोक सकते ही नहीं हो !'

'कमलनयन, तुम्हारे ये श्रीचरण--सिन्धुसुता इन्हें एक क्षणके लिये छोड़ना नहीं चाहतीं। घर-द्वार छोड़कर वन में तप-निरत मुनिजन इन्हीं से प्रेम करते हैं, हमने जब से इन्हें देखा है--तभी से हृदय इनसे पृथक् रहने में असमर्थ हो गया है। हम तुम से पृथक् अब कैसे रह सकती हैं।'

'महालक्ष्मी को तुमने अपने वक्षस्थल में निवास दिया; किंतु वे रमा, जिनकी एक कृपा-कोर के लिये समस्त सुर एवं असुर सम्पूर्ण प्रयास करते रहते हैं, तुलसीचर्चित, तुम्हारे परम प्रिय भृत्यों से सेवित इन श्रीचरणों में ही स्थिर रहती हैं, हम सब भी तो उन्हीं की भाँति तुम्हारी चरण-रज की ही शरण हैं, हमारा ही तुम क्यों उपेक्षा करते हो !'

'समस्त दुखों के निवारक श्यामसुन्दर, अब हम पर प्रसन्न हो ! तुम्हारी सेवा प्राप्त होगी, इसी आशा से हम घर-द्वार छोड़कर यहाँ आयी हैं। पुरुष-भूषण, तुम्हारे मनोहारी स्मित और चपल कटाक्ष ने हमारी आकांक्षा को तीव्र कर दिया है, हमें अपनी दासियाँ बना लो !'

'हम तो तुम्हारी दासियाँ हो चुकीं, तुम्हारा यह कुटिल अलकों से घिरा चन्द्रमुख, यह रत्न-कुण्डलों से झलमलाते कपोलों की छटा, यह अधर-सुधा-स्निग्ध उज्ज्वल हास्य, यह चपल निरीक्षण, ये समस्त चराचर को अभय देनेवाले भुज-युगल और यह एकमात्र श्री का नित्य निवास विशाल वक्ष -हमने तो जब से इसे देखा, तभी से तुम्हारी दासियाँ हो गयीं हैं।'

'तुम्हारा यह भुवन-मोहन रूप, मुरली की यह उन्माद भरी सम्मोहन स्वर-लहरी, भला त्रिलोकी में ऐसी कौन-सी स्त्री है, जिसे ये विचलित न कर दें ! प्रियतम, हम अन्ततः तो नारी ही हैं, हममें मनुष्य का ही हृदय है, तुम्हारी वंशी-ध्वनि ने तो गायों, पक्षियों, वन-पशुओं को ही नहीं वृक्षों तक को द्रवित कर दिया है। देखो न, सब के अब तक रोमाञ्च हैं !'

'जैसे आदिपुरुष नारायण भगवान् वामन के रूप में स्वर्ग की रक्षा के लिये ही उपेन्द्र बने हैं, वैसे ही यह स्पष्ट है कि तुम इस व्रज के भय एवं कष्ट को दूर करने के लिये ही उत्पन्न हुए हो ! हम अत्यन्त संतप्त हैं, तब तुम क्या हमारे ताप को दूर नहीं करोगे ? श्याम, हम तुम्हारी किंकरियाँ हैं, दासियाँ हैं, हमारे मस्तक एवं हृदय पर अपने अमृत-स्यन्दी अभय कर रखो और हमें इस ताप से बचाओ।'

श्यामसुन्दर हँस पड़ा -कब तक वह इस प्रकार इन सबों को रोते-हिचकते देख सकता था। शिला से कूद कर उनके मध्य में आ गया। 'अरे, तुम सब तो सचमुच रोने ही लगीं।' उसने स्नेह-पूर्वक पटुके से नेत्र पोंछ दिये सबके ! एक साथ, एक समय ही सबके नेत्र।

'यहाँ पूरा प्रकाश नहीं है ! इन वृक्षों की छाया से हटकर आओ चलें इस कोमल उज्ज्वल पुलिन पर !' वह मुड़ा और उसके साथ चलीं उसे घेरे वे सहस्रशः गोपियाँ, जैसे गजपति को करिणियाँ घेरे चलती हों। गोपियों का शोक, उनका रोना, अश्रु—ये सब तो कब के दूर हो गये। श्यामसुन्दर बड़ा नटखट है—कितने ढोंग करता है यह ! सबके मुख प्रसन्नता से खिल गये हैं। मोहन बार-बार चिढ़ाकर खिलखिलाकर हँसता जा रहा है और ये सब तो अकारण भी हँसती हैं।

उज्ज्वल पुलिन, कोमल वालुका, कौमुदी-स्नात दिशाएँ, लहराती कलकल करती यमुना, शीतल-मन्द-सुगन्धित-वायु—किसी ने स्वर उठाया और मोहन गाने लगा, दूसरी सब उसके राग में कण्ठ मिलाने लगीं। वह किसी की चोटी खींचेगा और किसी को गुदगुदायेगा ही—श्रीकृष्ण भी क्या शान्त रह सकता है। ये सब भी क्या कम चञ्चल हैं। दौड़ना, कूदना, हँसना, गाना--सब खेल में लग गयीं उस क्रीड़ाप्रिय के साथ।

मोहन ने किसी की अलकें बिखरी थीं—सुधार दीं, किसी के आभूषण ठीक कर दिये, किसी के मुख पर फैले रोते समय के अञ्जन-चिह्नों को पटुके से पोंछ दिया, किसी का हार सुलझा दिया और किसी के उत्तरीय ठीक कर दिये। कन्हैया है ही स्नेहमय।

मदन—मूर्ख काम, वह समझता है कि उसकी विजय समीप ही है। उसके कुसुम-शर, मलय-मारुत, वसन्त इस शरद् में—उसे सब सफल-से दीखते हैं। अब उसके मुख्य बाण—कटाक्ष, स्पर्श, हास्यादि—उसे लगता है कि मोहन आवेश में है। उसे इतनी भी समझ नहीं कि यह खिलाड़ी तो माखन का लोंदा दिखाकर फिर अँगूठा बता देने का चिर अभ्यस्त है। मदन को तो प्रोत्साहित कर रहा है यह। श्रीवृन्दावन और वहाँ मदन का विलास--उस मयूर-मुकुटी की परम मञ्जु क्रीड़ा के लिये जो परिशुद्ध दिव्यतम प्रस्तुति योगमाया ने की है--भ्रान्त काम इसे अपना और वसन्त का प्राकृत वैभव मान बैठा है। श्याम तथा गोपियों के विशुद्ध सात्विक भाव—उसे अपने विकार दीख रहे हैं। इतना मूर्ख है वह और विजय करने आया है।

'मोहन, मेरी वेणी में ये पुष्प लगा दो !'

'श्याम, मेरे उलझे केश-पाश सुलझा तो दो !'

'गोपाल, मेरे लिये इस मल्लिका के सुमनों से केयूर बना दो !'

गोपियों का स्नेह-भरा आग्रह वह कैसे टाल दे। किसी के आभूषण ठीक करने हैं, किसी का उत्तरीय धूलि-सना है—उसे झाड़ देना है, किसी को गुञ्जा चाहिये, किसी को पुष्प-गुच्छा। श्याम-सुन्दर सब के अनुरोध की रक्षा कर रहा है।

'मोहन, मेरे ही हैं ! वे मुझे ही सर्वाधिक चाहते हैं !' यहाँ तक तो ठीक; किंतु 'मेरे अतिरिक्त वे किसी को नहीं चाहते, मैं सर्वश्रेष्ठ हूँ। मेरे लिये वे सब को छोड़ देंगे। सब मुझ से तुच्छ हैं—सब।' मान—विशुद्ध सही, पर उसमें भी प्रेष्ठ की अवमानना तो है ही। उसे तो प्रशमित होना ही चाहिये।

'श्याम, पहले वे अरुण किसलय मुझे दे दो ! मैं उन्हें कर्णपल्ली पर सजाऊँगी !

'मोहन, पहले मेरे लिये वह उत्फुल्ल कुमुदिनी ला दो !' एक साथ कइयों ने आग्रह किया और फिर तो सबने कुछ-न-कुछ माँगा। चाहिये किसी को कुछ नहीं, यह तो स्पर्धा है कि मयूर मुकुटी पहले किस की बात सुनता है।

'तुमने पहले मेरी बात नहीं रखी, नहीं बोलती मैं तुम से। यह लो अपना किसलय !' सब के आदेश एक साथ ही पूरे हुए; किंतु सबने देखा समीप की सहेली को भी उसका अभीष्ट पदार्थ मिल गया। जब उसके पास वह पदार्थ आ गया है, तब अवश्य श्याम ने पहले उसे दिया होगा। 'कितना पक्षपाती है यह, कितना कृत्रिम स्नेह दिखाता है !' मान जगा एक साथ सब में। सब ने वे उपहार के पुष्पादि फेंक दिये और मुख घुमा लिया। उन्हें भूल ही गया कि अभी कुछ देर पूर्व ही वे रो रही थीं, गिड़गिड़ा रही थीं। श्यामसुन्दर के स्नेह और सम्मान ने उन्हें 'मान' दिया।

एक—केवल एक बची इस मान से ! यह भोली लड़की, यह क्या जाने कि मान होता क्या है। श्रीकीर्तिकुमारी में इतनी चपलता कहाँ से आये कि गोपियों की इतनी भीड़ में वे मोहन से कुछ माँगने की स्पर्धा करें और इसकी आवश्यकता भी क्या। जब से मोहन उस शिला से उठकर इन सब के मध्य में आया है, वह उन्हीं को मनाने, सजाने में तो लगा है। वे किस से स्पर्धा करें। क्या हानि है, यदि मोहन किसी को सजाता है; मनाता है। वे तो सदा चाहती हैं कि श्यामसुन्दर पहले उनकी सहेलियों को प्रसन्न करें; लेकिन मोहन—और इस वनमाली के मुख की ओर देखने पर क्या उसका प्रतिवाद किया जा सकता है। स्पर्धा-अमर्ष—किससे करें वे—इन अपनी सहेलियों से ? इन गोपियों से ? छिः ! ये तो उन्हें स्वतः अपने से अधिक प्रिय हैं !

'हैं !' श्रीवृषभानुकुमारी तनिक चौंकी, पर श्यामसुन्दर इस प्रकार देख रहे हैं हाथ पकड़ कर कि प्रतिवाद सम्भव नहीं। चुपचाप वे चल पड़ीं उनके साथ। सघन वन, रात्रि का समय, श्यामसुन्दर को छिपने में कितने क्षण लगने थे। गोपियों के मध्य से यह युगल जोड़ी अदृश्य हो गयी।

× × × ×

मन्मथ—हताश, निराश, पराजित मन्मथ, उसका सारा प्रयास व्यर्थ गया ! उसके श्रेष्ठतम साधनों के मध्य श्यामसुन्दर ने उसे ललचाकर अँगूठा दिखा दिया ! उत्तेजित करके धक्का दे दिया ! उसके सम्मोहन शर कुण्ठित हो गये। उसके सुमन-बाण—अब वे वृक्षों से झरने लगे हैं।

'भगवान ब्रह्मा यहाँ चरण-रज की कामना कर गये ! देवराज इन्द्र ने करबद्ध किरीट झुकाया इस भूमि पर !' मदन दो क्षण में पराजय के खेद से मुक्त हो गया। 'पर मेरा अपराध—मेरे अपराध की क्षमा कैसे मिलेगी ?' इस दिव्य भूमिपर तो काम का उपस्थित होना भी अपराध ही है। उसने व्रजभूमि से प्रस्थान किया। उसके अपराध का मार्जन तो देवर्षि ने बताया उसे—उसे द्वारकेश का पुत्र बनकर उनका वात्सल्य प्राप्त करना है।

—❀⊂❀⊂❀—

मान-भङ्ग

"व्रजवनौकसां व्यक्तिरङ्ग ते वृजिनहन्त्र्यलं विश्वमङ्गलम्।
त्यज मनाक् च नस्त्वत्स्पृहात्मनां स्वजनहृद्रुजां यन्निषूदनम्॥"

—भागवत १०।३१।१८

काम—पराजित, लज्जित, व्यथित काम गया, वह चला गया। उसका अलक्ष्य सूक्ष्मतम प्रभाव भी गया उसके साथ। इस दिव्य भूमि में आज नटनागर जिस दिव्य तम लीला का आविर्भाव करने वाला है—काम—तटस्थ काम उसकी भूमिका प्रस्तुत करके ही तो उपरत हो जाता है। मोहन के लिये जो कामना है, जो उत्कण्ठा है, वह क्या कामना रह पाती है। उसका वासनात्मक अङ्ग तो दूर हो कर रहेगा। यह तो लोकोत्तर परिशुद्ध प्रेम भूमि पर होने वाली क्रीड़ा है।

काम गया और साथ ही गया गोपियों का मान भी। 'मान'—वह भी तो कामका ही एक रूप है। गोपियों ने सोचा था—श्यामसुन्दर उन्हें मनायेंगे, अनुनय करेंगे। उन्हें गर्व हो गया था कि वे परम सुन्दरी हैं, त्रिभुवन-मोहन भी उन पर मुग्ध हो गया है। कहाँ? यह सब तो कुछ नहीं हुआ। दो क्षण मुख फेरे रहने पर भी कोई उन्हें मनाने नहीं आया। तनिक गर्दन घुमाकर कटाक्ष-पूर्वक देखा उन्होंने—'कन्हाई आ रहा है न! लेकिन वह तो समीप नहीं दीखता। अवश्य वह मेरी उपेक्षा करके किसी दूसरी के समीप चला गया!' पूरा मुख घुमा कर देखा उन्होंने!

श्यामसुन्दर! मोहन! प्राणाधार! कहाँ हो तुम? कहाँ जा छिपे हो? आओ, हम अब तुम से मान नहीं करेंगी! तुमसे कुछ नहीं माँगेंगी! कुछ नहीं कहेंगी!' मुख घुमाते ही वे व्याकुल हो गयीं। कहाँ—कहीं, किसी के समीप तो वह नव-जलधर-सुन्दर दीखता नहीं। सबने एक दूसरे के मुख की ओर देखा। नेत्रों ने ही कह दिया—'मैं भी तेरे-जैसी ही भाग्यहीना हूँ।' वे व्याकुल होकर पुकारने लगीं!

'प्रियतम, छिपो मत! हमारे प्राण अत्यन्त व्याकुल हैं! इस घोर रात्रि में तुम्हारे बिना हमें अत्यन्त भय लग रहा है! रूठो मत! दया करो! अपनी इन दासियों पर दया करो! आओ! आओ मोहन!' लेकिन आस-पास के वृक्षों की तो डाली-डाली देख ली गयी, समीप की कुञ्जें भी छान लीं, वह तो कहीं है नहीं। वह नीलोज्ज्वल ज्योति क्या वृक्षों और कुञ्जों में छिपी रह सकती है?

'मोहन हमारे मान करने से रूठ गये! वे हमें छोड़कर चले गये!' वह चाहे चला जाय, उसे छोड़कर यहाँ इनकी तो कहीं गति है नहीं। 'कहाँ गये श्यामसुन्दर? कोई बता देता! कोई कह देता कि वह कमल-लोचन कहाँ है।' आकुलता में बुद्धि रहती कहाँ है। उन्हें लगा, ये तरु, लता, वृक्ष—इनमें से किसी ने तो देखा ही होगा उस वनमाली को जाते हुए। वह इन्हीं के यहाँ तो कहीं छिपा होगा, यदि ये बता दें—उन्होंने वृक्षों लताओं आदि से ही पूछना प्रारम्भ किया।

जो समस्त प्राणियों के बाहर-भीतर सदा सर्वत्र क्रीड़ा करता है, उसे ये वनस्पति नहीं जानते होंगे? वह इनके समीप नहीं होगा? श्रीवृन्दावन के ये दिव्य भावरूप तरु, लता, वीरुध्, तृणादि—कल्पतरु जिनके सम्मुख कण्टक-तरु-सा हेय जो चतुवर्ग-चिन्तामणि रूप हैं, वे क्या पूछने पर उत्तर भी नहीं दे सकते? लेकिन कैसे दें वे उत्तर—उनका अधीश्वर उन्हें जड बनाकर क्रीड़ा कर रहा है उनके मध्य, उनकी मूकता ही श्याम की आज सेवा हो गयी है, योगमाया उन्हें आदेश नहीं देतीं बोलने का और यदि वे बोल पड़े—श्याम की मधुमय लीला के दर्शन का सौभाग्य कैसे बना रहेगा उनका।

गोपियाँ—उन्हें कुछ सोचने का अवकाश नहीं । वे कुछ सोच नहीं सकतीं । वे तो पूछती जा रही हैं—'पीपल, पाकर, वट, तुमने उस नन्दनन्दन को देखा है कहीं, जो अपने प्रेम-पूर्ण मन्द हास्य और बंक बिलोकन से हमारा चित्त चुराकर छिप गया है ?' कोई उत्तर देगा, कोई कुछ कहेगा, इसकी प्रतीक्षा करने-जितना धैर्य उनमें नहीं है। 'कुरबक, अशोक, नाग, पुन्नाग, चम्पक, हम मानिनियों के मान को ध्वस्त करके मन्दस्मित-युक्त श्री रामानुज इधर से गये हैं ?' वटादि बड़े वृक्षों के नीचे तो बहुत ही सघनता है और ये मध्यम वृक्ष भी भला, लता-कुञ्जों की छाया के कारण पूरा वनपथ कहाँ देख पाते हैं। गोपियाँ पूछती ही जा रही हैं—'कल्याणी तुलसी, तुम्हें गोविन्द के श्रीचरण अत्यन्त प्यारे हैं ! ऐसा कैसे हो सकता है कि तुम्हें भी उनका पता न हो। उनके विशाल वक्ष पर तुम्हारी वैजयन्ती माला है और उस पर भ्रमरों के समूह मँडराते होंगे । तुमने इधर से जाते उन्हें देखा है ?' न देखा होगा, भला, कहीं तुलसी का भी निकुञ्ज होता है कि उसमें वह चपल छिपने आये।

'मालती, मल्लिका, जाती, यूथिका, तुम लोगों को अपने कोमल करों से स्पर्श करके प्रसन्न करते हुए माधव को इधर से जाते तुम लोगों ने देखा है क्या ?' क्या ठिकाना कि इधर आया ही न हो । यमुना जी के किनारे से ही गया हो । वे तट की ओर मुड़ीं । 'आमड़े, प्रियङ्गु, कटहल, कचनार, अर्जुन, जामुन, आक, बेल, वकुल, कदम्ब, नीप या और भी जो श्रीयमुनाजी के किनारे केवल परोपकार के लिये शरीर धारण करनेवाले तरुवर हैं, आप में से जिन्हें ज्ञात हो, वे हम सबों को श्रीकृष्ण का पता बता दें ! हम उनके बिना जीवनहीन हो रही हैं।'

वृक्षों में तो कोई उत्तर देता नहीं। भूमि की ओर दृष्टि गयी । ये हरित तृण—धरणी का यह रोमाञ्च ही तो है। बड़ी उत्कण्ठा से पूछा उन्होंने—'देवि पृथ्वी, तुमने ऐसा कौन-सा तप किया कि जिसके फलस्वरूप केशव के चरणों के स्पर्श के आनन्द से तुम्हारे अङ्ग पुलकित हो रहे हैं ! यह रोमाञ्च तुम्हें विराट्-रूपधारी भगवान् वामन के पादस्पर्श से प्राप्त हुआ या भगवान् वराह के आलिङ्गन से ?' यदि वामन या वराह के स्पर्श से यह रोमाञ्च है तो ठीक ही है और यदि श्याम-सुन्दर के श्रीचरणों के स्पर्श से है तो धरा को उस वनमाली का पता बताना चाहिये।

'मृगियो, तुम्हारे दीर्घ दृगों को अपने त्रिभुवन-सुन्दर स्वरूप से परमानन्द प्रदान करते हमारे प्रियतम इधर गये हैं ? हम सबों के आलिङ्गन में हमारे वक्ष का कुङ्कुम उनकी कुन्द-पुष्पों की बनी वैजयन्ती माला में लग गया था। उस कुङ्कुम से रञ्जित कुन्द-माला की सुगन्ध उन हमारे कुलपति के पास से वायु इधर से ही ला रहा है ! गये तो वे इधर ही हैं।' भला, उस कुन्द-माला की सुरभि पहिचानने में कहीं भूल हो सकती है उनसे। 'तरुवृन्दो, वाम बाहु अपनी परम प्रिया श्रीकीर्ति कुमारी के कंधों पर रखकर, दाहिने हाथ में कमल लिये वे श्रीबलराम के छोटे भाई अपनी तुलसी की बनमाला पर उसके मादक पराग से मत्त होकर साथ लगे भ्रमर-समूहों को उस लीला-कमल से दूर करते इधर से गये तो हैं, तुम लोगों ने अपनी इन समस्त शाखाओं को झुकाकर अब तक उन्हीं के लिये प्रणाम किया है; पर प्रेम-भरी दृष्टि से तुम्हारी ओर देखकर उन्होंने तुम्हारे प्रणाम का अभिनन्दन भी किया नहीं ?'

'सुरभि आ रही है, वृक्षों ने प्रणाम किया है, श्याम गये तो अवश्य इधर हैं; पर गये कहाँ वे ?' एक ने दूसरी को प्रेरित किया—'सखि, इस लता से पूछ तो। यह अपनी शाखारूपी हाथों से वृक्ष को आलिङ्गित किये है; फिर भी इसमें जो इतना पुलक है, यह जो इतने गुच्छे-के-गुच्छे सुमन हैं, ये वृक्ष के आलिङ्गन से नहीं हो सकते ! अवश्य श्यामसुन्दर का नख-स्पर्श इसे प्राप्त हुआ है। उन्होंने इससे कुछ सुमन लिये हैं और उन्हीं के स्पर्श से यह इस प्रकार पुलकित-पुष्पित हो गयी है।'

उन्मत्त की भाँति वे चाहे जिससे पूछ रही हैं। पूछ रही हैं—अन्वेषण कर रही हैं और किसे ? जिसे वे अन्वेषण कर रही हैं, वह उनसे भिन्न है भी कहाँ। व्याकुलता चिन्तन, अनुराग—सब एक साथ—एक साथ—उनका चित्त तदाकार हो गया। वे भूल गयीं कि वे किसे ढूँढ़ रही हैं।

'श्याम, तुम कहाँ हो ? श्याम कहाँ गये ? श्याम ! श्याम ! और—और मैं ही तो श्याम हूँ !' चित्त तदाकार हो गया चिन्तन से। वे श्याममयी—श्याम हो गयीं। जिसके मन में जो लीला स्फुरित हुई, वह उसी का अनुकरण करने लगी।

'यह पूतना है, मैं इसका स्तन पीऊँगा !' एक ने स्तनपान प्रारम्भ किया। दूसरी भूमि में लेटकर रोते-रोते एक को शकट समझकर चरणों से मारने लगी। किसी ने अपने को बालकृष्ण मान लिया और दूसरी उसे तृणावर्त बनकर उठाकर भागी। कोई श्याम के घुटनों चलने का अनुकरण करती, चरणों को उछालती, वैसे ही चलने लगी। दो गोपियाँ राम-श्याम बनकर खेलने लगीं बच्चों के समान। कोई वत्सासुर के बध का और कोई बकासुर-वध का अनुकरण करने लगीं। कोई यह मानकर कि गायें दूर चली गयीं, श्रीकृष्णचन्द्र की भाँति उन्हें पुकारने लगी। कोई अधरों पर कोई टहनी वंशी के समान रखकर त्रिभङ्गी से खड़ी हो गयी और कुछ वेणु-वादन की प्रशंसा करने लगीं। कोई दूसरी के कंधे पर भुजा रखकर झूमती हुई चलते-चलते कहने लगी—मैं ही कृष्ण हूँ। मेरी ललित गति तो देखो !'

'इस आँधी और वर्षा से डरो मत ! इससे रक्षा का उपाय मैंने कर दिया है !' किसी ने उत्तरीय उठाकर इस प्रकार गोवर्धन-धारण का दृश्य उपस्थित किया।

'दुष्ट सर्प, यहाँ से चला जा ! तुझे पता नहीं कि मैं दुष्टों को दण्ड देने के लिये ही उत्पन्न हुआ हूँ।' इस तर्जन के साथ एक ने दूसरी के मस्तक पर पैर रखा। अपनी समझ से वह कालिय के फण पर चरण रखे थी।

एक ने पुकारा—'अरे गोपो, देखो तो कैसी भयंकर दावाग्नि लगी है। झटपट अपने नेत्र बंद कर लो ! इस संकट से मैं तुम्हारा कल्याण कर दूँगा !' और वह मुख खोलकर वायु खींचने लगी, जैसे दावाग्नि पान कर रही हो। एक ने अपनी माला से एक को एक पेड़ को ऊखल मानकर उसके तने में बाँध दिया और जो बाँधी गयी, नेत्र बंद करके वह भय का नाट्य करने लगी।

न यह सब अभिनय था, न विनोद और न अनुकरण ! कहाँ अवसर है इस सबको वहाँ। श्याम इस पवन में रात्रि में उन्हें छोड़ गया। श्याम, उनका हृदयधन—वे व्याकुल, व्यथित उसे ढूँढ़ रही हैं। चित्त तन्मय हो गया, जो लीला जिसके मन को प्रगाढ़ रूप से सदा स्पर्श करती रही है, उसमें वह व्यक्त हो गयी। बिना इस आत्म-विस्मृति के उस कूटस्थ, हृषीकेश गोविन्द के चरण-चिह्न भी कहाँ मिलते हैं।

'अरे, ये तो श्रीनन्दनन्दन के चरण-चिह्न हैं ! यह क्या इनमें ध्वज, वज्र, अङ्कुश, यव आदि के चिह्न हैं।' एक की दृष्टि वन में घूमते-घूमते तृणहीन निकुञ्ज-पथ में भूमि पर गयी और वह चिल्ला उठी। सहसा बैठ गयी उन चिह्नों के समीप। भला, ये चरण-चिह्न भी कहीं छिप सकते हैं। सब उस पुकार से अपने आप में आयीं। सब एकत्र हो गयीं वहीं।

'आओ, हम सब इन पद-चिह्नों को देखते हुए ढूँढ़ें।' चिह्नों के दोनों ओर होकर, उनको बचातीं, उन्हें प्रकाश में रखतीं, झुकीं, ध्यान से उनपर दृष्टि लगाये सब आगे बढ़ीं।

'इन चरणों के साथ ये और किसी के छोटे-छोटे चिह्न हैं ! किसके हैं ये पद-चिह्न ? ये तो इतने निकट हैं कि जान पड़ता है श्रीव्रजराज-कुमार इसके कंधे पर भुजा रखकर, इसे आलिङ्गन किये गये हैं !' यह श्रीकीर्तिकुमारी की सहेलियों में होती तो यह पूछती ही कैसे। श्यामसुन्दर के दक्षिण चरण के सब चिह्न जिसके वाम चरण में ज्यों-के-त्यों हैं, वह भला, कौन हो सकती है ? दूसरे यूथ को—श्रीवृषभानु-नन्दिनी के मण्डल को तो कुछ नवीन बात लगती ही नहीं। उन्होंने तो उन भूमि-नमित वृक्षों को देखते ही समझ लिया था कि ये वृक्ष श्रीकीर्तिकिशोरी के कंधे पर हाथ रखकर जाते मोहन को अभिवादन करने ही झुके हैं।

'अवश्य ये चरण-चिह्न राधा के ही हैं !' बहुत देर नहीं लगनी थी उसे भी पहचानने में। अन्ततः इस समय वे श्रीराधा ही तो इन सबों के साथ नहीं हैं। एक दीर्घश्वास ली बिचारी ने।

'अवश्य इसने बड़ी आराधना की होगी, सर्वेश्वर भगवान श्रीहरि को इसने प्रसन्न कर लिया। तभी तो हम सबको छोड़कर गोविन्द इसे अकेले ले गये।' कौन कहे इससे कि वे तो आराधना की अधिष्ठात्री होने से ही श्रीराधा कहलाती हैं।

'सखियों, श्यामसुन्दर की यह चरणरज धन्य है! इसे तो लोक-पितामह ब्रह्माजी, भगवान शंकर और भगवती लक्ष्मी भी अपने पापों को दूर करने के लिये मस्तक पर चढ़ाती हैं।' अरे, यह तो उस रज को मस्तक, भाल, नेत्र, कपोल, हृदय पर ही मलने लगी। 'यह ठीक कि सब से श्यामसुन्दर से मान करके उनकी अवमानना का अपराध हुआ। क्या पता कोई पूर्व पाप ही उनके इस वियोग का कारण हो। यह भी ठीक कि यह चरण-रज समस्त पापों को नष्ट करने वाली है—किंतु; यह क्या सूझा पागलपन इसको। इस प्रकार तो चरण-चिह्न ही लुप्त हो जायँगे। उस हृदय-धन को ढूँढने का सहारा भी चला जायगा।' सबने किसी प्रकार रोका इस उद्योग से उसे।

'यह श्रीराधा, उसके ये चरण-चिह्न हमारे मन में अत्यन्त क्षोभ उत्पन्न कर रहे हैं। हम सबको छोड़कर वह अकेला ही अच्युत के साथ चली गयी है···।' इसे तो इस समय भी स्पर्धा ही सूझ रही है।

'देखो, यहाँ उसके चरण-चिह्न दीखते नहीं! अवश्य तृण, अङ्कुर एवं कंकड़ियों से अपनी परम प्रिया के कोमल अरुण चरणों को कष्ट पाते देख प्रियतम ने उसे गोद में उठा लिया है। यह बात तो स्पष्ट है; गोपियों, देखो न अपनी प्रिया को लेकर चलते हुए, उसके भार से दबे श्रीकृष्णचन्द्र के पद-चिह्न यहाँ कैसे गहरे उठे हैं! यहाँ तो पद-चिह्नों में केवल अग्रभाग के चिह्न बने हैं। जान पड़ता है कि यहाँ उन्होंने अपनी प्रियतमा के लिये पुष्प-चयन किया है। पुष्प तोड़ने के लिये पंजों के बल वे खड़े हुए हैं, ये पंजों के ही चिह्न सभी पद-चिह्नों में आये हैं। यहाँ यह किसी के बैठने का चिह्न है। अवश्य यहाँ उन चुने पुष्पों से उन्होंने अपनी प्रिया के केश सजाये होंगे।' पता नहीं क्या-क्या कल्पना करती गयी वह? स्पर्धाजन्य ईर्ष्या के वश। उसे कल्पना ही करना था, कौन रोके उसे। केवल कुछ चिह्नों पर यह सब कल्पना—लेकिन उसे लगता था, वह ठीक कह रही है। खण्डन कौन करे? खण्डन करने-जैसी इस समय स्थिति भी किसकी है।

× × × ×

श्यामसुन्दर—वह तो कीर्तिकुमारी को लिये वन में चला ही गया। दूर-दूर-दूर चलता गया वह। गोपियों की पुकार, उनका रुदन-क्रन्दन इस रात्रि में भी उस तक नहीं पहुँचा। भ्रमरों की गुंजार, कालिन्दी का कलकल, मयूरों का बार-बार केकारव—भला, इसमें नारियों का कण्ठ कहाँ तक पहुँच सकता है।

'मोहन मुझे सबसे पृथक् ले आये हैं। सबको छोड़कर वे मुझसे ही स्नेह करते हैं!' आज स्मरण आया कि बनमाली सदा से कुछ अधिक विशेषता देते रहे हैं उन्हें। अब तक तो कभी कीर्तिकिशोरी ने सोचा ही नहीं कि क्यों श्रीकृष्ण उन्हें सब से कम तंग करते हैं। अनेक बातें, अनेक प्रसङ्ग ध्यान में आये फिर तो। वे यही सब सोचती चली जा रही हैं। तब सचमुच ही मैं सबसे अधिक सुन्दर हूँ। सभी तो इन्हें हृदय से चाहती हैं; पर ये सबको छोड़कर मुझे ही ले आये—कुछ तो विशेषता होगी ही···।' यही या ऐसा ही कुछ मन में आया, आता रहा। मान जगा।

'अब तो मुझसे चला नहीं जाता। मैं दो पग भी नहीं चल सकूँगी अब। तुम्हें जहाँ ले चलना हो, मुझे उठा ले चलो! तुम्हारे साथ चलने को मैं मना नहीं करती, पर मुझसे तो चला ही नहीं जाता।' कौन जाने मान था, कौन जाने वह कुसुमकोमल बालिका सचमुच थक ही गयी थी। कितनी दूर ले आया था श्याम उसे—वह थके भी क्यों नहीं।

'अच्छा, तुम मेरे कंधे पर बैठ जाओ!' मुख की ओर देखकर हँसा वह नटनागर और बैठ गया। धूर्त कहीं का—भोली बालिका बिचारी सरलता से कंधे पर बैठने लगी, वह गिर पड़ी भूमि पर। पता नहीं किस समीप की कुञ्ज में वह झट से खिसक गया।

'श्यामसुन्दर ! मोहन ! प्राणाधार !' वह भूल ही गयी कि गिर पड़ी है, कुछ आघात भी लगा होगा। यह घोर वन, यह रात्रि और उसमें अकेली—वह व्याकुल न हो तो करे क्या। कोई उत्तर नहीं उसकी पुकार का। और जोर से—और कातर कण्ठ से पुकारा उसने—'मेरे स्वामी, मेरे प्रियतम, कहाँ हो ? कहाँ हो तुम ? यह तुम्हारी दासी अत्यन्त दुखी है, मोहन, आओ ! आओ, श्यामसुन्दर, दर्शन दो !' इधर-उधर चकित-भीत नेत्रों से देखती, अश्रुधार ढुलकाती, हिचकियाँ लेती वह उन्मत्त-सी उठी, दौड़ी और गिर गयी—'श्यामसुन्दर, दर्शन दो ! मोहन, कहाँ हो तुम ?' लेकिन उसका मोहन तो आज निष्ठुर हो गया है।

'मेरा अपराध—मैं तुम्हारे कंधे पर बैठने चली थी !' वह तो उन्मत्त होकर ऐसे कहने लगी है, जैसे सुननेवाला पास ही छिपा है। 'तुम थोड़ी दूर मुझे ले ही जाते—बहुत थोड़ा कष्ट होता तुम्हें ! प्यारे, अब बहुत कष्ट होगा ! तुम इस देह को लिये-लिये घूमोगे। तुम्हारे बिना ये प्राण टिक नहीं सकते !' हाय, हाय ! वह तो सचमुच घूमकर गिर पड़ी। उसमें तो पुनः उठने के कोई लक्षण ही नहीं।

× × × ×

'कौन—कौन पड़ी है वह ? किसके वस्त्र हैं ?' श्यामसुन्दर को ढूँढ़ती गोपियों ने धवल चन्द्रिका में दूर से भूमि में देखा किसी को मूर्च्छित। वह वस्त्र—वे पहिचाने वस्त्र।

'श्रीराधा !' बालिकाओं के भय-विह्वल कण्ठ से चीत्कार निकली। वे सबसे पहले दौड़ पड़ीं।

'श्रीराधा !' गोपियों ने पुकारा और भागीं वे भी।

'श्रीराधा ! श्रीराधा !' जैसे प्रतिध्वनि में समस्त वनश्री क्रन्दन कर उठी हो।

'श्रीराधा !' ध्वनि मूर्च्छिता के श्रवणों में भी गयी। उसका नाम ही तो संजीवन है। मुरली ने भी तो आज उसे पुकारा था इसी प्रकार। 'श्यामसुन्दर ! प्राणेश ! आयी मैं !' एक झटके से चेतना आयी और उन्मत्त-सी वह कीर्तिकन्या उठकर दौड़नेवाली ही थी। 'ये सखियाँ, ये गोपियाँ—क्या बात है ? कहाँ है वह ?' भौचक्की-सी देखती रह गयी।

'कहाँ हैं श्यामसुन्दर ?' राधा ने ही पूछा।

'कहाँ हैं श्यामसुन्दर ?' यही तो सब उससे पूछनेवाली हैं। यही प्रश्न तो उनके तन, मन, प्राण पूछ रहे हैं अणु-अणु से।

'मैं अभागिनी हूँ ! मैंने उनसे मान किया और वे रूठकर चले गये ! कितना सम्मान दिया था उन्होंने मुझे और मैंने कैसी क्षुद्रता का परिचय दिया—उनका अपराध क्या ? मैं कहाँ उनके योग्य हूँ।' ये श्रीवृषभानुसुता कहाँ कुछ छिपाना जानती हैं। श्यामसुन्दर का भी कुछ दोष है, यह इनके मन में कभी आ भी कैसे सकता है।

बालिकाओं ने सान्त्वना दी, गोपियों ने समझाया। ढूँढ़ना ही तो है उन्हें—दूर तक वन में ढूँढ़ा उन्होंने। वहाँ तक, जहाँ तक प्रकाश पहुँचता था। वन सघन हो गया आगे। अब आगे पत्तों से छनकर भी चन्द्रकिरणें नहीं पहुँचतीं। घोर अन्धकार है। आगे बढ़ने का कोई उपाय नहीं। विवश होकर सबको लौटना पड़ा।

रात्रि अधिक व्यतीत हो गयी, देर हो गयी वन में आये। घर के लोग व्याकुल होंगे। पता नहीं क्या-क्या सोचेंगे लोग; स्वयं वे सायंकाल से इधर-से-उधर वन में भटक रही हैं, उनके भालपर स्वेद की बूँदे झलमला उठी हैं, उनके सुकुमार शरीर अत्यन्त श्रान्त हो गये हैं, यह सब स्मरण किसे है। जब शरीर का ही स्मरण नहीं, तब घरों एवं स्वजनों का स्मरण हो ही कैसे। श्यामसुन्दर, हृदयेश कहीं छिप गये हैं। वे रूठकर चले गये हैं। मान तो कब का गल गया। मोहन मिल जाते—उनका पता लग जाता ! पर अब आगे वन में घोर अन्धकार है। अब उसमें जाकर भी कुछ देखा नहीं जा सकता। सबका मन उसी नवनीत-चोर ने चुरा लिया है। उसीका नाम, उसीका गुण, उसीका रूप, उसी की लीला, सबकी वाणी पर उसी की चर्चा है। सबके हृदय में वही ललित-त्रिभङ्गमूर्ति है। कोई राग से उनके गुण गाने लगी है, कोई परस्पर उनकी चर्चा में लगी

हैं और रुद्धवाणी से उसका चिन्तन कर रही है। जब वन में उसे ढूँढ़ा ही नहीं जा सकता तब भटकने से लाभ ? उनकी कृपा की ही प्रतीक्षा करनी है। क्या पता, वह थोड़ी देर में द्रवित होकर आ जाय। वह पुलिन पर जहाँ सबको छोड़कर गया है, वहीं तो आयेगा। वहाँ किसी को न देखकर घर लौट जाय तो ? सब वही पुलिन पर लौट आयीं। मोहन की कृपा की प्रतीक्षा करनी है उन्हें। उन्होंने सम्मिलित कण्ठ से वहीं बैठकर प्रार्थना प्रारम्भ की।

× × × ×

जीवन के अनन्त क्षेत्र में जन्म-जन्मान्तर के पुण्यों से जब कभी सत्व का पूर्णचन्द्रोदय होता है—अनेक बार होता है; पर सदा वह स्निग्ध शारदीय कौमुदी धन्य नहीं होती। जब कभी स्वयं कृपा करके उसमें श्यामसुन्दर अपनी मुरली-ध्वनि उठा देता है, उस समय भी कोई भाग्यशाली ही उस 'नादब्रह्म' का आकलन कर पाते हैं। कोई ही सब कुछ भूलकर उस 'गीत-धुन' के मार्ग से आत्मविस्मृत-से दौड़ पाते हैं।

साधना का उज्ज्वल पथ, उत्कण्ठा की परमाभिव्यक्ति और उस नवजलधर-सुन्दर की कृपा—आत्मोत्सर्ग का पुण्यपर्व सार्थक होता ही है। व्रज-सुन्दर की वह दिव्य झाँकी—जीवन उन्मद न हो जाय, कैसे सम्भव है।

'मैं भी कुछ हूँ ! मैं साधन करता हूँ ! मैं श्रेष्ठ हूँ ! आराध्य की मुझ पर ही कृपा है ! दूसरे मुझसे तुच्छ ! निकृष्ट हैं ! उनसे मेरी क्या तुलना।' और जहाँ यह आया मन में—वह 'रूप रूपं प्रतिरूपो बभूव' कैसे अपना अपमान सहन कर ले। फिर तो जीवन की रात्रि है और नियमों का घोर कानन है। मोहन नहीं रह जाता वहाँ।

मोहन भी क्या ढूँढ़ने से मिलता है ? लेकिन बिना अन्वेषण के भी वह मिलता नहीं। अन्वेषण न हो तो श्रान्ति न आयेगी और यह तो आवश्यक है कि साधन के क्षेत्र में अपनी शक्ति-सीमा पूर्णतः शान्त हो जाय। जब अन्वेषण निराश हो जाता है, जब अज्ञात अज्ञेय अलक्ष्य सत्व की उज्ज्वल चन्द्रिका के लिये भी दुर्भेद्य ही नहीं अभेद्य बन जाता है, निराशा ही तो मिलती है ? तब प्रगति कहाँ ? तब तो लौटना होता है ? कहाँ लौटना ? यदि हृदय में वासना कहीं बच गयी है, यदि ममत्व कहीं किसी कोने में बचा था, इसी कोलाहल में लौट आता है वह निराश और यदि आत्मोत्सर्ग का पुण्यपर्व वस्तुतः धन्य हो चुका है, यदि हृदय में वह ललित-त्रिभङ्गी आ बसी है—शरीर और संसार की स्मृति ही कहाँ होती है। वह तो प्रणय-कालिन्दी के पुलिन पर ही लौटता है। वही उत्कण्ठा, वही अभीप्सा और प्रयास थक गया। वह देखता है-सोचता है, वह जहाँ से चला था, वहीं है। तब—तब प्रतीक्षा और प्रार्थना—और कोई उपाय भी तो नहीं।

अपने प्रयत्न की समाप्ति पर—श्रान्ति पर ही तो साधन का अहंकार जाता है। 'मैं भी कुछ कर लूँगा ! यह जप, यह पाठ, यह अनुष्ठान और सब करके .....।' ओह, श्यामसुन्दर साधन-साध्य कहाँ है। तब प्रार्थना होती है। सच्ची प्रार्थना तभी हो पाती है। उत्कट अभीप्सा—अविचल विश्वास—गर्वहीन आतुर प्रार्थना—सच्ची साधना तो यही है। उसकी दया पर सर्वतोभावेन अपने को छोड़कर उसी को पुकारा ही तो जा सकता है।

गोपियाँ—वे श्याम की अन्तिम सहचारियाँ, वे महाभाव की अन्तिम मूर्तियाँ, उनकी क्या साधना, क्या मन, क्या प्रतीक्षा और क्या प्रार्थना। मोहन उनका और वे मोहन की। श्याम उनसे रूठेगा ? कहाँ जायगा वह ? उनकी एक पल के भी उपेक्षा क्या वह कर सकता है ? तब यह सब—यह सब एक लीला—एक आदर्श ! नित्य वृन्दावन का धरा पर आविर्भाव, श्रीनिकुञ्जेश्वरी का भूमि पर पदार्पण प्रेम की परम सीमा को विश्व के सम्मुख प्रकाशित करने के लिये ही तो है। श्याम और राधा—वे दो हों तो मान और प्रार्थना चले; किंतु विश्व के पथिकों को प्रकाश देना है—पावन प्रेम-पथ का प्रकाश। गोपियों का यह नाट्य वही प्रकाश तो दे रहा है—और अब अन्वेषण से निराश यमुना-पुलिन पर आकर वे सम्मिलित कातर कण्ठ से प्रार्थना कर रही हैं—

'श्यामसुन्दर, जब से तुम प्रगट हुए हो, व्रज की अत्यधिक श्रीवृद्धि हुई है! ऐसा होना ही चाहिये; क्योंकि इन्दिरा सदा तुम्हारे ही आश्रय से रहती हैं। अब तुम्हारे ही द्वारा हमें क्लेश हो, यह उचित नहीं। हमारे प्राण तुम्हीं में लगे हैं; हम तुम्हें ही ढूँढ रही हैं, आओ! हमारे इन तृषित नेत्रों को दर्शन देकर तृप्त करो!

'वरद, तुम्हारे नेत्र शरत्कालीन पूर्ण विकसित सरोज के अन्तराल की शोभा को भी लज्जित करनेवाले हैं, हम तो नेत्रों को देखकर बिना मूल्य के ही तुम्हारी दासियाँ हो गयी हैं। तुम अपने वियोग से हमें तड़पा रहे हो, यह क्या हमारा वध नहीं है? तुम दूसरों के तो वरदाता बनो और अपनी ही दासियों को तड़पाओ—ऐसा तो मत करो, जीवन-धन!

'तुमने तो सदा हमारी—हमारे स्वजनों की रक्षा की है! उस कालियह्रद के विषैले जल से तुमने ही मृतकों को जीवन दिया, कालिय को तुमने ही निर्वासित किया, इन्द्र द्वारा की गयी भयंकर वर्षा, प्रबल आँधी, क्षण-क्षण का वज्रपात—तुम्हीं ने तो गिरिराज को उठाकर जीवन-दान दिया सबको; दावाग्नि से तुम न बचाते तो सब भस्म ही हो चुके थे। वत्सासुर, मयदानव का पुत्र वह व्योम और जाने कितने राक्षस—सबसे बचाया तुमने, विश्व के समस्त भयों से तुम आज तक हमारे रक्षक बने रहे, फिर आज यह उपेक्षा क्यों?

'कौन कहता है तुम गोपी-कुमार हो; भगवान् ब्रह्मा की प्रार्थना पर विश्व की रक्षा के लिये सात्वतकुल में प्रकट हुए तुम समस्त प्राण-धारियों के अन्तःसाक्षी हो! तुम अन्तर्यामी हो! हमारे हृदयों को तुम जानते हो! विश्व की रक्षा के लिये अवतीर्ण होकर भी तुम हमारी इस समय रक्षा क्यों नहीं करते?

'तुम्हारा तो स्वभाव ही सबको अभय देना है। जो भी तुम्हारे चरणों की शरण लेता है, उसे तुम संसार के आवागमन के भय से मुक्त कर देते हो! तब तुम हमारे भय को भी दूर करो! अपना वह भव-भयहारी, महालक्ष्मी का पाणिग्राही, समस्त कामनाओं को पूर्ण करनेवाला कर-कमल हमारे मस्तक पर रक्खो!

'तुम तो व्रजजनों की आर्ति को नष्ट करनेवाले हो न, और उसमें भी हम अबलाओं के तो तुम्हीं आश्रय हो; हमारे 'मान' के कारण तुम ऐसे क्यों रूठ गये? तुम्हारा तो मन्दस्मित ही अपने जनों के गर्व को दूर करनेवाला है! प्यारे, अपनी इन किंकरियों को स्वीकार करो! हमें अपने कमल-मुख का दर्शन दो!

'श्यामसुन्दर, शरण में आये लोगों के समस्त पाप दूर करनेवाले वे मृदुल अरुण अपने चरण-कमल, जो वन में गायों के पीछे चलते हैं, महालक्ष्मी जिनकी स्थिर होकर सेवा किया करती हैं—वही चरण जो उस दिन कालिय के फणों पर थिरक रहे थे, हमारे हृदय पर रक्खो और हमारी अन्तर्ज्वाला शान्त करो!

'कमल-नयन—तुम्हारी वाणी कितनी मधुर है, कैसे मनोहर नन्हे वाक्य बोलते हो तुम, बड़े-बड़े बुद्धिमान् भी जब उस वाणी पर मुग्ध हो जाते हैं, तब हम तो स्त्रियाँ ही हैं। हम तो उस वाणी की माधुरी से तुम्हारी दासियाँ ही हो गयी हैं और उसके स्मरण से ही मृतप्राय हो रही हैं। हमें अपने अधरामृत से आप्यायित करके जीवनदान दो, मोहन!

'प्राण कबके चले गये होते तुम्हारे वियोग में; किंतु यह जो तुम्हारी कथा है, यह तो अमृत ही है। इसीने किसी प्रकार जिला रक्खा है। तुम्हारी कथा—यही तो संतप्तों को जीवनदान देनेवाली है। कितने महाकवि इसका वर्णन करते थकते नहीं, समस्त पापों को नष्ट करनेवाली जो है यह। यह तो श्रवण मात्र से सब प्रकार का मङ्गल करने वाली, सम्पूर्ण ऐश्वर्यों से परिपूर्ण है। सचमुच पृथ्वी पर जो तुम्हारी कथा का गान करते हैं—उसे सुनाते हैं दूसरों को, वही सच्चे महादानी हैं।

'व्रजेन्द्रनन्दन, तुम्हारा मन्द हास्य, तुम्हारा प्रणय-विलोकन और तुम्हारी मञ्जुल क्रीड़ा जिसके ध्यान में भी आ जाती है, उसका मंगल हो जाता है। कितनी विपरीत बात है कि तुमने

हमसे जो एकान्त में हृदयस्पर्शी आलाप किया, वह स्वर-लहरी बार-बार हमारे मनको क्षुब्ध कर रही है। इस वैषम्य को दूर करो, नाथ !

'जब तुम नित्य प्रातः व्रज से गो-चरण के लिये चल देते हो, वन में तुम्हारे कमल-कोमल चरण कंकड़ियों, तृणों, अङ्कुरों से कष्ट पाते होंगे—यह सोचकर ही हमारा मन विक्षिप्त हो जाता है।

'और जब सायंकाल गोरज-सनी घुँघराली काली अलकों से घिरे अपने कमल-मुख का दर्शन देते हो—प्रियतम, नित्य-नित्य बार-बार तुम्हारी वह भुवन-मोहिनी मुख-छवि हमारे हृदय में उत्कण्ठा जाग्रत् करती है ! आज तो वह नित्य-नित्य की लालसा पूर्ण हो जाने दो !

'तुम्हारे श्रीचरण प्रणतों की समस्त कामना पूर्ण करनेवाले हैं, श्रीसिन्धु-सुता निरन्तर उनकी अर्चा करती हैं, वे इस समय इस व्रजधरा के भूषण हैं, आपत्ति में वे ही एकमात्र ध्यान करने योग्य हैं, हम भी तो उन्हीं चरणों में प्रणत हैं, हम भी तो इस आपत्ति में उन्हीं का ध्यान कर रही हैं। प्राण-धन, अपने उन शान्तिदायी चरणों को, जो समस्त मनो-व्याधियों को दूर करनेवाले हैं, हमारे हृदय पर स्थापित करो !

'हमारा परमाश्रय, प्रेम को बढ़ानेवाला, शोक को नष्ट करने वाला, स्वरपूर्ण मुरलिका से भली प्रकार चुम्बित अपना वह अधरामृत हमें प्रदान करो, जो मनुष्यों की दूसरी समस्त आसक्तियों को विस्मृत करा देता है !'

'श्यामसुन्दर, जब तुम दिन में वन में चले जाते हो, तुम्हें देखे बिना हमें एक पल युगों-जैसा दीर्घ प्रतीत होने लगता है और जब तुम लौटते हो, तुम्हारी घुँघराली अलकों से घिरे श्रीमुख को भी हम कहाँ एकटक देख पाती हैं। मूर्ख ब्रह्मा ने नेत्रों में ये पलकें जो बना दीं ! सोचा था, आज तुम निकट रहोगे—आज नेत्र तृप्त हो लेंगे; पर तुम तो रात्रि में भी वन में चले गये ! ऐसा तो मत करो, हृदयेश !'

'अच्युत, हम सब अपने पति, पुत्र, गोत्रज, भाई तथा सभी सम्बन्धियों को छोड़कर तुम्हारे पास आयी हैं। तुम तो हमारी गति जानते हो न, तुम्हारे गान से मुग्ध होकर आयीं और तुम—छली—धूर्त, अरे रात्रि को वन में नारियों को कौन एकाकी छोड़ सकता है—कुछ तो विचार करो।'

'तुम्हारी एकान्त चर्चा जब स्मरण आती है—उत्कण्ठा, लालसा का तो वह उद्गम ही है ! तुम्हारा वह हँसता हुआ चन्द्रमुख, वह प्रेमभरी चितवन, वह शोभा का निवास विशाल वक्ष—उस वक्ष को देखकर बार-बार स्पृहा हो उठती है, हमारा मन मोहित हो रहा है, हम तुम्हारे अपरूप रूप के स्मरण से ही मूर्च्छित-सी हो रही हैं।'

'हे अङ्ग, जीवन-सर्वस्व, तुम्हारा प्राकट्य तो हम व्रज के वनवासियों के लिये ही है ! तुम्हीं हमारे समस्त कष्टों को नष्ट करनेवाले हो ! तुम्हीं विश्व में हमारा मङ्गल करनेवाले हो ! तुम तो अपने जनों की अन्तर्व्यथा के विनाशक हो न, अतः हम अत्यन्त से प्रार्थना करती हैं, हमारे हृदय-रोग की औषध थोड़ी हमें भी दो ! हमारी अन्तर्व्यथा को शान्त करने पधारो ! पधारो, श्यामसुन्दर !'

'ओह, तुम्हारे वे विकच कमल-से श्रीचरण—उन्हें तो अपने हृदय पर रखते भी हमें संकोच होता था, कितने मृदुल हैं वे, डरते-डरते, धीरे से हम हृदय पर रखती थीं—कहीं क्लेश न हो, कहीं वे पीड़ित न हों और उन्हीं चरणों से—उन्हीं चरणों से इस रात्रि में पता नहीं कहाँ तुम बन में घूम रहे हो ! कितने कण्टक, कितने कुशादि उग्र तृण, कितनी कंकड़ियाँ हैं इसमें ! ओह, क्या वे कष्ट न पाते होंगे ? मोहन, हमें बड़ा भय लग रहा है, हमारी बुद्धि भ्रान्त हो रही है। तुम्हारे चरण—तुम्हारे वे नवनीत-सुकुमार चरण—बड़ी व्यथा होती होगी उन्हें !'

गोपियाँ—एक ही लालसा, एक ही उत्कण्ठा रह गयी है उनमें—श्यामसुन्दर का दर्शन हो ! वह त्रिभुवन-मोहन मिल जाय। कब का गल चुका मान। वे प्रार्थना करती रहीं, उसके गुण गाती रहीं, नाना प्रकार से विलाप करती रहीं। उनकी विनय, दीनता, उलाहना, अनुरोध—सभी अन्त में

भूल गये।' मोहन अपने अत्यन्त मृदुल अरुण चरणों से इस रात्रि में बनमें कहीं घूम रहे हैं! उनके कमल-कोमल चरण तृणादि से कष्ट पाते होंगे!' उन्हें लगा, नेत्रों के सम्मुख ही मयूर-मुकुटी तृणों पर भागा जा रहा है। उसके श्रीचरणों के तलवे पीड़ित हो रहे हैं! उनको भूल गयी अपनी स्थिति, अपना शरीर, अपनी मनोव्यथा—वे चरण—वे मृदुल अरुण चरण—वे सब रोने लगीं एक स्वर से आर्त होकर। उनका यह रोदन-स्वर, यह रुदन-ध्वनि भी कितनी सुस्वर है!

आदर्श अनुराग, अन्वेषण, साधना—जो चाहे सो कह लीजिये इसे, जहाँ अपने शरीर की, अपनी समस्त विस्मृति होकर उस परम प्रेमास्पद की ही स्मृति रह जाती है, अन्तर में वही—एकमात्र वही रह जाता है—अन्तर्व्यथा उसीके लिये आकुल हो उठती है—यहीं सबकी पूर्णता होती है। यही सब की चरम परिणति है। यहीं उनका परिपाक हो चुका और तब क्या वह वनमाली छिपा रह सकता है? वह चाहे तो भी छिप सकेगा?

रुदन—तीव्र व्याकुलता, एक बार पलकें गिरीं और सबकी सब चौंककर सम्भ्रमपूर्वक एक साथ खड़ी हो गयीं। उनके अश्रु, उनकी वेदना, उनकी आकुलता, एक साथ दूर हो गयी एक क्षण में। नेत्र स्थिर हो गये, उल्लास का जो आवेग हृदय में एक साथ आया—शरीर स्थिर हो गया; वे क्या करना है—यह कुछ सोच ही न सकीं। एक निमेष—एक बार ही तो पलकें गिरी थीं—यह मयूर-मुकुटी, पीताम्बर-धारी नवजलधर-सुन्दर बनमाली मन्द-मन्द मुस्कराता पता नहीं किधर से आखड़ा हुआ उनके मध्य में।

यह भुवन-मोहन रूप, यह तडित्कान्त पीतपट, यह नित्य अम्लान वनमाला और यह मन्द स्मित—मदन-मोहन, आज सचमुच ही तो वह मदन-मोहन, मन्मथ-मन्मथ, अच्युत जैसे काम की अज्ञता, क्षुद्रता पर हँसता आया है। उनके मध्य कहाँ से, किधर से आ गया वह? कौन पूछे, कौन सोचे! वह आ गया! वह प्राणों का प्राण आ गया!

एक क्षण गोपियाँ खड़ी रह गयीं शान्त-स्थिर-मुग्ध और वैसे ही खड़ा रह गया वह उनका नटनागर भी मन्द-मन्द मुस्कराता। दूसरे ही क्षण सबने एक साथ अपने उत्तरीय उतारकर एक के ऊपर एक बिना कुछ सोचे, बिना कुछ देखे झटपट बिछा दिये। भला, यह हृदयेश आया है, आसन भी न दे सकें वे इसे और वह—वही, जो युग-युग तक के तपः-पूत मानस में, समाधि-स्थिर विशुद्ध हृदय में कभी कदाचित् बड़े संकोच से एकाध क्षण को खड़ा हो जाता है, गोपियों के वक्ष के कुङ्कुम से सुचिह्नित उन उत्तरीयों के आसन पर झटके से इस प्रकार जमकर बैठ गया, जैसे उसे वहाँ से कभी उठना ही नहीं है। नहीं ही तो उठना है—भला ऐसे आसन से भी क्या उठा जा सकता है।

—❀⊃❀⊃❀—

महारास

विक्रीडितं व्रजवधूभिरिदं च विष्णोः श्रद्धान्वितोऽनुशृणुयादथ वर्णयेद् यः ।
भक्तिं परां भगवति प्रतिलभ्य कामं हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः ॥

—भागवत १०।३३।४०

मोहन आया—धन्य हो गयी वह शरदीय ज्योत्स्ना, धन्य हो गया वह यमुना-पुलिन और धन्य हो गयी वह मधुमय रजनी—गोपियों में तो जैसे जीवन आ गया—प्राण आ गया ! सब एक साथ खड़ी हो गयीं और जब वह उनके उत्तरीयों के आसन पर बैठ गया, वे उसे घेरकर, सटकर बैठ गयीं। सहस्र-सहस्र गोपियाँ—सबको लगा, वही श्याम के सबसे समीप बैठी है। किसी ने उसके कोमल कर-कमल को अपने दोनों हाथों में लिया और आनन्द-मग्न हो गयी। किसी ने उसकी चन्दन-चर्चित वाम-बाहु अपने कंधे पर रख लिया। एक ने अञ्जलि फैला दी, जब वह ताम्बूल का अवशेष मुख से गिराने चला भूमि पर, और उस अवशेष को ही उसने अपने मुख में रख लिया। दूसरी ने उसके—उसके श्रीचरण को अपने हृदय पर रख लिया। ओह, प्रेम-रोष विह्वल-भृकुटिको तिरछी करके, अधर को दाँतों से दबाकर कटाक्षपात से यह जो देख रही है उस मदन-मोहन को—और यह तो एकटक, निर्निमेष उसके कमलमुख को ही देख रही है; इतनी एकाग्रता, इतनी निश्चलता से कोई भी संत क्या उसके श्रीचरणों को देख पाता है ! लेकिन यह तो पूरी योगिनी हो गयी है—ध्यान ही तो कर रही है। एक बार, एक दृष्टि से मोहन को देखकर नेत्र बंद कर लिये और अब तो उसका रो-रोम पुलकित हो रहा है, यह चिर-चपल बाहर चाहे कहीं छिप भी जाय, उसके हृदय से भी क्या कहीं जा सकता है ?

'श्यामसुन्दर, बड़े दयामय हो तुम ! क्या कहना है तुम्हारी दया का !' व्यंग भी सम्मिलित हास्य में मधुर हो गया।

'मोहन, हम सब पर कृपा करने पता, करने पता नहीं कहाँ-कहाँ भटकना पड़ा तुम्हें; बहुत-बहुत थक गये लगते हो !' दूसरी ने चरणों को दबाते हुये ही परिहास किया। वह मदन मोहन तो हँस रहा है, केवल खुलकर, खिल-खिलाकर हँस रहा है।

'मोहन, हमें एक बात पूछनी है। तुम बड़े बुद्धिमान् हो, बड़े धर्मज्ञ हो, बड़े चतुर हो; बता दोगे ? हमें बड़ी उत्कण्ठा है, बड़ी लालसा है, बताओगे ?' सबने एक दूसरी को नेत्रों में ही कुछ कह लिया। यह भी क्या छिपा है कि यह गम्भीरता का अभिनय ही है।

'भला, ऐसी क्या बात है जो मैं तुमसे भी छिपाऊँगा !' मोहन तो हँस ही रहा है।

'नहीं, छिपाने-जैसी कोई बात नहीं, नीति और धर्म की बात ! हम सब तो जानती नहीं, तुमसे अधिक मर्मज्ञ बतानेवाला भी हमें कोई दीखता नहीं !' गम्भीरता तो बढ़ती ही जा रही है।

'इतनी भूमिका क्यों ?' श्याम ठीक तो कहता है, उससे भी कुछ पूछने, कहने के लिये क्या भूमिका की आवश्यकता है ?

'देखो, एक तो ऐसे लोग होते हैं, जिनसे प्रेम करो तो वे भी प्रेम करते हैं, दूसरे ऐसे होते हैं कि उनका स्वभाव ही प्रेम करने का होता है; उनसे प्रेम करो या न करो, वे तो प्रेम करते ही हैं। और तीसरे ऐसे हैं कि उनसे प्रेम करो तो भी वे प्रेम नहीं करते। इन तीनों प्रकार के लोगों के प्रेम का स्वरूप हमें भली प्रकार समझा दो !' बात चाहे जितनी गम्भीरता से कही गयी हो, उसका लक्ष्य क्या है, यह भी क्या कहना रहा है ?

'इसमें भला, समझना क्या है!' श्यामसुन्दर ने तो लक्ष्य स्पष्ट होते हुए भी ध्यान नहीं दिया उस पर। वह तो उसी गम्भीरता से व्याख्या करने लगा है, जिस गम्भीरता से प्रश्न पूछा गया है। 'जो प्रेम करने पर प्रेम करते हैं, उनमें तो न प्रेम है और न धर्मभाव; वे तो केवल स्वार्थ के लिये प्रेम का दिखावा करते हैं। जब तक स्वार्थ है, तभी तक उनका प्रेम है। प्रेम तो उन्हीं का सच्चा है, जो प्रेम न करनेवाले से भी प्रेम करते हैं, जैसे माता-पिता अपने बालकों से। बस, उन्हीं में अपवाद-हीन धर्म और सच्चा सौहार्द है। रहे तीसरे—जो प्रेम करने पर भी प्रेम नहीं करते, उनमें या तो संसार से तटस्थ आत्माराम, आप्तकाम महापुरुष होते हैं या श्रेष्ठों की अवज्ञा करनेवाले, कृतघ्न नीच पुरुष।'

सबने परस्पर मुख फेरकर देखा और व्यङ्गपूर्वक मञ्जुहास्य आया अधरों पर। श्याम ने अपने-आप को कहाँ रक्खा है इस व्याख्या में? वह है तो तीसरों की कोटि में और भला, वह कहाँ आत्माराम आप्तकाम है; किंतु वह तो इस हास्य से तनिक भी हँसता नहीं, उसका स्वर तो और गम्भीर हो गया है। वह तो कहता ही जा रहा है—'सखियो, पर मैं तो इन सभी से भिन्न स्वभाव का हूँ। जो प्राणी मुझसे प्रेम करते हैं, मैं उनके प्रेम के बदले में प्रेम करनेवाला स्वार्थी नहीं और न प्रेम की उपेक्षा ही मैं कर पाता हूँ। मैं तो उन लोगों की, जो मुझसे प्रेम करते हैं, उनकी उपेक्षा करने का नाट्यमात्र करता हूँ—इसलिये कि उनके प्रेम की अभिवृद्धि हो। जैसे किसी को सम्पत्ति मिलकर नष्ट हो जाय तो वह एकमात्र उसी की चिन्ता करने लगता है, उसी प्रकार एक बार जब किसी को मेरा सांनिध्य मिल जाता है और फिर मैं छिप जाता हूँ, मेरे अतिरिक्त वह सब कुछ भूल जाता है।'

मोहन का स्वर गम्भीरता से भावक्षुब्ध हुआ—'तुम लोगों ने मेरे लिये समस्त लौकिक-वैदिक मर्यादाओं को छोड़ा, अतः तुम सब मुझे अत्यन्त प्रिय हो! तुम्हारे प्रेम की अनुवृत्ति के लिये ही मैं छिप गया था, मुझे क्षमा करो! मुझसे तुम्हें असंतुष्ट नहीं होना चाहिये।'

स्वर तो और क्षुब्ध—बाष्प-गद्गद हो गया! वह कितना भाव-विह्वल कह रहा है—'तुम सबने जो परम प्रेम किया है, मेरे लिये जो महान् त्याग किया है, देवताओं की आयु लेकर मैं केवल उसी का प्रतिदान करना चाहूँ तो भी समर्थ नहीं हूँ। तुमने मेरे लिये—मेरे प्रेम में दृढ़तर गृह-बन्धन को कच्चे सूत के समान तोड़ डाला और यहाँ दौड़ी आयीं—भला, इसका प्रतिकार भी हो सकता है! मैं तो तुम्हारा हूँ—तुम्हारा प्रेमक्रीत हूँ...।' वाणी गद्गद हो गयी और कण्ठ रुद्ध हो गया। कमल-नयन ने अपने पटुके से विशाल लोचन पोंछे और गोपियों के कपोल तो प्रेमाश्रु से उज्ज्वल हो गये। वे भाव-विभोर हो गयीं। दो क्षण सब शान्त, मग्न हो गयीं—नीरव, निःशब्द—क्लान्त।

× × ×

महारास प्रारम्भ हुआ—रसराज अपने मूर्तिमान् महाभाव से एक होकर युगल हो गया और महारास—जिसकी गति—नृत्य का कम्प ही विश्व के अणु-अणु को अनादि काल से गतिमान् किये है, जिसकी प्रेरणा ही निखिल ग्रह-नक्षत्रादि की प्रगति है, जो विशुद्ध-हृदय सर्वात्म-समर्पित योगीश्वर के मानस के लिये भी केवल ध्येय है—कल्पना की गति नहीं वहाँ। भाव और रस जब मर्त्यमानस में एकाकार होते हैं--वहीं कल्पना सुप्त, तन्द्रित हो उठती है; फिर जहाँ साक्षात् रसराज और इसके महाभाव की मंजुमूर्ति आह्लादरूपा श्रीकीर्तिकुमारी सहस्रार के मध्य स्थित अष्टदल की चिन्तामणि-कर्णिका पर ललित त्रिभङ्गी में एकाकार अवस्थित हैं--नित्य, शाश्वत है मोहन का यह महारास।

गोपियों ने मण्डल बनाया—खूब बृहत् मण्डल और उन्हें लगा--प्रत्येक के पार्श्व में उनके कंधे पर भुजा रक्खे त्रिभुवन-सुन्दर वनमाली खड़ा है। सोने की दमकती मणियों के मध्य में महा-नीलमणि के गुथे दानों-जैसा वह मालाकार सुदीर्घ मण्डल—श्याम सचमुच ही तो सभी के पार्श्व में है, सभी के कंधों पर उसकी भुजाएँ हैं और मण्डल के मध्य में—मध्य में श्रीवृषभानुनन्दिनी के साथ वह अधरों पर बंशी धरे त्रिभङ्ग सुन्दर खड़ा है।

महारास प्रारम्भ हो रहा है--गोपियाँ नृत्य करेंगी, श्यामसुन्दर नृत्य करेगा उनके संग, मुरली तो बजेगी ही; परंतु इस महारास—इस महानर्तन की साङ्गता भी होनी चाहिये। आकाश विमानों से भर गया। रास-मण्डल पर छाया न पड़े, इतना अवकाश छोड़कर देवपत्नियों के साथ देवताओं, गन्धर्वों एवं अप्सराओं के विमान परस्पर सटकर भी स्थान नहीं पाते। देववाद्य धन्य हुए, अप्सरा एवं गन्धर्वों ने अपने मनोहर कण्ठ से श्रीकृष्णचन्द्र का यशोगान प्रारम्भ किया, नन्दन-कानन के दिव्य कुसुम आज सार्थक हुए, पवित्र हो गये वे आज व्रजराजकुमार एवं उनकी सह-चारियों के लिये पादास्तरण बनकर। गगन में क्षण-क्षण पर पुष्प-वर्षा के साथ जयनाद गूँजने लगा--'श्रीनिकुञ्ज विहारी की जय !'

पुष्पवर्षा हो रही है, कालिन्दी के रजत-पुलिन पर चरणों के नीचे उन दिव्य कुसुमों का सुकुमार आस्तरण उच्च होता जा रहा है; देव वाद्य—दुन्दुभि, मृदङ्ग, वीणा बड़े स्वर से बज रहे हैं, जयघोष और यशोगान चल रहा है; किंतु किसी को पता नहीं- किसी का ध्यान नहीं उधर ! श्यामसुन्दर कंधे पर भुजा रक्खे साथ-साथ नाच रहा है, उसकी वंशी बज रही है और गति के कारण कङ्कण, नूपुर, किङ्किणी आदि आभूषण क्वणित, रणित, झंकृत हो रहे हैं—चल रहा है यह आनन्द-नृत्य--वह तो चलता ही रहेगा--सदा चलता ही रहता है।

आभूषण बज रहे हैं, नृत्य के ताल में अरुण मृदुल कमलचरण थिरक रहे हैं, नीचे सुकुमार देव-सुमन उनके वेगपूर्वक पड़ने पर भी अधिकाधिक उत्फुल्ल ही होते जा रहे हैं और मुरली बज रही है; श्याम की वंशी--वह सकल संगीत को परमोद्गम मुरलिका --गोपियों के कण्ठ कूजित हुए—वे उच्चस्वर से मोहन का यशोगान करने लगीं।

श्याम गा रहा है—वह गा रहा रहा है, वंशी बजा रहा है, नृत्य कर रहा है--एक साथ सब; पर एक साथ सभी तो वही कर रहा है सदा से। श्याम गा रहा है--वह उसके साथ एक और स्वर उठा--यह मञ्जुता, यह आलाप—श्रीकीर्तिकिशोरी के कण्ठ की मधुरता, मुग्धता कहाँ से आये दूसरे कण्ठ में। सबसे पृथक्, सबसे अमिश्रित, सबसे ऊपर—पर सबको सरस-मधुर बनाता, सबको अपने क्रोड में लेता—वह उनका स्वर—मोहन झूम गया, उसने झुककर गायिका के कोमल कर दोनों हाथों की अञ्जलि में ले लिये और--यह सम्मान, यह मोहन का मान दान दूसरे का भाग भी नहीं। अब तो वही स्वर, वही राग इस महारास का 'ध्रुव' बन गया। उसी के दण्डा-धार पर राग झूमते हैं, लड़ियाँ चलती हैं और बार-बार मोहन स्वयं स्वर मिलाकर उसकी आवृत्ति करता है। वही--केवल वही तो कुछ उस स्वर से स्वर मिला पाता है।

चरणों की गति बढ़ी—बढ़ी—बढ़ती गयी। नृत्य के वेग में गान स्वतः थकित हो गया। भाल पर सीकर उठे और वे बिन्दु बनकर झलमल करने लगे। वस्त्र, माल्य, आभरण अस्त-व्यस्त होते गये। रास—नृत्य बढ़ता गया। आनन्द के आवेग में वेग वृद्धि पाता गया।

कोई थकने लगी तो उसने तनिक झुककर अपनी बाहु से श्यामसुन्दर के स्कन्ध का सहारा ले लिया। उसकी भुजा का मल्लिका-कङ्कण टूट तो चुका ही था, श्याम के स्कन्ध पर गिर गया धीरे से।

किसी ने अपने कंधे पर पड़ी चन्दन-चर्चित विशाल भुजा को मुख झुकाकर सूँघा—रोमाञ्च हो आये समस्त शरीर में उसके और उसका मुख भुजा पर झुक गया नृत्य के वेग में भी।

किसी ने श्याम के मस्तक से मस्तक लगा लिया, दोनों के कुण्डल सट गये और किसी ने नाचते या गाते हुए ही मोहन के किसलय-कर हृदय पर रख लिये। चलती रही यह क्रीड़ा।

कुण्डल अलकों में उलझकर स्थिर हो गये, केशपाश खुल गये, उनमें गुम्फित माला और सुमन गिर गये, भाल एवं कपोलों पर स्वेद-बिन्दु चमक उठे। श्यामसुन्दर के साथ गोपियाँ पूरे वेग से चक्राकार नृत्य में संलग्न हैं। उनके नूपुरों का क्वणन, कङ्कणों का रणन, मेखला का शिञ्जन गूँज रहा है। गान-गान तो अब केवल गुंजार करते भ्रमरों के कण्ठ में है।

विमानों की पुष्प-वृष्टि कब से थकित हो गयी, जयघोष—यशोगान विरत हो गया, देववाद्य मूक हो गये। विमानों में देवता, देवाङ्गनाएँ, अप्सराएँ, गन्धर्व, किन्नर—सब थकित, मुग्ध, निश्चल हो गये हैं इस दिव्य क्रीड़ा को देखकर। उन्हें तो अपना ही स्मरण नहीं और भूल तो गये चन्द्रदेव। वे स्वयं स्थिर हो गये हैं। उनके रथ के मृग, सारथि, सेवकादि गण सब चकित—स्तब्ध मूर्तिवत् स्थिर होगये हैं।

श्यामसुन्दर की भुजाएँ कंधों पर हैं, उस मदन-मोहन का स्पर्श प्राप्त हो रहा है—गोपियाँ आनन्द-विभोर हैं। उन्हें केश, वस्त्र, आभरण—किसी का स्मरण नहीं, किसी का ध्यान नहीं। वे उन्मद नृत्य कर रही हैं।

नृत्य शान्त हुआ, सब बैठ गयीं वहीं और श्याम—वह तो उतने रूपों में सबके समीप हो है। जैसे अबोध शिशु दर्पण में पड़े अपने ही प्रतिबिम्ब के साथ क्रीड़ा करे—गोपियों के साथ वैसा ही भाव-मुग्ध, वैसी ही सत्व-परिशुद्ध, वैसी ही सरल सहज क्रीड़ा चल रही है उसकी। उसने अपने मृदुल करों से सबके मुख एवं कपोलों के स्वेद पोंछ दिये, उलझी अलकें सुलझा दीं, कुण्डल केयूरादि ठीक कर दिये।

गोपियाँ मोहन के अमृतस्यन्दी कर-स्पर्श से परम प्रसन्न हो गयीं। उनकी श्रान्ति—पता नहीं क्या हो गयी वह तो। वे तो पुनः उसी त्रिभुवन-मोहन का भुवन-मङ्गल चरित बड़े भाव-क्षुब्ध कण्ठ से गाने लगीं।

'हम सब स्नान करें!' मोहन ने प्रस्ताव किया और सब के साथ श्रीयमुनाजी में प्रवेश किया उसने। गोपियों ने उस पर छींटे उछालने प्रारम्भ किये और उसने गोपियों पर। अरुण सरोज-जैसे करों से उछलते, चन्द्रज्योत्स्ना में चमकते मुक्ता-फल-से वे बिन्दु—चलती रही यह जलक्रीड़ा। अङ्गराग, चन्दन, कस्तूरिका-तिलक, अञ्जन—सब धुल गये और उल्लसित, उत्कण्ठित जल-जीवों ने वह सब जल पी लिया। शृङ्गार के कुसुम कालिन्दी की लहरों पर तैरते चले गये। सहज सुन्दर स्वरूप—ये भूषणों को भूषित करनेवाले रूप क्या साज-सज्जा की अपेक्षा करते हैं।

हास्य-विनोद, क्रीड़ा-कौतुक चलता रहा यह—चलता रहा जलमें, पुलिन पर, वनमें घूमता क्रीड़ा करता भुवन-मोहन का यह मण्डल।

'सर्वाः शरत्काव्यकथारसाश्रयाः।'

एक दिन—एक रात्रि की यह कथा नहीं है—वह शारदीय पूर्णिमा की धन्य निशा तो ब्रह्म-रात्रि हो ही गयी, श्यामसुन्दर की व्यक्त जगत् में यह निकुञ्ज-क्रीड़ा लगभग ढाई वर्ष चलती रही। जो उसके अधिकारी थे—थी ही वह उन्हीं के लिये। योगमाया का आश्रय लेकर मोहन की यह महा-भाव-क्रीड़ा—यह तो गोपियाँ की ही वस्तु थी। उन्हीं के लिये थी और आज भी उन्हीं के लिये हैं। विकार-हीन निर्मल मानस में ही जिसका प्राकट्य होता है, पुरुष-भाव से सर्वथा रहित, सर्वात्म-समर्पण-सम्यक्-सिद्ध मानस ही जिसके चिन्तन के अधिकारी हैं—लेखनी की वस्तु नहीं वह।

× × × ×

आठ वर्ष, एक महीने, इक्कीस दिन का श्यामसुन्दर—मैया, बाबा, गोपगण क्या सोच लें उसके सम्बन्ध में और वह गया ही कहाँ था। वह क्या मैया की बिछायी मृदुल शय्या पर अग्रज के समीप रात्रि भर सोता रहा है। मैया ने ही तो उसे प्रातः उठाया है। सायंकाल तनिक देर से कलेऊ किया उसने और दूध तो वह सदा बहुत आग्रह करने पर तनिक-सा पीता है।

नौ वर्ष, एक मास और कुल ६ दिन की श्रीकीर्तिकुमारी, उसकी सहेलियाँ भी तो उससे कुछ ही बड़ी हैं, कुछ तो उससे भी छोटी हैं। ये बालिकाएँ—बड़ी भोली हैं ये। सायंकाल कहीं से कन्हाई ने वंशी बजाई तो दौड़ पड़ीं। भला, रात्रि में कहीं इस प्रकार घर से इन्हें बाहर जाने दिया जा सकता है। द्वार तक गयीं और बाहर की नीरवता देखते ही डरकर लौट आयीं। कोई क्या कहे इन से। मुरली सुनकर तो पशु-पक्षी तक दौड़ पड़ते हैं। इन्होंने तो लौटकर फिर भोजन में भी आना-कानी नहीं की और सोयीं भी शीघ्र ही।

गोपियाँ—गोपों ने खिल्ली उड़ायी उनकी। 'बड़ी हठी हैं ये सब। सायंकाल वंशीध्वनि सुनायी पड़ी तो पागल की भाँति दौड़ पड़ीं। कितना कहा, कितना पुकारा, कितना रोका; पर सुनना ही नहीं था इन्हें तो। बड़ी साहसी बनी थीं—घर से बहुत हुआ होगा तो दो-चार-दस घर आगे तक चली गयी होंगी या ग्राम-सीमा तक सही, रात्रि को वन में जाना क्या सरल काम है। इन्हें तो वन के नाम से भय लगता है। मार्ग को शून्य देखते ही सब उन्माद शिथिल हो गया। कैसी चुप-चाप लौट आयीं और मुख दिखाने में भी फिर इन्हें संकोच होना ही था। अरे, कन्हैया क्या वन से वंशी बजा रहा था? भला, उसे कौन जाने देगा रात्रि को वन में। रात्रि को वायु से ऐसे ही ध्वनि किसी दिशा की किसी दिशा से आती जान पड़ती है। ये रुकतीं तो बता भी देते कि ध्वनि किधर से आ रही है; पर इन्हें तो दौड़ने की पड़ी थी। बात ही नहीं सुननी थी। श्रीकृष्णचन्द्र बड़ी मधुर, बड़ी मोहक मुरली बजाता है। वह वंशी बजाता हो तो दौड़ जाने का जी क्या हम सबों का नहीं होता; किंतु ऐसे पागल की भाँति दौड़ने से लाभ? सायंकाल व्रजराज के भवन में कहीं वह वंशी बजा रहा था, वह भी क्या उसके पास दौड़ जाने का समय था!'

योगमाया—उनका अधीश्वर तो नित्य पुराण पुरुष होकर भी नित्य किशोर, नित्य कुमार, नित्य शिशु है और उस निकुञ्जविहारी की ये नित्य सहचरियाँ उससे भिन्न कहाँ हैं। 'स रन्तुमैच्छत' की उसकी वह श्रुति-उद्घोषित इच्छा ही तो इस विराट् विश्व में चरितार्थ होती है। वह उसका निकुञ्ज-विहार और यह मैया के संरक्षण में शयन, उसकी सहचरियों का वह महारास और गोप गृहों में यह भीरु भाव—दोनों ही सत्य, दोनों ही नित्य, दोनों ही मङ्गलमय। योगमाया का यह लीला-नाट्य—उसमें क्या देश, काल, परिमाण या संख्या बाधा दे पाती है? गायें हुंकार करने लगी हैं, मैया ने मोहन को जगा दिया है और भाग गया बिना मुख धुलाये ही वह गोष्ठ में गोदोहन करने। कुमारिकाओं ने तो दधिमन्थन भी प्रारम्भ कर दिया।

—❀⊂❀⊂❀—

सुदर्शन-उद्धार

साधूनां समचित्तानां सुतरां मत्कृतात्मनाम् ।
दर्शनान्नो भवेद् बन्धः पुंसोऽक्ष्णोः सवितुर्यथा ॥

—भागवत १०।१०।४१

आज शिवरात्रि है। बाबा के साथ सारे गोप पिछली रात्रि में उपोषित रहे हैं। सबने पृथ्वी पर कुश बिछाकर उन पर ही शयन किया है। कन्हैया आज सबेरे से उल्लास में है। वह नौ वर्ष से पाँच महीने अधिक का हो गया। यह भी कोई बात है कि वह आज व्रत न करे। मैया ने बहुत समझाया 'दूध पीने से व्रत नहीं जाता।' पर वह तो आज पूरा व्रत करेगा।

'श्यामसुन्दर, तुम थोड़ा दूध पी लो!' मैया को कैसे सन्तोष हो। व्रत करता तो ठीक, परंतु उनका सुकुमार कन्हैया क्या निर्जल रहने योग्य है। उन्होंने महर्षि शाण्डिल्य से अनुरोध किया। महर्षि ने गोद में बैठा कर श्रीकृष्ण को प्रेमपूर्वक समझाना चाहा।

'मुझे भूख लगेगी तो पी लूँगा!' भला, वह हठी अपना हठ कहाँ छोड़ना जानता है। महर्षि एक परम पावन व्रत में बालक को निरुत्साहित कर भी कैसे सकते हैं। उनके नेत्र भर आये और चुपचाप वे उस कमल-लोचन के श्रीमुख को देखते रह गये।

'हम भी व्रत करेंगे!' बालकों में भला, कन्हैया से कोई दुर्बल है जो उससे पीछे रहे। कनूँ व्रत करता है तो ये सब क्यों नहीं कर सकते।

श्रीकृष्ण ने व्रत किया है—व्रज के पशुओं और पक्षियों तक ने तृण, दाना या जल मुख में नहीं लिया। आज शिवरात्रि है। भगवान् विश्वनाथ के लिये विश्व के समस्त प्राणियों ने कहीं, कदाचित् ही इस प्रकार व्रत किया हो।

एक कोटि बिल्वपत्र चाहिये एक बार के पूजन के लिये और वह भी सुचिक्कण, चक्र एवं छिद्र-हीन; धतूरों के फल चाहिये, उनके पुष्प चाहिये, आक के फूलों की माला चाहिये। सुगन्धित पुष्पों, पक्वान्नों के साथ भोले बाबा की तुष्टि के लिये ये वन्य सामग्रियाँ भी तो चाहिये और रात्रि में पूजन होना है चार बार। बिल्ववन गये बिना भला, इतने बिल्वपत्र कहाँ से मिलेंगे।

'बाबा, मैं सब एकादश दलों के बिल्वपत्र चढ़ाऊँगा, भला!' श्यामने सुन रखा है कि एकादश दल के बिल्वपत्र सब से अच्छे होते हैं।

'मैं भी तीन या पाँच दलों के नहीं चढ़ाऊँगा!' भद्र ने बाबा के दोनों हाथ पकड़ लिये।

'तुम सब एकादश दल के ही चढ़ाना!' बाबा को क्या आपत्ति है। बिल्ववन में एकादश दल के बिल्वपत्रों का अभाव कहाँ है। बालक कहीं बिल्ववन जाने का हठ न कर लें, यही बड़ी बात है। वहाँ कण्टकों की बहुलता जो है।

'मैं धतूरे का फूल लाता हूँ, दुहरे फूल!' श्याम भला, कहीं एक स्थान पर बैठ सकता है।

'तुम लोग यूथिका के सुन्दर पुष्प चुनो तो!' माता रोहिणी को लगा कि कहीं ये सब धतूरे के फल तोड़ने लगे तो इनके करों में उसके काँटे लग जायँगे।

'यूथिका के नन्हे-नन्हे पुष्प!' श्याम को कुतूहल हुआ और वह सचमुच उस लता-कुञ्ज की ओर दौड़ गया। बालकों ने उसका अनुगमन किया।

× × × ×

तीसरे पहर व्रज के द्वार-द्वार से जुते हुए छकड़े, बड़ी गाड़ियाँ व्रजेन्द्र के द्वार के सम्मुख एकत्र होने लगीं। गोपियों ने नाना प्रकार के पक्वान्न बनाये हैं। दूध, दधि, घृत, मधु, शर्करा आदि के बड़े-बड़े मटके भरे हैं छकड़ों में। पुष्प, बिल्वपत्र, माल्य आदि के छकड़े पृथक् ही हैं। धूप, चन्दन, केसर, कर्पूर, कोई पूजन-द्रव्य छूट कैसे सकता है।

गोपियाँ, गोप, ग्वाल-बाल, गौएँ, वृषभ, बछड़े—सबकी विचित्र छटा है आज। सब अलंकृत हैं। सब नूतन वस्त्राभरणों से सुसज्ज हैं। गोपियाँ बच्चों के साथ छकड़ों में बैठ गयीं मैया एवं रोहिणी मैया के बैठते ही। राम-श्याम उनकी गोद में विराज रहे हैं। ब्राह्मणों ने शङ्खनाद किया। गोपों के एक दल ने गायों को आगे हाँका और दूसरे दल ने अपने धनुष चढ़ाये, तूणीर कसे, भल्ल सम्हाले। वे छकड़ों को घेरकर चारो ओर स्थित हुए। विप्रों के स्वस्तिपाठ के साथ प्रस्थान हुआ।

आगे-आगे महर्षि शाण्डिल्य का वृषभ-रथ है और उसके पीछे विप्रों के पंक्तिबद्ध रथ हैं। भागती, दौड़ती गायों की पद-धूलि सब को स्नान करा रही है। विप्रों के पीछे व्रजेन्द्र एवं श्रीवृषभानुजी के रथ हैं वृद्ध गोपों के रथों की पंक्ति के मध्य में एक दूसरे से सटे-से। आज नन्दगाँव और बरसाना एक हो गया है इस देव-यात्रा में। पुरुषों तथा नारियों के वर्ग ही पृथक्-पृथक् हैं।

तुरही, शृङ्गक, शङ्ख, मृदङ्ग की तुमुल ध्वनि में वृषभों, गायों के गलों में बँधी घंटियों का स्वर एक हो रहा है। ब्राह्मणों का सामगान गोपों के जयनाद में सुनायी कम ही पड़ता है। गोपियों के कल कण्ठ के गीत भला, कौन सुन सकता है इस समय।

कन्हैया बार-बार खड़ा हो जाता है छकड़े पर। दाऊ, भद्र—सभी उछलते हैं, खड़े होते हैं, इधर-उधर उझककर देखते हैं। इन चञ्चल बालकों को सम्हालना सरल नहीं है। माताओं का ध्यान और कहीं नहीं है। मैया बराबर श्याम को बैठाये रखने के प्रयत्न में है।

'हर, हर, महादेव!' 'भगवान् शंकर की जय!' बार-बार तुमुल नाद उठता है। श्याम—सब बालक उत्साह से उठ खड़े होते हैं और दोनों हाथ उठाकर जयघोष करते हैं। गोपियाँ जयनाद के साथ हाथ जो जोड़ने लगती हैं, एक पल को नेत्र बंद करके।

× × × ×

'वह भगवान् पशुपति के मन्दिर का त्रिशूल दिखायी पड़ा!' सहसा छकड़े खड़े हो गये। उच्च जयघोष के साथ सब छकड़ों से उतरकर भूमि पर खड़े हो गये। सबने भूमि पर मस्तक रख कर प्रणिपात किया। यहाँ से सब पैदल ही चलेंगे मन्दिर तक।

'मैया, वे श्रीयमुनाजी हैं?' श्यामसुन्दर ने कुछ कुतूहल से पूछा।

'ये सरस्वती हैं!' माता रोहिणी ने परिचय दिया। भला, अम्बिका-वन में यमुनाजी कहाँ।

'मैं स्नान करूँगा!' दूर से ही उस चपल ने पटुका माता को दे दिया। वनमाला और मुकुट उतारने लगा।

'अरे, रुको! मैं स्नान करा दूँगी!' मैया पुकारती रही। दाऊ, कन्हैया, भद्र, सुबल, श्रीदाम—सब दौड़ गये। वे कहाँ माताओं की पुकार सुनते हैं। 'इस अपरिचित घाट पर बालक कहीं फिसल न पड़ें, वे कहीं जलमें भीतर तक न चले जायँ।' मैया ने गोपों को सावधान किया बालकों को सम्हालने के लिये। बालक सब बाबा के पास दौड़ गये हैं। वे पुरुषों के मध्य में स्नान करेंगे। उनके समीप जाना भी इस समय सम्भव नहीं। मैया ने वस्त्र भेजे और बाबा को कहलाया श्यामसुन्दर का ध्यान रखने के लिये।

'आओ, तुम सबको स्नान करा दूँ!' बाबा ने श्याम के साथ बालकों को रोक लिया। गोप उन्हें स्नान कराने लगे।

'अच्छा, तुम लोग यहाँ खड़े तो रहो!' बाबा को भी स्नान करना है। कन्हैया वस्त्र बदलता नहीं। किसी प्रकार तटपर उसे खड़ा किया बाबा ने स्नान करा के।

'तुम सब यह क्या करते हो !' बालकों ने परस्पर छीटे उछालना, तट से जल में कूदना, थोड़े जल में पैर पटक-पटक कर स्नान करना प्रारम्भ कर दिया है। वे क्या किसी के रोकने से रुकने-वाले हैं। अपने कोलाहल में वे किसी की सुनते भी हैं।

'कृष्णचन्द्र, देखो ! तुम लोग निकल कर कपड़े तो जल्दी से पहिन लो ! भगवान् शंकर की पूजा पहिले तुम करोगे या श्रीदाम ?' बाबा ने अब की बार ठीक उपाय किया।

'पहिले मैं पूजन करूँगा !' श्याम, श्रीदाम, दाऊ, भद्र—सभी जल से दौड़ते हुए निकले। उन्होंने न तो ठीक-ठीक अङ्ग पोंछने दिये और न स्थिर रहकर वस्त्र पहिनाने दिये। उन्हें मन्दिर में पहुँचने की शीघ्रता जो है।

× × × ×

भगवान् भास्कर पश्चिम में अन्तर्धान होने लगे हैं। आकाश, वन-भूमि—सब अरुणाभा से रञ्जित हो गया है। गोप गोदोहन में लगे हैं। अभी भगवान् शंकर को दुग्ध-स्नान जो कराना है।

'नमः शम्भवाय च, मनोभवाय च।
नमः शिवाय च, शिवतराय च !'

ब्राह्मणों का घन-गम्भीर कण्ठ बड़े स्वर से मन्दिर को गुञ्जित कर रहा है। श्यामसुन्दर उस पावन लिङ्गमूर्ति का अभिषेक कर रहा है।

दुग्ध, दधि, मधु, शर्करा, घृत, पञ्चामृत के सहस्र-सहस्र कलशों के अभिषेक से मन्दिर से उज्ज्वलवर्णा दूसरी सरस्वती प्रवाहित हो उठीं। सरस्वती का जल दुग्धमय हो गया इस धारा के मिलने से।

घन कानन में निवास करनेवाले ये अरण्यवासी परम तापस भगवान् शिव और भगवती अम्बिका के श्रीविग्रह- आज शिवरात्रि को किसी महानगर के श्रीविग्रह को भी इतनी विपुल श्रद्धा, यह अपार आराधना-सम्भार कदाचित् ही प्राप्त होगा और यहाँ जो श्यामसुन्दर स्वयं बिल्वपत्र समर्पित कर रहा है महर्षि शाण्डिल्य के मन्त्रपाठ के साथ.....

× × × ×

गोपों का अपार समुदाय है। सब एक साथ मन्दिर में खड़े भी नहीं हो सकते। पूजन तो क्रमशः ही हो सकता है। बाबा ने, गोपों ने, बालकों ने, सबने भगवान् पशुपति और अम्बिका को षोडशोपचार से पूजित किया। प्रदोष, निशीथ, तृतीय प्रहर और चतुर्थ प्रहर की पूजा विधिवत् सम्पन्न हुई। रात्रिभर कीर्तन, जयनाद, स्तवन, मन्त्रपाठ होता रहा। कन्हैया ने, बालकों ने भी निद्राका भाव नहीं प्रकट किया। सब इधर-से-उधर जयघोष करते रात्रिभर फुदकते-से रहे हैं। बाबा ने, गोपों ने आज सहस्रों गायें, अपार रत्न, वस्त्र आभरण दान किया है।

कल दोपहर को भोजन हुआ था। आज भी पूरा दिन और रात्रि निर्जल व्यतीत हुई है। दिन में किसी को विश्राम का अवकाश नहीं मिला है। अब तक पूजन-उत्सव के उत्साह में श्रान्ति का अनुभव ही नहीं हुआ। अब चतुर्थ पूजन के अन्त में नीराजन हो चुका। पर्वकृत्य समाप्त हुआ। सबको एक साथ निद्रा और श्रान्ति प्रतीत हुई। श्याम तो मैया की गोद में सिर रखकर सो भी गया। वह दाऊ पड़ा है उसके पास और भद्र तो आज बाबा को छोड़कर माता रोहिणी की गोद में सो गया है। सब सो गये, जिसे जहाँ स्थान मिला।

शिवरात्रि की काल रात्रि--घोर अन्धकार और यह वनभूमि; परंतु निद्रा क्या स्थान का विचार करती है। केवल जलते हुए अलात (मशाल) प्रकाश किये हैं। मन्दिर में तो सोया नहीं जा सकता, बाहर मृदुल तृणों पर ही सब बैठे हैं पूजन से निवृत्त होकर। बैठे-बैठे ही पलकें भारी हुईं, झपकी आयी और गोपियाँ, गोप—सब सो गये। गायें, वृषभ—ये सब तो सोये ही हैं। रक्षा में नियुक्त तथा प्रकाश लिये गोपों ने भी शस्त्र एवं अलातों को वृक्षों की शाखाओं पर स्थिर कर दिया है। वे भी वृक्ष के सहारे तनिक विश्राम कर लेना चाहते थे, पर खड़े-खड़े ही सोने लगे हैं।

मन्दिर में शत-शत--सहस्र-सहस्र प्रदीप प्रज्वलित हैं! पूजन-पात्र, पूजन-द्रव्य इधर-उधर पड़े हैं। बिल्वपत्र, पुष्प, मालाओं से श्रीविग्रह--लिङ्गमूर्ति पूर्णतः आच्छादित हो गयी है। अब भी ऊपर के स्वर्ण-कलश से उसे अखण्ड दुग्धधारा स्नान करा रही है। वस्त्राभरणों से सज्जित, माल्यमण्डित भगवती अम्बिका का केवल श्रीमुख दीख रहा है। जैसे वे लीलामयी मन्द-मन्द हास्य कर रही हों।

बाहर है शान्ति--नीरव शान्ति! कोई वृक्ष से टिके, कोई बैठे-बैठे झोंके लेते और कोई भूमि में घुटने सिकोड़े लेटे हैं। मैया के हाथ निद्रा में भी बार बार श्याम के ऊपर घूम जाते हैं। गायें, वृषभ कभी-कभी पूँछ या कान हिला देते हैं। अलात चुपचाप प्रकाश कर रहे हैं। कोई रक्षक कभी-कभी मस्तक उठाकर नेत्र खोलते हैं और फिर मस्तक शाखा से जा टिकता है।

× × × ×

'श्रीकृष्ण! कृष्ण!' सहसा बाबा उच्चस्वर से चीत्कार करके चौंक पड़े। एक साथ सारे गोप, समस्त गोपियाँ और बालक जग पड़े। सब दौड़े। 'सर्प! अजगर! दौड़ो! बचाओ!' पूरी बात न तो बाबा के मुख से निकलती और न गोपों के मुख से।

बाबा के दोनों चरण जैसे किसी ने साथ ही पकड़ लिये हों। वे चौंककर उठे और देखते ही चिल्ला पड़े हैं। बड़ा भारी अजगर है। वह पता नहीं कहाँ वन से धीरे-धीरे सरकता हुआ यहाँ तक आ गया है। सम्भवतः वह वन से सीधे सरकता आया है। उसके लिये इधर-उधर मुड़ना सहज नहीं। उसके मार्ग में कोई पशु, कोई प्राणी नहीं पड़ा; वह बाबा तक ही पहुँचा। बहुत धीरे-धीरे वह बाबा के दोनों पैरों को निगलता जा रहा है। बाबा ने उसको पकड़कर, भूमि पकड़कर बहुत बल लगाया; पर कहीं इस प्रकार कोई अजगर के मुख से छूटता है।

गोप दौड़े, उन्होंने लाठियाँ और परशु उठायें। बड़ा सहज उपाय है सर्प को काटकर टुकड़े-टुकड़े कर देना। बाबा ने दोनों हाथ उठाकर पूरी शक्ति से चिल्लाकर सबको रोका--'मारो मत! मारो मत! आज शिवरात्रि के दिन किसी प्राणी का वध महापाप है। यह मुझे भक्षण ही तो कर लेगा।'

गोपों के हाथ उठे-के-उठे रह गये। व्रजेन्द्र रोक रहे हैं, आज शिवरात्रि है--पर यह सर्प व्रजाधिप को निगलता जा रहा है। उसने घुटनों तक उनको निगल लिया है। वे धर्म-संकट में दो क्षण स्तब्ध-से रहे और तब उन्होंने जलते अलात (मशाल) उठा लिये। अग्नि के ताप से व्याकुल होकर सर्प व्रजपति को छोड़ देगा, यह सबको निश्चित-सा लगा।

कैसा है यह सर्प? शत-शत अलात उसके शरीर पर लगाये गये हैं। स्थान-स्थान से उसका शरीर जल गया है। दुर्गन्ध आने लगी है। घाव दिखायी देने लगे हैं। वह अपने शरीर को इधर-उधर व्यथा से मोड़ता, घुमाता तो है; पर बाबा को छोड़ता नहीं। उसका निगलने का क्रम भी बंद नहीं होता। उसका मुख बाबा के जानु तक पहुँच गया है। गोपों को स्मरण ही नहीं आता कि सर्प के दाँत ऐसे नहीं होते कि किसी वस्तु को पकड़कर वह फिर छोड़ सके। एक बार जान या अनजान में जिसे वह पकड़ ले, उसे उदर में पहुँचाये बिना उस सर्प के पास कोई उपाय नहीं।

× × × ×

'क्या हुआ है?' व्याकुलता के कारण गोपों ने बाबा को इस प्रकार घेर रक्खा है कि वहाँ तक पहुँचना सरल नहीं। कन्हैया ने किसी प्रकार झुककर भीतर प्रवेश किया।

'तू बाबा को नहीं छोड़ेगा!' पहुँचते ही श्याम ने एक लात जमायी सर्प को।

यह क्या हुआ--सर्प गया कहाँ? यहाँ तो कोई देवता खड़ा है। रत्न-जटित मुकुट, भुजाओं में रत्नाङ्गद, मणि-स्वर्ण-माला, दिव्य वस्त्र और स्वयं इसका शरीर तेजोमय है! यह कन्हैया को हाथ क्यों जोड़ रहा है?

'तू है कौन ? इस प्रकार मोटा, गंदा साँप क्यों बना था ? मेरे बाबा को क्यों पकड़ा तूने ?' कहा नहीं जा सकता कि नेत्रों में अभी नींद की अरुणिमा है या रोष की; पर वाणी में रोष स्पष्ट है।

'मेरा नाम सुदर्शन है ! मैं विद्याधर हूँ ! आप मुझे क्षमा करें ! मैं विमान पर बैठा अपने सौन्दर्य एवं धन के मद में मत्त चला जा रहा था एक बार। नीचे मुझे आङ्गिरस गोत्र में उत्पन्न महर्षि देवल—अष्टावक्र दिखायी पड़े। उनकी कुरूपता पर मुझे हँसी आ गयी। मेरे अविनय से महर्षि ने क्रुद्ध होकर शाप दे दिया। उस शाप के कारण ही मैं अजगर हुआ। बहुत प्रार्थना करने पर महर्षि ने आपके चरण-स्पर्श से इस शाप के निवारण का विधान किया। बहुत दिनों से क्षुधातुर था। आज प्राणियों की आहट पाकर धीरे-धीरे यहाँ आया था। ऋषि का शाप तो मेरे लिये परम वरदान सिद्ध हुआ। आपके परम पावन श्रीचरण के स्पर्श का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ। आपका नाम लेने से प्राणी समस्त पापों से छूट जाता है, मैंने तो आपका चरण-स्पर्श प्राप्त किया है ! मैं ब्रह्मशाप से छूट गया हूँ। दयामय, मैं आपकी शरण हूँ ! सर्वेश्वर, अब आप मुझे आज्ञा करें !' वह दिव्य पुरुष तो हाथ जोड़कर गद्‌गद कण्ठ से स्तुति ही करने लगा। कन्हैया आश्चर्य से उसकी ओर देखता रहा। सभी गोप-गोपियाँ—चकित-से मौन होकर देखते रहे उसे। उसने प्रार्थना की और पृथ्वी पर लंबा पड़ गया दण्डवत् करता श्याम के सम्मुख।

'तुम उठो, जल्दी से अपने घर चले जाओ !' कन्हैया ने इस प्रकार कहा जैसे उसे भय हो कि कहीं यह फिर साँप बनकर किसी को पकड़ न ले ! वह पुरुष उठा, उसने श्रीकृष्ण की प्रदक्षिणा की, उसके सम्मुख फिर दण्डवत् प्रणिपात किया और तब आकाश में चला गया। श्याम अब तक बराबर उसी की ओर देखता रहा था। गोप भी उसे ही देख रहे थे। अब सब जैसे चौंक पड़े हों।

'बाबा !' कन्हैया ने झपटकर बाबा के गले में दोनों भुजाएँ डाल दीं और झूल गया। बाबा ने उसे हृदय से लगा लिया है। उनके नेत्र भरे हैं। वे कुछ बोल नहीं पाते।

'मैंने सबसे पहले भगवान् शंकर की पूजा की थी न, उसीसे तो साँप मेरी एक लात खाकर देवता हो गया !' कन्हैया की बात ही मैया को, सखाओं को, बाबा को और गोपों को ठीक लगती है। महर्षि शाण्डिल्य और विप्रवर्ग क्यों यह सुनकर हँसता है, कौन जाने।

यह प्राची में अरुण रङ्ग का घड़ा फूटा। महर्षि तो विप्रों के साथ सरस्वती में स्नान भी करने लगे ! बाबा ने भी गोपों को छकड़े जोतने को कहकर स्नान किया। स्नान, नित्यकर्म और आम्बिका के साथ भगवान् पशुपति का पूजन करके बाबा ने सहस्रों गायें दान कीं। छकड़े सज्जित हुए। सबने प्रस्थान किया। आज उपवास का पारण तो ब्रह्मभोज के पश्चात् सबको नन्द-भवन में ही करना है।

—❀—❀—❀—

शङ्खचूड़-वध

योषिद्धिरण्याभरणाम्बरादिद्रव्येषु मायारचितेषु मूढः।
प्रलोभितात्मा ह्युपभोगबुद्ध्या पतङ्गवन्नश्यति नष्टदृष्टिः॥

—भागवत ११। ८। ८

फाल्गुन की पूर्णिमा, वसन्तऋतु का सौन्दर्य वन के अणु-अणु से फूटा पड़ता है। आम्र-मञ्जरी की सुरभि, कुसुमित तरु-लता और रात्रि में भी गुंजार करते भ्रमर, चन्द्र-ज्योत्स्ना ने पूरे वन को स्नान करा दिया है।

आज की रात्रि भी क्या निद्रा लेने की रात्रि है? महर्षि शाण्डिल्य ने बताया है कि रात्रि के तृतीय प्रहर के अन्त में भद्रापुच्छ में होलिका-दहन होगा। नवान्नेष्टि यज्ञ होना है उसी अग्नि में। गोप उस यज्ञ की सामग्री-सम्भार में लगे हैं। गोपियाँ यज्ञिय पदार्थ प्रस्तुत कर रही हैं। बालक आज पृथक्-पृथक् अपने-अपने क्रीड़ा-उल्मुक बनाने में लगे हैं। कोई समय से पूर्व नहीं चाहता कि उसका उल्मुक दूसरा देख ले। वे चाहते हैं, उनका उल्मुक सबसे विचित्र सिद्ध हो। किसी ने दो शाखाओं का अरंड वृक्ष चुना है और किसी ने तीन, चार या पाँच टहनियों का। शाखाओं में पत्ते बाँधते उन्हें संतोष ही नहीं होता।

कन्हैया बहुत देर तक सखाओं के साथ आज गाता, कूदता, धूम मचाता व्रज की गलियों में घूमा है। अन्ततः बालक ही तो उस होलिका में नित्य समिधा डालते हैं। आज तो समिधा डालने का अन्तिम दिन था। सबों ने भरपूर धूम की। जहाँ जो काष्ठ मिला, उठाकर डाल आये। द्वार-द्वार, गली-गली सब 'डफ' बजाते देर तक गाते, ताली बजाते खूब घूमे। मैया ने किसी प्रकार रात्रि के द्वितीय प्रहर के प्रारम्भ में श्याम को पाया। बड़ी कठिनाई से दोनों भाइयों ने भोजन किया। आज भद्र को छोड़ कोई सखा साथ नहीं भोजन करने में और यह भद्र भी तो भोजन करते ही एक ओर खिसक गया। उसे भी तो अपना उल्मुक बनाना है।

× × × ×

'भैया, देख न आज कैसी ज्योत्स्ना है। वन भूमि कैसी भली लगती है!' कन्हैया अपने अग्रज के साथ वन में पहुँच गया। उसे सेवकों और बाबा के लाये अरंड पसन्द नहीं आये। स्वयं ढूँढ़ेगा वह अपने उल्मुक के लिये अरंड।

'अरे, तुम सब भी आयी हो!' चूड़ियों की झंकृति से घूमकर दोनों भाइयों ने देखा। व्रज की सभी कुमारिकाएँ तो आ गयी हैं। उन सबों ने सिर झुका लिया। सायंकाल से जो धूम श्यामसुन्दर ने द्वार-द्वार मचायी थी, वह क्या ऐसी थी कि उन्हें घर में रहने दे। वे तो घरों से पीछे-पीछे ही इन दोनों के लगी रही हैं। जहाँ-जहाँ बालकों का दल जाता था, वे दूसरे मार्ग से घूमकर उस घर में पहुँचती रही हैं। जब बालक अपने-अपने घर चले गये—वे नन्दभवन में न जा सकीं। संकोच के कारण द्वार से दूर ही ठिठकी रह गयीं। कितनी देर? यह तो स्वयं उनको पता नहीं; पर उनको तो लगा कि कुछ क्षणों में ही राम-श्याम भवन से निकले और वे दबे पैर लग गयी।

राशि-राशि पुष्पभार लिये झूमती लतिकायें, पुष्प-सौरभ से पूर्ण चमकते अरुण किसलय सम्हाले अनुराग-रञ्जित-से पादप, शीतल मन्द समीर, धवल चन्द्र-ज्योत्स्ना में दुग्ध-स्नात-सी वन राजि। दोनों भाइयों को बड़ा आनन्द आया। वे उन कुमारिकाओं के साथ हँसने, दौड़ने, क्रीड़ा करने लगे। भला, ऐसे समय उल्मुक का किसे स्मरण हो। वे सब पुष्प-चयन करने लगे, परस्पर

पुष्प-गुच्छ फेंकते एक दूसरे पर और हँसते। उनकी क्रीड़ा अबतक चलती रही। समय का ध्यान किसे आये और क्यों ? आज रात्रि में शयन नहीं करना है।

× × × ×

'तुम दोनों भाई एक-से नटखट हो। हम सब तुमसे नहीं बोलेंगी !' कुमारिकाओं ने रोष का अभिनय किया और वे झुंड-की-झुंड एक ओर थोड़ी दूर जाने लगीं।

'हम भी तुमसे नहीं बोलते !' श्याम क्या किसी से कम मानी है। उसने बड़े भाई का हाथ पकड़ा 'भैया, आ ! हम दोनों उस शिला पर बैठेंगे। मैं इन पुष्पों से तुझे सजाऊँगा।' दोनों भाई ठीक दूसरी दिशा में एक शिला की ओर चल पड़े।

'श्याम ! राम ! बचाओ ! बचाओ इस दुष्ट से !' अरे, यह क्या हुआ ? सब-की-सब बालिकाएँ इस प्रकार क्यों चिल्ला पड़ीं ? कन्हैया के हाथ में उठा पुष्प-गुच्छ गिर पड़ा। राम उससे भी पहले खड़ा हो गया और दोनों भाई शिला से कूद पड़े।

'बचाओ ! दौड़ो ! श्याम ! राम !' बालिकाएँ रोती रहीं—उनके तो प्राण हाहाकार कर रहे हैं इस क्रन्दन में। यह महाभयंकर यक्ष उन्हें लिये जा रहा है। घसीटे जा रहा है बलपूर्वक। वह उन शत-शत बालिकाओं को अपनी माया से खींचे लिये जा रहा है। विवश खिंचती जा रही हैं वे।

'डरो मत !' वह गूँजा जलद-गम्भीर राम का स्वर। वह महा विशाल शाल-तरु उसने मूली की भाँति दक्षिण हाथ में उखाड़ लिया। वह दौड़ा आ रहा है वह वायुवेग से।

'मैं अभी आया !' वह श्याम पुकार रहा है। उसने तो भाई से भी बड़ा वृक्ष उखाड़ लिया है अपने हाथ से। अग्रज के साथ ही तो वह दौड़ा आ रहा है।

'बाप रे !' यक्ष ने इतना गम्भीर वज्रघोषी स्वर सुना ही नहीं था। उसने तनिक पीछे मुड़कर देखा। 'ओह !' प्राण सूख गये उसके। इतने विशाल शालवृक्ष शाखाओं के साथ नन्ही छड़ियों की भाँति हाथों में उठाये दौड़े आते ये दोनों भाई !' उसने तो सोचा था, 'दोनों बालक हैं। रो-धोकर ये दोनों लौट जायँगे। कितनी सुन्दर हैं ये लड़कियाँ ! ऐसा सौन्दर्य तो स्वर्ग में सुनने में भी नहीं आता ! वह इन सबका सहज ही हरण कर ले जायगा।' वन में कुछ देर छिपकर वह इनको चुपचाप देखता रहा था। जैसे ही ये सब राम-श्याम से कुछ दूर हुईं, लेकर भाग चला। भला, उसकी गति को मनुष्य कैसे पहुँच सकता है; किंतु अब क्या हो ? ये दोनों भाई तो जैसे उड़े आ रहे हैं। नहीं, वह इतनी तीव्र तो कभी दौड़ नहीं सकेगा !

'अरे, ये तो बहुत समीप आ गये !' यक्ष ने पूरी शक्ति से एकबार भागने का प्रयत्न किया। क्षणभर पश्चात् पीछे मुड़कर देखा उसने कि मध्य का अन्तर बहुत कम हो गया है। भय के मारे उसने सभी बालिकाओं को वहीं छोड़ दिया और अपनी सम्पूर्ण शक्ति से प्राण बचाने के लिये भागा। उसे आशा थी कि दोनों भाई इन लड़कियों को पाकर उसका पीछा करना छोड़ देंगे।

× × × ×

'श्याम ! श्यामसुन्दर !' बालिकाएँ खड़ी रहने में असमर्थ होकर बैठ गयीं भूमि पर। उनके नेत्रों से अश्रुधारा चल रही है। उनकी हिचकियाँ बँध गयीं हैं। वे थर-थर काँप रही हैं। उनके स्वर स्पष्ट नहीं हो रहे हैं।

'भैया, तू यहाँ इन सबों के पास रह ! क्या पता इस दुष्ट का कोई दूसरा साथी कहीं छिपा हो ! मैं पकड़ता हूँ इसे !' दोनों भाइयों के मुख तमतमा आये हैं। नेत्र लाल हो रहे हैं।

'तुम सब डरो मत ! दाऊ यहाँ है ! मैं अभी आया !' श्रीकृष्ण ने किसी के उत्तर की अपेक्षा नहीं। एक क्षण के लिये चरण रुके और आगे दौड़ गया कन्हैया। दाऊ खड़ा हो गया वह विशाल शाल-तरु लिये बालिकाओं के पास।

'चल, तू कहाँ तक जायगा !' श्याम ने हाथ का तालवृक्ष फेंक दिया और दौड़ा यक्ष के पीछे। यक्ष सीधे न भागकर इधर-उधर वृक्षों के झुरमुट और कुञ्जों में आड़े-टेढ़े भागने लगा। भला, सीधे भागने पर कैसे बच सकता है वह।

मोटा, तगड़ा, पहाड़-सा भारी यक्ष—भला, वह क्या चञ्चल कन्हैया के साथ दौड़ने में पार पा सकता है। इस पूर्णिमा की रात्रि में कहीं अन्धकार भी नहीं कि दौड़कर छिप जाय। यक्ष के मस्तक में लगी महामणि आज उसका शिरोभूषण न होकर काल हो गयी है उसके लिये। कुंजों के झुटपुटे में वह कदाचित् छिप भी जाता, पर मणि जो मस्तक पर प्रकाशित हो रही है।

यक्ष दौड़ता जा रहा है, हाँफता जा रहा है, पसीने से लथ-पथ हो रहा है। यह आया श्याम—अब पकड़ा ! प्राणों की सम्पूर्ण शक्ति यक्ष के चरणों में आ गयी है। किंतु ऐसे वह कहाँ तक भागेगा ? बहुत दूर भी नहीं भाग सका वह कि पीछे से मस्तक पर वज्र की भाँति घूसा पड़ा। भहराकर गिर गया वह। मूर्च्छा और मृत्यु—उसे पीड़ा का पता ही नहीं लगा। श्याम का दाहिना हाथ यक्ष के रक्त से अरुण हो गया। उसने वह मणि उसके केशों में से बलपूर्वक झटक ली और तब मुड़ा।

× × × ×

'भैया, देख न ! कितनी सुन्दर मणि है !' दाऊ के सम्मुख अपना हाथ फैला दिया श्याम ने। रक्त टपक रहा है उस दक्षिण कर से। मणि के प्रकाश में हथेली और अरुण हो गयी है।

'अरे, तुझे क्या हो गया !' दाऊ ने शाल तो छोटे भाई को लौटते देखकर ही फेंक दिया। लेकिन यह क्या ? कन्हाई के हाथ से रक्त क्यों टपक रहा है ? दाऊ को मणि देखने का अवकाश नहीं। बालिकाएँ तो स्तब्ध हो गयीं रक्त देखते ही। वे तो मूर्च्छित ही होनेवाली हैं।

'उहूँ, मैं इसे तेरे सिर में गूँथूँगा ! तेरे भाल पर यह बड़ी सुन्दर लगेगी !' कन्हैया ने झट से मुट्ठी बंद कर ली और कूदता दौड़ गया समीप के निर्झर के पास। वह तो मणि धोने में लगा है। उसने देखा ही नहीं कि दाऊ किस व्याकुलता से पीछे दौड़ा आ रहा है उसके ! बालिकाएँ कितनी व्यथित हैं।

'कनूँ, तेरा हाथ तो देखूँ !' दाऊ ने बहुत व्यग्र होकर छोटे भाई का दाहिना हाथ पकड़ा।

'ठहर, पहिले तुझे यह मणि पहना दूँ !' वह नटखट अपनी धुन में है।

'नहीं—श्यामसुन्दर के हाथ का रक्त नहीं था वह !' बालिकाओं में जैसे प्राण आया। वे मुग्ध देखती रहीं कि वह बड़े भाई को भूषित कर रहा है। मणि उस स्वर्णगौर दाऊ के भालपर पहुँचकर धन्य हो गयी है।

'अरे, होली भी तो जलेगी !' कन्हैया को सहसा स्मरण आया। उन्हें लौटना है अब।

अरिष्ट-संहार

अन्येषां पुण्यश्लोकानामुद्दामयशसां सताम् ।
उपश्रुत्य भवेन्मोदः श्रीवत्साङ्कस्य किं पुनः ॥

भागवत ३।१९।३४

अरिष्ट—व्रज में भी अरिष्ट ? जो श्यामसुन्दर के हैं, कन्हैया जिनका अपना है, उनके समीप भी अरिष्ट पहुँचता है ! पहुँचता तो है; चींटी की मृत्यु आती है, तब उसके पंख निकल आते हैं—अरिष्ट का ध्वंस-काल आता है, तब वह श्रीकृष्ण को अन्वेषण करता है ।

व्रज में—इस गतिशील संसार में अरिष्ट न आये, ऐसा तो हुआ नहीं करता । वह आता है और भयप्रद रूप में आता है ! भयदायक भी होता है; किंतु अरिष्ट की शान्ति का व्यस्त प्रयत्न करें दूसरे; जिनके हृदय-वृन्दावन में वह महानीलमणि विराजमान है, वहाँ तो उसकी समुज्ज्वल श्री स्वतः अरिष्टका विनिवारण कर देती है । श्याम के स्वजन एक ही साधन जानते हैं और वह है उसे पुकार लेना ! उनके यहाँ अरिष्ट का सत्कार नहीं होता । वह पूजित करके शान्त नहीं किया जाता । कन्हैया उसे भीगे कपड़े की भाँति मरोड़ कर फेंक देता है ।

बार-बार नहीं—वह तो हो चुका । श्रीकृष्णने अपने स्वजनों के लिये द्वापर में ही अरिष्ट को प्राणहीन कर दिया । मर चुका अरिष्ट तो कब का । दिव्य जगत् की वह शाश्वत क्रीड़ा स्थूल जगत् में अवतीर्ण हुई । मानस—आधिदैव जगत् में श्रीकृष्ण के अपनों के लिये वह कभी पुरानी नहीं पड़ेगी । मरा सो मर गया, दूसरों के लिये अरिष्ट का भय भले जीवित हो; पर जहाँ वह नीलोज्ज्वल ज्योति है; वहाँ के लिये तो वह एक स्मृति है भूतकाल की—ललित स्मृति और उसके स्मरण में रस है । श्याम की लीला है न वह । हम स्मरण करेंगे उसका—

× × × ×

'सायंकालका समय—दिशाएँ अरुणाभ हो चलीं, गगन ने कपिश से पाटल द्युति धारण करना प्रारम्भ कर दिया । अब तक मुरली का सरस स्वर क्यों नहीं सुनायी पड़ा ? गायों की हुंकृति क्यों कानों में नहीं आती ? क्यों किसी ओर गोरज दिशाओं को आच्छादित करके उठती नहीं दीखती ? गौओं के मध्य में सखाओं से घिरा श्यामसुन्दर आज अबतक वन से क्यों लौट नहीं रहा है ? आज तो बहुत विलम्ब हुआ !' पथ पर गोप, गृहद्वारों पर वृद्धाएँ और छज्जों पर तरुणियाँ, बालिकाएँ, सब कहीं एक ही चर्चा है । सब के नेत्र दूर-दूर तक बार-बार देखते हैं । हृदय कहता है—'कुशल तो है ?' गोप ग्राम से दूर तक निकल गये हैं । पूरा व्रज मार्ग के दोनों ओर एकत्र हो गया है ।

'वह धूलि उठी आकाश में, वह गूँजी मुरलिका, वह महावृषभ की हुंकार आयी !' गोप और आगे बढ़े । वृद्धाओं ने नीराजन के दीप प्रज्वलित कर लिये । छज्जों पर चञ्चल कर पुष्पराशि अञ्जलि में भरकर प्रस्तुत हो गये ।

'यह हुंकार, यह तो अपने धर्म (महावृषभ) की हुंकृति नहीं ! यह भीषण हुंकार—यह तो इस विपरीत दिशा से आ रही है । यह धूलि का वात्याचक्र इस ओर से ?' चौंककर सब के नेत्र दूसरी ओर गये । जिस ओर से मुरली-ध्वनि आ रही है, ठीक उसकी विपरीत दिशा से बहुत गम्भीर ध्वनि आती है—जैसे सैकड़ों क्रुद्ध वृषभ एक साथ गर्जन करते दौड़े आते हों । आकाश में ऊँचाई तक धूलि उठ रही है । बढ़ती आ रही है वह गोकुल की ओर ।

'श्याम आ रहा है !' गायों का पूरा समुद्र उमड़ता चला आ रहा है। 'वह संध्या की अरुणिमा में मयूरपिच्छ चमकता है !' गायें तो व्रज के गृहों के सम्मुख से आगे बढ़ने लगी हैं।

'यह क्या—गायों ने कान उठाये, एक क्षण सब स्तब्ध खड़ी रहीं और फिर पूछ उठाकर 'बाँ, बाँ' करती, चिल्लाती इधर-उधर कूदती भागने लगीं। मार्ग से, गलियों से सब गायें एक दूसरे को धक्का देती, भयाकुल चिल्लाती वन की ओर क्यों भाग रही हैं ? ऐसा तो कभी होता नहीं था।'

'क्या है ? कौन है ?' गोपों ने लाठियाँ उठाईं और दौड़े दूसरी ओर।

'भागो ! द्वार बंद करो ! भागो ! भागो !' ये गोप उन्मत्त—भयविह्वल मुख्य मार्ग से इधर-उधर गलियों से क्यों भागने लगे हैं ? क्यों वे इतनी शीघ्र दौड़ते हुए लौट पड़े ? क्यों वे घरों में घुस नहीं जाते ?

'श्रीकृष्ण ! श्याम ! सुबल ! भद्र ! भागो ! भागो सब !' गोपों के साथ ये छज्जों पर से गोपियाँ, बालिकाएँ भी सब-की-सब क्यों चिल्लाने लगी हैं ? इनके मुख तो भय से पीत हो चुके हैं। नेत्र जाने कैसे हो रहे हैं ! ये दोनों हाथ उठाकर इस प्रकार क्यों चिल्ला रही हैं सब की सब ?

'श्रीकृष्ण ! श्रीकृष्ण ! श्याम !' गोपों, गोपियों—सब के मुख से यही आर्त क्रन्दन—क्या पता कि भागती हुई गायें भी यही पुकारती हों !

ये नवजात बछड़े, ये सद्यःप्रसूता गायें—ये सब तो चरने गयी नहीं थीं। ये गोष्ठ से इस प्रकार कूदती-फाँदती, डकारती-भागती कहां जाती हैं ! किस भय से ये प्राण छोड़कर दौड़ रही हैं ?

वह गूँज रहा है वज्र-कर्कश गर्जन। वह धूलि का पर्वत दौड़ा आ रहा है। ओह, यह ध्वनि—यह गर्जन, कौन स्थिर रख सकता है अपने को। उस धूलि के मध्य में वह काला उत्तुङ्ग पर्वत—वह वृषभाकृति; पर वह क्या वृषभ है ? इतना बड़ा तो कोई गजराज भी कहीं सुना नहीं जाता।

'अरर धम्, धड़ाम !' अरे—वह तो मिट्टी के छोटे खण्डों की भाँति नन्दग्राम की बहिःपरिखा की सुदृढ़ भित्ति को गिरा रहा है। वह उन्मत्त वृषभ—वह दौड़ा परिखा छोड़कर। कितनी दूर तक की परिखा उसने सिर झुकाते ही फेंक दी उठाकर। वह—वह भवन-भित्ति गिरी ! तब क्या वह पूरे नन्दग्राम को इस प्रकार गिरा देगा ? लोग भवन छोड़कर इधर-उधर भागने लगे।

वह आया वृषभ—वह उन्मत्त-सा दौड़ाता, वे लगे उसके तीक्ष्ण शृङ्ग भित्ति में ! वह उठी हुई उसकी पूँछ—जैसे गगन में तारकों को वह इससे नीचे फेंक देगा। बार-बार तनिक-तनिक मूत्र करता है, क्रोध के मारे। जलते हुए-से नेत्र, कभी उन्मत्त दौड़ पड़ता है, कभी खड़ा हो जाता है, कभी गर्जन करता है, कभी भवन गिराता है। ओह, क्या ठिकाना इसका। क्या पता कि वह ठीक पथ से ही दौड़ता जायगा। वह तो कभी इधर, कभी उधर दौड़ता है।

'श्रीकृष्ण ! श्रीकृष्ण ! श्याम !' गोकुल के गृह-द्वार बंद होने के स्थान पर खुल गये हैं। सब-के-सब पागल हो गये क्या ? ये गोपियाँ घरों के द्वार बंद क्यों नहीं कर लेतीं ? ये सब क्यों इस प्रकार मार्ग पर दौड़ती, चिल्लाती जा रही हैं ? वह उन्मत्त साँड़ यदि इन्हीं की ओर दौड़ आये ? पर किसे अपनी सुधि है। 'श्रीकृष्ण ! श्याम !' पर उपाय क्या ? श्रीकृष्ण के समीप सीधे दौड़ कर पहुँचने का मार्ग भी तो नहीं। ये सहस्र-सहस्र गायें और वह भी इधर-उधर कूदती, भागती। भला, कैसे कोई श्याम तक जाय। जिनको जिधर से, जिस गली से शीघ्र पहुँचने की आशा है, वह उधर से दौड़ रहा है।

× × × ×

'कनू, गायें भाग रही हैं !' सुबल ने सशङ्क होकर उचक कर आगे देखने का प्रयत्न किया।

'सब लोग चिल्ला रहे हैं ! कोई साँड़ बड़े जोर-जोर से वह क्या डकारता है !' वरूथप ने छज्जों से हिलते करों की ओर संकेत किया। साँड़ की डकार तो स्पष्ट ही अपने वृषभों से भिन्न है।

'वह तो राक्षस है !' कन्हैया ने सुबल की ओर देखा। वह भद्र के कंधे पर बायीं भुजा रखे आज बड़े मजे से धीरे-धीरे चला आ रहा है। मुरली तो कब से कटि की कछनी में जा लगी है।

'राक्षस है?' भद्र ने श्याम की ओर देखा और फिर ताली बजायी। भला, राक्षस के लिये ये गोपियाँ इतनी क्यों चिल्ला रही हैं। कोई साँड़ होता तो कुछ बात भी थी!

'वह खूब बड़ा साँड़ बनकर आया है!' श्रीकृष्ण ने सावधान किया।

'वह बड़ा दुष्ट है, हमारी गायों को डरा रहा है! कनूँ, देख न! गायें कैसी भाग रही हैं! कितना चिल्ला रही हैं! तू सुबल के कंधे पर हाथ रख ले, मैं उसके कान गरम करता हूँ!' भद्र अवश्य भाग जाता आगे; भला, राक्षसों में दम कितनी होती है! पर यह कन्हैया जो उसके कंधे को अपनी भुजा से दबाये है।

'मैं उसे यहीं बुलाता हूँ!' कन्हैया ही भला, ऐसे सुन्दर खेल का अवसर क्यों छोड़ दे। उसने बड़े जोर से तालियाँ बजायीं। इतने जोर से ताली भी बजायी जा सकती है—यह अनुमान नहीं कर सकता कोई।

सम्मुख से सहसा गायें पूँछ उठाकर अस्त-व्यस्त इधर उधर भाग खड़ी हुईं। वह दिखायी पड़ा अरिष्ट—वह राक्षस—इतना बड़ा साँड़! श्याम ने फिर ताली बजायी। सखाओं ने साथ दिया उसका। उन्मत्त साँड़ 'फों फों' फुंकारता स्तब्ध खड़ा रह गया।

'दुष्ट, मूर्ख कहीं का! अरे गायों, पशुओं और गोप-गोपियों को डराने से क्या लाभ? चल इधर आ! तेरे-जैसे दुष्टों के बल का घमंड चूर तो मैं करता हूँ! आ मेरे पास! यह रहा मैं!' कृष्णचन्द्र ने दाहिने हाथ की मुट्ठी बाँधकर दिखायी और भद्र के कंधे पर उसकी वाम भुजा कुछ सीधी हो गयी है। वह खड़ा हो गया है। कठोर हो गयी हैं नित्य हँसती-सी पलकें। वह सीधे असुर को देख रहा है।

'चल, आ! पूँछ पकड़ कर सटक दूँगा!' किसने कहा, कौन बताये—पर बालक श्रीकृष्ण के साथ तालियाँ बजा रहे हैं।

अरिष्ट की पूँछ ऊपर—ऊपर—और ऊपर उठ गई। बादलों से जा लगी उसकी पूँछ। सिर नीचे करके, दोनों सींग ठीक सामने करके खुरों से पृथ्वी खोदता वह दौड़ा—वह दौड़ा आ रहा है। उसके नथुने फूल रहे हैं। 'फों फों' करता श्वास के साथ कुछ जल-सा नथुनों से निकाल रहा है वह। नेत्र अङ्गार-से जल रहे हैं। धूलि से भरे शृङ्ग आगे करके वह दौड़ा आ रहा है—दौड़ा आ रहा है, जैसे इन्द्र के हाथ से छूटा वज्र आ रहा हो।

गोप, गोपियाँ, गायें—जो जहाँ हैं; सब-के-सब जैसे मूर्ति बन गये हैं। उनका भागना बंद हो गया है। वे सब श्याम की ओर मुख करके स्तब्ध देख रहे हैं। भयसे उनकी वाणी मूक हो गयी है।

श्याम—वह क्या भद्र के कंधे पर बायीं भुजा फैलाये खड़ा है। बालक उस दौड़कर आते काले पर्वत को देख रहे हैं। उनके मुखों पर केवल कौतुक है और श्याम—वह तो देख भर रहा है एकटक खड़ा।

× × × ×

'वाह, वाह!' बालकों ने सहसा तालियाँ बजायीं। सम्भवतः विद्युत् भी मन्दगति सिद्ध होगी उस स्फूर्ति की तुलना में। कन्हैया ने सखा के कन्धे से कब भुजा उठायी और कब उस असुर वृषभ के सींग पकड़ लिये—यह भद्र ने ही नहीं देखा। कंधे से भुजा हिली और कनूँ तो यह साँड़ का सींग पकड़े उसे पीछे ढकेलता जा रहा है।

पूरे वेग से दौड़ता अरिष्ट आया था। श्रीकृष्ण ने केवल शृङ्ग पकड़े ही नहीं, उसी वेग से उसे पीछे ठेलना प्रारम्भ किया। असुर को अपने वेग के अवरोध का धक्का लगा और वह धक्का इस ठेलने की गति में बढ़ गया। वह लड़खड़ाता, अपने को सम्हालने का प्रयत्न करता पीछे गिरता-सा हट रहा है।

'कनूँ ! कनूँ ! पटक दे इसे ! बड़ा आया है राक्षस कहीं का ! भद्र पीछे साथ ही दौड़ा आ रहा है। बालक तालियाँ बजाते, चिल्लाते, कूदते आगे बढ़ आये हैं।

'चल !' कन्हैया ने सचमुच धक्का मारा और कुल अठारह पग बढ़ते-बढ़ते उस असुर को फेंक दिया। वृषभ पिछले पैर लड़खड़ाने से गिरा और धक्के से उसका मस्तक उलटा होकर पृथ्वी से टकराया। उसने अपने पैर फटकारे। करवट होकर शीघ्रता से उठ खड़ा हुआ। उसकी फुंकार बढ़ गयी। नथुनों से फेन निकलने लगा। घूमकर फिर उसने श्रीकृष्ण की ओर मुख किया। मस्तक झुकाकर शृङ्ग सम्मुख करके झपटा।

'अच्छा, तो तू ऐसे न मानेगा !' कन्हैया तो फिर भद्र के कंधे पर भुजा रखकर गिरे हुए अरिष्ट को देखने लगा था। उसने भुजा उठायी, सींग पकड़े और अपना दाहिना पैर अरिष्ट के अगले पैरों में से एक पर जमाकर सींगों को पकड़े-पकड़े उसका मुख घुमा दिया। दैत्य धड़ाम से गिर पड़ा। भद्र और सब बालक चौंककर पीछे हट गये।

कन्हैया तो दैत्यका मस्तक घुमाये ही जा रहा है। जैसे भीगे कपड़े को उमेठते हैं, वह तो अरिष्ट की गर्दन वैसे ही मरोड़ता जा रहा है। सींगों को घुमाता जा रहा है। असुर के मुख और नथुनों से रक्त फच-फच करके निकलने लगा है। वह बार-बार गोबर और मूत्र कर रहा है। अपने पैर पछाड़ रहा है।

'चल !' हाय, हाय, श्याम ने तो उसके सींग उखाड़ ही लिये और दोनों सीगों को उसके मस्तक पर पटक दिया पूरे वेग से।

'कनूँ ! कनूँ !' बालक दौड़े। कन्हैया ने सींग फेंक दिये। असुर ने पैर फटफटाये और शान्त हो गया।

'राम, राम !' तूने बेचारे को मार ही डाला !' मधुमङ्गल ने मुख बनाया।

'जा, मैं तुझे अब नहीं छूता !' भद्र ने दूर हटकर चिढ़ाना चाहा; पर ये गोप, ये गोपियाँ जो दौड़े आ रहे हैं।

'कनूँ !' पता नहीं यह दाऊ भैया अब तक कहाँ था। आज वह गोचरण को तो गया नहीं था। इतना सब हो गया, तब वह दौड़ा आया है अपने छोटे भाई को हृदय से लगाने और यह जो ऊपर से पुष्प गिर रहे हैं ढेर-के-ढेर, यह गम्भीर वाद्यध्वनि और जयघोष—बालक इनसे बहुत परिचित हैं। बाबा कहते हैं, यह सब देवता करते हैं। देवताओं को और काम भी क्या है।

बाबा, मया और यह तो पूरा व्रज ही दौड़ आया श्यामसुन्दर के समीप। ये गायें चारो ओर हुंकार करती, परस्पर उचकती, एक दूसरे को ठेलती-सी भीतर अपने उसी चरवाहे को तो देखना चाहती हैं।

काला पर्वत-सा वह वृषभकार अरिष्ट भूमि पर पड़ा है पेट के बल। रक्त से लथ-पथ हो गयी है वहाँ की भूमि और उस असुर का शरीर। मुख, नासिका और दोनों सींगों के स्थानों से रक्त चल रहा है। सींगों के स्थानों पर मांस झलक रहा है और सींग तो वे दूर पड़े हैं। व्रज-भवनों को गिरानेवाले सींग भला, मस्तक पर कैसे रहते। उसके पीछे गोबर पड़ा है और मूत्र बह रहा है। छटपटा कर उसने गोबर को बिखेर दिया है, शरीर में पोत लिया है, उसकी गर्दन रस्सी के समान ऐंठी-सी है।

यह रहा कन्हैया। उसके दोनों चरण असुर के रक्त से सन गये हैं। भुजाओं पर, वक्ष पर, जानु पर, जहाँ-तहाँ रक्त के छोटे-बड़े छींटे हैं और कई स्थानों पर कुछ अधिक रक्त लग गया है। अलकें गोरस से सनी हैं। मयूर-पिच्छ लहरा रहा है। वनमाला कुछ रक्त-सीकरों से और भूषित हो गयी है।

कोई नहीं देखता कि श्याम को आलिङ्गन करने से शरीर में रक्त लग जायगा। दाऊ ने तो अपने श्रीचरण, वक्ष, वस्त्र रँग ही लिये; मैया, बाबा और सभी तो उसे गोद में लेने को आतुर हो रहे हैं।

'बाबा, महर्षि शाण्डिल्य को बुलाओ न!' भद्र ने बाबा का हाथ झकझोर दिया।

'महर्षि और दूसरे विप्रों को तू जितनी गायें चाहे, देना। घर तो चल!' बाबा ने सोचा, भद्र अपने सखा की विजय पर गोदान करना चाहता है।

'गोदान तो कनूँ करेगा! उसीने तो यह बैल मारा है!' मधुमङ्गल ने बाबा का दूसरा हाथ पकड़ा।

'यह तो राक्षस है!' बाबा ने गम्भीरता से भूमि पर पड़े असुर की ओर देख लिया। वैसे स्नान, पूजन, गोदान, शान्ति-पाठ तो होना ही है और ये पुण्य-कार्य क्या कल पर छोड़े जा सकते हैं?

मार डाला—अपनों के लिये कनूँ ने सदा के लिये अरिष्ट को मार डाला आज!

—❀⊂❀⊂❀—

केशी-वध

लोको विकर्मनिरतः कुशले प्रमत्तः कर्मण्ययं त्वदुदिते भवदर्चने स्वे।
यस्तावदस्य बलवानिह जीविताशां सद्यश्छिनत्त्यनिमिषाय नमोऽस्तु तस्मै॥

—भागवत ३।९।१७

ये देवर्षि हैं न, बिना इधर-उधर लगाये इनको भला, कहाँ आनन्द आता है। पतला स्वर्ण-गौर शरीर, कटि में कौपीन और घुटे मस्तक पर बड़ी-सी चुटिया; बस, इनके पास तो कुछ है नहीं। खड़ाऊँ खटकाते, वीणा के तार झन-झनाते ये यहाँ से वहाँ सारे त्रिभुवन में चक्कर ही काटा करते हैं। इनकी वीणा के तार बजते ही रहते हैं—

"हरि नारायण नारायण गोविन्द !
कृष्ण माधव मुरारि अच्युतानन्द।"

दैत्य, राक्षस, दानव—कोई तो इनसे चिढ़ता नहीं। कोई नहीं कहता कि 'आप यह क्या अलापते हैं !' जमकर बैठना तो जैसे सीखा ही नहीं इन्होंने। सदा प्रस्थान की शीघ्रता में ही पहुँचेंगे और उन कुछ क्षणों में ही कुछ-न-कुछ खटपट का प्रारम्भ कर जायँगे।

"विश्व एक नाटक है प्रभुका,
शोक रहे या हर्ष रहे।
जिसमें अपना स्वाँग सफल हो,
यहाँ एक संघर्ष रहे॥"

सो इनको तो बस, अपना स्वाँग सफल करना है। कोई नहीं मिला, तब उस दिन मथुरा में कंस के राजमन्दिर में ही सबेरे-सबेरे जा धमके !

'ये तो नारदजी हैं !' कंस और उसके सेवक चौके। भला, देवर्षि को छोड़कर बेरोक-टोक राजसदन में—असुरराज-सदन में और कौन इस प्रकार धड़-धड़ाता, वीणा के तार झन-कारता पहुँच सकता है; किंतु देवर्षि के लिये तो सुरेन्द्र और असुरेन्द्र दोनों के अन्तःपुर एक-से हैं। उनकी गति वायु के समान अबाध है समस्त प्राकृत—अप्राकृत भुवनों में। उन्हीं की 'श्रीपति माधव नारायण हरि' की गुंजार कभी-कभी दैत्य-गृहों को झंकृत करने में सफल होती है।

'आपने तो मुझे दर्शन देना ही छोड़ दिया ! आज वर्षों के पश्चात् पधारे ! मेरे लिये कोई उपयोगी सूचना ? भला, आप बिना किसी गम्भीर कारण के कहीं पधारते हैं !' कंस ने पृथ्वी पर मस्तक रखकर प्रणाम किया। देवर्षि उसके सिंहासन पर विराजमान हो गये। असुर ने अर्घ्य-पाद्य का आयोजन नहीं किया और न देवर्षि को उसकी अपेक्षा थी। कंस जानता था कि देवर्षि कुछ क्षण में उठ खड़े होंगे चलने को और तब उन्हें किसी प्रकार रोका नहीं जा सकता। वह अधिक-से-अधिक अपने काम की सूचनाएँ प्राप्त कर लेना चाहता था।

देवर्षि को भी यहाँ रुकने में कोई आनन्द नहीं आता था। वे सीधे अपने उद्देश्य पर आ गये—'राजन्, मैं तुम्हें सावधान करने आया हूँ। आकाशवाणी ने कहा था न कि देवकी का अष्टम पुत्र..... ?'

'पर वह तो कन्या.....' कंस चौका भय से। उसने बीच में ही बात स्पष्ट करने का प्रयत्न किया।

'यही तो तुम्हारा भ्रम है। वह कन्या तो नन्दराय की थी। देवकी का सप्तम पुत्र रोहिणी का पुत्र हो गया। तुम तो जानते ही हो कि वसुदेवजी ने अपनी पत्नी रोहिणी को श्रीनन्दराय के यहाँ गोकुल में तुम्हारे भय से रख छोड़ा है!' देवर्षि कहते गये।

'वह रोहिणी-पुत्र—बल और अष्टम पुत्र?' कंस प्रत्यक्षतः बहुत सम्हाल रहा था अपने को। वह काँप गया था और उसका मुख कुछ पीतवर्ण हो चुका था।

'अष्टम पुत्र!' देवर्षि खुलकर हँसे। 'तुम इतना भी नहीं समझते कि श्रीनन्दराय वसुदेवजी के घनिष्ट मित्र हैं। वसुदेवजी ने तुम्हारे भय से अपना अष्टम पुत्र उनके यहाँ पहुँचा दिया।'

'कौन? कौन है वह?' कंस उठकर खड़ा हो गया। उसके नेत्र विस्फारित हो गये।

'श्रीकृष्ण!' बड़े शान्त गम्भीर स्वर से देवर्षि कह रहे थे। 'यह भी पूछने की बात है? जिसने तुम्हारे इतने बलवान् सेवकों को खेल-खेल में मार दिया, वह क्या छिपा रह सकता है।'

'विश्वासघात—वसुदेव ने मेरे साथ विश्वासघात किया!' दो क्षण स्तब्ध रहने के पश्चात् कंस के नेत्र जल उठे। उसने पैर पटका और कोश से तलवार खींच ली। 'मैं उसे अभी मार डलूँगा।'

'और तब श्रीकृष्ण तुम्हें अवश्य मार डालेंगे।' देवर्षि ने इस प्रकार कहा, जैसे वसुदेव या कंस—किसी की मृत्यु से उनका कोई सम्पर्क नहीं। 'वसुदेव जीवित हैं, तभी तक तुम्हारे पास कूट प्रयत्न करने का अवसर है। पिता का वध सुनकर तो श्रीकृष्ण वहाँ से सीधे तुम्हारे ऊपर आक्रमण करने सावधानी से चलेंगे!'

'तब?' कंस के पद द्वार की ओर बढ़कर भी रुक गये।

'यह सब मुझे क्या पता! मैं नरेश नहीं हूँ, जो राजनीति जानूँ! अच्छा, जै श्रीहरि!' और देवर्षि ने वीणा के तारों पर अँगुली रक्खी। वे उठ खड़े हुए।

कंस हाथ में नंगी करवाल लिये वहीं धम-से बैठ गया। उसके भाल पर बड़ी-बड़ी बूँदें चमकने लगीं चिन्ता के कारण। देवर्षि को अभिवादन करने का शिष्टाचार भी नहीं निभा सका वह। देवर्षि—उनकी वीणा का स्वर तो दूर-दूर जा रहा है। मन्द से मन्दतर होता सुनायी पड़ता है—

'नारायण माधव मधुसूदन
श्री हरि केशव गोविन्द!'

× × × ×

'वसुदेव कहीं भाग न जाय!' वीणा की झंकृति का सुनायी पड़ना शान्त होते-न-होते कंस चौंका। उसने पार्श्वस्थ सेवक को चिल्लाकर पुकारा! अपने आपे में नहीं था वह।

'वसुदेव और देवकी सुदृढ़ लौह शृङ्खलाओं से बाँधकर कारागार में बंद कर दिये जायँ! आज्ञा-पालन की सूचना मैं अभी सुनना चाहता हूँ!' सेवक ने मौन रहकर हाथ जोड़कर मस्तक झुकाया और शीघ्रता से चला गया। उसे तो केवल नरेश का आदेश दुर्गपाल को सुना देना है।

'केशी!' दो क्षण रुककर कंस ने फिर कुछ सोचकर पुकारा। उसका मुख भयंकर हो रहा था। उसके नेत्र अङ्गार बन रहे थे। वह बार-बार दाँत पीसता या चौंककर इधर-उधर देखता जाता था।

'कब पुकारा था तुम्हें!' बेचारा केशी, वह तो नरेश की मुद्रा से ही काँप गया। मध्याह्न से सायंकाल तक खुर्राटे लेनेवाला वह असुर भागता दौड़ता आया था राजाज्ञा सुनकर अस्त-व्यस्त। चुपचाप मस्तक झुकाये खड़ा रहा वह।

'तुम्हें नन्द के व्रज में जाना है! नन्द के यहाँ जो दो लड़के हैं—कृष्ण और बल, उन्हें ठिकाने लगा दो!' कंस नाम लेते भी चौंका। उसने केशी की ओर देखा बड़े ध्यान से।

'भूलना मत! धोखे में मत आना!' एक लड़का काला है और एक गोरा। दोनों से पार न पा सको तो पहिले काले—उस काले लड़के को अवश्य मार दो! अवश्य!' कंसने उठकर असुर केशी के कंधे पर हाथ रक्खा।

'महाराज विश्वास करें!' केशी के स्वर में गर्व था। 'महाराज का आदेश कल प्रातः पूर्ण हो जायगा और मध्याह्न के पूर्व मैं श्रीमान् के समीप उपस्थित हो जाऊँगा!' बात ठीक ही है। आज तो सायंकाल हो चुका। गोप घरों में होंगे। वहाँ पहुँचने तक बालक कदाचित् सो भी जायँ। केशी कहाँ ढूँढ़ेगा उन्हें।

'मेरे सर्वश्रेष्ठ शूर, तुम सफल होगे!' कंस ने उसके कंधे को थप-थपाया। 'मैं तुम्हें अपना प्रधान सेनापति बनाऊँगा!'

× × × ×

'केशी आ रहा है—महाकाय कृष्णवर्ण अश्व-रूपधारी केशी आ रहा है। वह गूँज रही है उसकी भयंकर हिनहिनाहट!' बेचारे देवता झटपट विमानों में बैठे और भागने को उद्यत हुए। बार-बार इस असुर-घोटक ने उनके नन्दन-कानन को ध्वस्त किया है। अमरावती की पवित्र भूमि अनेक बार इसके लेण्ड से अपवित्र हुई है। महेन्द्र का वज्र और यमका दण्ड प्रभावहीन है इसके वरप्राप्त शरीर पर। इसके खुर, पुच्छ तथा सटाघात से देवताओं के शरीर अनेक बार आहत हो चुके हैं। अब तो अमर इस महादैत्य की 'हिंकार' से ही भयभीत होकर त्रिविष्टप छोड़कर भागते हैं।

केशी आ रहा है—विशाल प्रज्वलित गुफाओं-जैसे नेत्र, फैला हुआ महा भयंकर मुख, लंबी गर्दन, अपनी सटाओं से विमानों को इतस्ततः ताड़ित करता, पृथ्वी को कम्पित करता वह महाघोटक दौड़ा आ रहा है।

'बड़ा भयंकर घोड़ा! पागल घोड़ा! केशी आया!' व्रज में गोप चिल्लाने लगे हैं। सबेरे-सबेरे अभी गोदोहन समाप्त हुआ और यह विपत्ति! इधर-उधर चिल्लाहट, दौड़ा-दौड़ी मची है। केशी दौड़ रहा है, इधर-उधर गलियों में। भयंकर हिंकार कर रहा है। जैसे वह किसी को ढूँढ़ रहा हो।

× × × ×

'अरे, तू कहाँ जा रहा है!' कन्हैया ने माता रोहिणी को वस्त्र उठाते देखा और भागा बाहर को। मैया उसे कलेऊ कराने की प्रस्तुति में है। उसने हाथ का पात्र छोड़ा और दौड़ी।

'अभी आया, तनिक देख लूँ तो!' भला, कनूँ भागने पर कहीं मैया के हाथ आ सकता है। बाहर बड़ा हल्ला हो रहा है। कोई घोड़ा हिनहिना रहा है। श्याम कैसे गुम-सुम भीतर बैठा रहे।

'कहाँ जाता है! ठहर तो!' मैया पुकारती रही। वह द्वार तक आयी। 'दूर मत जा! कलेऊ कर ले! दाऊ, भद्र दोनों तो बैठे हैं! सुबल आता होगा!' इस समय यह सब सुने कौन? वह चञ्चल तो वह जा रहा है—वह दौड़ा जा रहा है!

× × × ×

'घोड़े, चल! चल आ इधर!' कन्हैया ने देखा उस घोड़े को। बड़ा प्रसन्न हुआ वह। इतना बड़ा घोड़ा! ताली बजाकर उछल पड़ा। उसने पुकारा जोर से केशी को, जैसे अपने महा-वृषभ धर्म को ही पुकार रहा हो।

घोड़े ने शब्द सुना, ताली की ध्वनि सुनी और देखा मस्तक उठाकर। 'यही तो वह काला लड़का है!' वह इसी को गलियों में अब तक ढूँढ़ रहा था। सिंह के समान पूरे जोर से हिनहिना-कर दौड़ा। दौड़ा वह मुख फाड़कर।

'श्रीकृष्ण! श्याम!' गोप चिल्ला उठे! लेकिन श्याम तो घोड़े को देख रहा है। घोड़ा दौड़ता आया और उसके सम्मुख से कुछ आगे बढ़कर दोनों पिछले पैरों से दुलत्ती झाड़ दी उसने कन्हैया पर।

'अच्छा!' कन्हैया—चपल कन्हैया कूद गया एक ओर और झुककर उसने घोड़े के दोनों पैर पकड़ लिये। झटके के साथ फेंक दिया उसे। 'ले, मारने चला है!'

वह पहाड़-जैसा घोड़ा धड़ाम-से बहुत दूर जा गिरा, जैसे श्याम ने एक कन्दुक फेंक दिया हो। घोड़ा गिरते ही पैर फटफटाकर उठ खड़ा हुआ। उसके जलते नेत्र दुगुने जलने लगे। नथुने फूलने लगे। पूरा मुख फाड़कर दौड़ा वह। इतना बड़ा मुख कि उसमें एक तो क्या, तीन हाथी समा जायँ !

दौड़ता आया केशी—दौड़ता आया और अबकी बार क्या यह दुष्ट घोड़ा अपने बड़े मुख से कन्हैया को काटना चाहता है ? कन्हैया ने दाहिने हाथ की मुट्ठी बाँधी और जैसे ही घोड़ा समीप आया धक्के से घूसा बँधा हाथ कंधे तक उसके मुख में डाल दिया। घोड़े के मुख से फच-से रक्त की धारा निकल पड़ी। उसके दोनों अगले पैर उठे ही रह गये। श्याम का वक्ष अरुण हो गया। कछनी पर से रक्त बह चला !

घोड़ा कुल दो क्षण खड़ा रहा और धड़ाम से गिर पड़ा। कन्हैया कूदकर उसके सम्मुख झुक गया। भुजा उसने मुख से निकाली नहीं।

'श्रीकृष्ण को घोड़े ने काट लिया ! हाथ काट लिया कन्हैया का !' गोप दौड़े लाठियाँ लेकर। दाऊ, भद्र दौड़े मैया से सुनकर कि श्याम भाग गया। मैया दौड़ी बाहर का कोलाहल सुनकर।

घोड़ा—वह तो पैर पछाड़ रहा है। उसका पेट फूलता जा रहा है। गोप, गोपी, बालक—सब चौंक पड़े। बड़े वेग से शब्द हुआ। बड़ा भारी धड़ाका हुआ। सबने देखा कि श्याम तो पीछे मुड़कर मैया की ओर भागा जा रहा है :

'मैया, घोड़े का पेट तो फूला और फट-से हो गया' उसने मैया का हाथ पकड़कर घोड़े की ओर घूमकर संकेत किया।

'घोड़े ने तुझे कहाँ काटा ?' मैया तो उसे दोनों हाथों हृदय से दबाकर उसकी दाहिनी भुजा देखने लगी है अँगुली से उसमें लगा रक्त पोंछ-पोंछकर।

'कहाँ, मुझे तो कहीं नहीं काटा उसने !' श्याम को जैसे यह पता ही नहीं कि घोड़ा उसे काट भी सकता था। कहाँ, उसे तो कभी कोई पशु नहीं काटता। वह तो कितनी बार धर्म, नन्दिनी या वन के व्याघ्र या केहरी के मुख में हाथ डालता है। कितनी बार भद्र के साथ उसने ऋक्षों, मृगों, गवयों और चीतों के दाँत गिने हैं। कभी कोई तो उसे काटता नहीं।

'तेरे हाथ में घोड़े का रक्त लगा है और थूक भी !' भद्र ने भुजा भली प्रकार देख ली हाथों में लेकर और तब मुख बनाया !

× × × ×

श्रीव्रजेन्द्र के द्वार से थोड़ी ही दूर पर पड़ा है वह काले पहाड़-सा महाघोटक। मुख से पिछले पैरों तक पेट की ओर ठीक नाभिरेखा की सीध से उसका पूरा शरीर फट गया है, जैसे पक-कर वर्षा की ककड़ी (फूट) फट गयी हो। आँतें बाहर निकल आयी हैं। पूरा शरीर रक्त और स्वेद से लथपथ है। समीप की भूमि में रक्त-कीच हो गया है। घोड़े के नेत्र बाहर निकल-से आये हैं। ढेर-सा गोबर (लेण्ड) किया है उसने। समस्त शरीर से, रोमकूपों से भी सम्भवतः रक्त आया है। बिचारे का श्वास रुक गया होगा और रुद्ध वायु ने शरीर फाड़ दिया।

घोड़े का मुख तो फटा पड़ा है; पर उसमें तो एक भी दाँत नहीं। दाँत क्या हो गये इसके ? वे रहे आँतों के मध्य में उज्ज्वल चमकते दाँत। सम्भवतः कन्हैया के घूसे के वेग से टूटकर वे पेट में चले गये।

× × × ×

'श्याम, आज तू गायें चराने मत जा !' मैया ठीक ही तो कहती है। आज बड़े सबेरे यह दैत्य आया व्रज में। इतना बड़ा असुर घोड़ा ! अब तो पहचान भी लिया गया कि यह कंस का असुर-घोटक केशी है। पता नहीं दिन में और क्या हो। अभी कन्हैया को पुनः स्नान करना है। सभी लड़के स्नान करेंगे। सबके वस्त्रों में रक्त लग गया है। मैया की भी तो वही दशा है। अभी तक कलेऊ नहीं किया है बालकों ने।

'ना, तू मुझे जल्दी से कलेऊ दे दे ! हम सब वन में आज कलेऊ करेंगे !' गोपाल को यह कैसे रुचे कि वह गायें चराने न जाय। वह वन में न जाय तो गायें चरेंगी कैसे ?

'देख, तेरे बाबा महर्षि शाण्डिल्य को बुलवा रहे हैं। तू पूजा करके गोदान करेगा न ?' इतना बड़ा अपशकुन प्रातःकाल हो और नन्दभवन में शान्ति-पाठ न हो, यह कैसे सम्भव है। बाबा ने तो महर्षि के समीप एक गोप को भेज भी दिया।

'मैं महर्षि को कह दूँगा ! पूजा झटपट हो जायगी !' पता नहीं क्या बात है, महर्षि कभी कन्हैया का आग्रह टालते नहीं। इसका आग्रह उनकी विधियों को छोटी-बड़ी करता ही रहता है। श्याम ठीक ही कह रहा है। वह कहेगा और महर्षि बहुत शीघ्र पूजा समाप्त करा देंगे।

'अच्छा, चल तू स्नान तो कर !' मैया क्या करे ! वह जानती है कि उसका यह नटखट वन में गये बिना मानेगा नहीं।

स्नान, पूजन और फिर बड़े आग्रह से किसी प्रकार कलेऊ किया बालकों ने। 'कलेऊ वन में करेंगे' ! भला, आज उनका यह आग्रह कैसे मान लिया जाय। कितनी देर हो गयी है इस दूसरी बार के स्नान और पूजनादि में। अब वन में कलेऊ करने के लिये समय कहाँ रहा है।

गोपों ने गायें कब से खोल दी हैं। उन्होंने भरसक प्रयत्न कर लिया है कि वे आज इनको वन में ले जायें और बालक ग्राम में ही खेलें; पर गायें कहाँ जाती हैं। उनका तो व्रजराज के द्वार के सम्मुख ठट्ट लगा है। वे हाँकने पर इधर-उधर दौड़कर फिर वहीं आ जाती हैं। उन्होंने अपने चरवाहे से इन गोपों के प्रति सम्भवतः अभियोग उपस्थित करना आरम्भ कर दिया है 'हुम्मा ! हुम्मा !' करके !

वह आया कन्हैया ! वह बालकों से घिरा निकला गोपाल। गायों ने हुंकार की और अब तो वे बिना हाँके ही वन की ओर दौड़ पड़ी हैं। अब उन्हें उनका चरवाहा जो मिल गया है। वे बालक गायों को सहलाते, बछड़ों को पुचकारते लिये जा रहे हैं ! गोपाल—यह नित्य गोपाल चला गोचारण को।

—❀○❀○❀—

अक्रूर का आगमन

"तं त्वद्य नूनं महतां गतिं गुरुं त्रैलोक्यकान्तं दृशिमन्महोत्सवम् ।
रूपं दधानं श्रिय ईप्सितास्पदं द्रक्ष्ये ममासन्नुपसः सुदर्शनाः ॥"

—भागवत १० । ३८ । १४

'श्रीकृष्ण—देवकी का अष्टम पुत्र !' कंस को चैन नहीं । उसे अभी तक संदेह था—देवर्षि ने स्पष्ट कर दिया आज । केशी जायगा, उसे आज्ञा हो चुकी; और भी तो इसी प्रकार जा चुके हैं । केशी सफल ही होगा, क्या ठिकाना है ?

कंस को क्षण युग हो गये हैं । 'केशी नहीं लौटेगा !' उसकी आशङ्का ठीक ही है । कन्हैया के समीप जाकर कौन लौटता है । 'अब क्या करना है; क्या करना चाहिये !' केशी गया, तबसे—उससे भी पूर्व से मस्तिष्क में विचारों का अंधड़ चल रहा है । 'जो व्रज जाता है, उसकी मृत्यु का ही संवाद मिलता है ! क्यों न वसुदेव के दोनों पुत्रों को यहीं बुलवा लूँ । यहाँ मथुरा में अनेक साधन हैं; एकाकी न सही, सब-के-सब मिलकर तो उन छोकरों को पीस ही देंगे ! गोप क्या कर लेंगे ?' एक योजना बना ली है मन-ही-मन कंस ने । योजनाएँ तो बनती हैं, कोई त्रुटि दीखती है—दूसरी, तीसरी, प्रातः से योजनाओं का ही क्रम तो चल रहा है । अब एक योजना स्थिर कर ली है इसने ।

× × × ×

'दानाध्यक्ष !' बेचारे अक्रूरजी को आज मथुरा नरेश ने बुलाया है । महाराज उग्रसेन के ये पुराने दानाध्यक्ष, कंस का अनुग्रह था कि कभी उसने इन्हें पृथक् नहीं किया । कभी रुष्ट होने का अवसर ही कहाँ दिया उसे नीतिकुशल दानाध्यक्ष ने । आज इन्हें मंत्रणागृह में महाराज स्मरण कर रहे हैं । पता नहीं क्या भाग्य में है । नारायण का मन-ही-मन स्मरण करते हुए सावधानी से ही चले अक्रूरजी ।

'अक्रूरजी !' ओह, आज कंस इतना सम्मान क्यों कर रहा है ? ऐसे लोगों का सम्मान भी भयंकर होता है । पता नहीं यह व्यंग है आदर का या किसी कूट प्रयत्न की भूमिका ? अक्रूरजी को कुछ सोचने-विचारने का अवकाश नहीं था । आज कंस—राजा कंस ने उठकर स्वागत किया है । अवश्य कुछ दाल में काला है और अब तो हाथ पकड़कर वह अपने समीप के आसन पर बैठा रहा है ।

'दानपति, आप जानते ही हैं कि देवता जब संकट में होते हैं, विष्णु का आश्रय लेते हैं । मैं भी एक महान् काम के लिये ही आपका आश्रय ले रहा हूँ ।' यह सदा का देवताओं का द्रोही, भगवान् विष्णु का शत्रु आज स्वयं देवता बन गया है और अक्रूरजी—खल अपने स्वार्थ के लिये क्या नहीं कर सकते । बेचारे अक्रूरजी को तो चुपचाप सुनना है ।

'आप ही यदुकुल में मेरे एकमात्र हितैषी हैं । शेष सभी यादव मुझसे शत्रुता करते हैं । आपके अतिरिक्त मैं और किसी का विश्वास नहीं करता !' कंस तो चाटुकारी करने लगा है । उसे संदेह है—कहीं अक्रूर उसका प्रस्ताव अस्वीकार न कर दें । कहीं ये नन्दग्राम जाकर गोपों से मिल न जायँ । मथुरा में और कोई ऐसा प्रभावशाली व्यक्ति नहीं दीखता, जिसपर गोप विश्वास कर लें और कंस भी विश्वास करे । वसुदेव ने उसे धोखा दिया; भला, अब दूसरे यादवों का क्या विश्वास । अक्रूर फिर भी राजकर्मचारी हैं । इन्हें पर्याप्त आश्वासन, सम्मान, प्रलोभन दे देना है । इनकी प्रतिष्ठा है यादवों में । गोप अवश्य इनपर विश्वास कर लेंगे । कंस ने यह सब सोच लिया है ।

'आज ही देवर्षि ने बताया है—वसुदेव ने मेरे साथ विश्वासघात किया ! नन्द के घर उन्होंने अपने दो पुत्र राम और कृष्ण को छिपा रक्खा है। यह कृष्ण ही देवकी का आठवाँ...।' सिहर उठा है कंस इस बात को स्मरण करके ही। 'इन्हीं लड़कों ने हमारे प्रधान शूरों का वध किया है, यह तो आप जानते ही हैं। मेरा अनुरोध है कि आप रथ लेकर नन्दव्रज चले जायँ और सब गोपों को मेरा निमन्त्रण देकर बुला लायें। शिवरात्रि को यहाँ महोत्सव हैं। हमारे मल्ल अपनी कला एवं शक्ति का प्रदर्शन करेंगे ! नन्द के साथ सभी गोपों को आना ही चाहिये और दोनों लड़कों को तो आप अपने ही रथ पर बैठा कर स्वयं ले आयें ! उन्हें गोपों के साथ आने के लिये भी न छोड़ें ! आप परम नीतिज्ञ हैं; जैसे उचित समझें, यह काम करें ! कल प्रातः ही रथ लेकर चल दें ! मेरा जो रथ—जो अश्व आप चाहें, ले जायँ !'

'यह क्यों अपने काल को यहाँ स्वयं आमन्त्रण दे रहा है ? यदि राम-श्याम को बुलाना ही है तो समस्त गोपों को क्यों बुला रहा है ? गोप क्या सहज ही उन बालकों पर कोई अत्याचार होने देंगे ! यह गोपों से संग्राम का आयोजन क्यों ?' अक्रूरजी कंस की ओर देख रहे हैं। वे स्वयं कुछ कहें या न कहें, उनके नेत्रों में जिज्ञासा है।

'अक्रूरजी परम चतुर हैं, उनसे छल नहीं किया जा सकता। तनिक भी सदेह हो जाय उनके मनमें तो कार्य बनने के स्थान पर और बिगड़ सकता है। उनसे कुछ छिपाना नहीं है। पूरा बात प्रगट करके पूर्ण विश्वास दिला देना है उन्हें।' कंस यह सब पहले सोच चुका है। वह अपने मन्त्रणागृह में इन प्रधान लोगों—राजसेवकों को यों ही बुलाकर नहीं बठा है। उसने अक्रूरजी के सम्मुख ही आदेश देना प्रारम्भ किया—'मन्त्रिगण, नन्दव्रज में वसुदेव ने अपने पुत्रों को छिपा दिया है। उन राम-कृष्ण से ही देवताओंने मेरी मृत्यु का विधान किया है।' उच्चस्वर से कृत्रिम अट्टहास किया कंस ने अपने भय को छिपाने के लिये।

"ये महाभाग अक्रूरजी यहाँ उन दोनों को लिवा लायेंगे। इस चतुर्दशी पर धनुषयज्ञ महोत्सव होगा ! आप लोग अत्यन्त सुसज्जित रङ्गशाला प्रस्तुत करें ! नाना प्रकार के मञ्च बनाये जायँ। मेरी समस्त प्रजा यथोचित स्थान पर बैठकर इस बार स्वच्छन्द—नियमहीन मल्ल-क्रीड़ा देखे। राम-कृष्ण यहाँ आयेंगे, इस मल्लयुद्ध के बहाने ही आप लोग उन्हें ठिकाने लगा दें। महामात्र ! भद्र ! तुम्हारी कार्य-कुशलता की परीक्षा का अवसर है। महागज कुवलयापीड़ को तुम रङ्गशाला के द्वार पर रक्खो और उसके द्वारा मेरे इन शत्रुओं को नष्ट कर दो ! धूलधाम से यह उत्सव हो ! मङ्गलमय भूतनाथ के लिये पवित्र पशुओं का भरपूर बलिदान किया जाय !" कंस के इस 'पवित्र पशु' में जो व्यंग है, उसे असुर भली प्रकार जानते हैं। कितना उत्साह दीखता है इनमें; किंतु इस समय प्रशंसा सुनना नहीं चाहते। उनका मुख गम्भीर है। उनकी भङ्गिमा कहती है—'बोलो मत ! कहा गया है उसे सम्पूर्ण चित्त से समझो और पूरा करो।' अब तो संकेत भी मिल गया। 'यहाँ से चले जाओ ! अविलम्ब कार्य में लगो ! समय कम है।' सच तो है, कुल दो ही दिन हैं और पूरे महोत्सव की प्रस्तुति करनी है। सबने मस्तक झुकाया, अभिवादन किया और क्रमशः बाहर हो गये वहाँ से।

'श्रीअक्रूरजी, आप तो जानते ही हैं कि विष्णु के आश्रित देवताओं ने वसुदेव को पुत्रों के हाथ मेरी मृत्यु की व्यवस्था की है। वे दोनों नन्दव्रज में हैं। आप उनको साथ ले आयें। नन्दादि गोपों को भी राजोपहार लेकर आने का आदेश सुना दें। वे दोनों यहाँ आये तो उन्हें अपने महाकाल के समान कराल महागज से कुचलवा दूँगा ! यदि किसी प्रकार हाथी से बच गये—मेरे विद्युत् की भाँति स्फूर्ति रखने वाले मल्ल किस दिन के लिये हैं ! वे इन दोनों को पीस देंगे ! उन दोनों बालकों के मरते ही गोप स्वतः अधमरे हो जायँगे। वसुदेवादि वृष्णि-वंशी भी शोक-संतप्त होंगे ! आप उनके विद्रोह की आशंका न करें ! मैं वसुदेव, नन्द और इनके समस्त बन्धु-बान्धवों को स्वयं मार दूँगा ! ये सब वृष्णि, दाशार्ह और मेरे भोजवंशी वसुदेव के पक्ष में हैं। मैं इन सबों का

वध कर दूँगा ! मेरा बुड्ढा पिता उग्रसेन भी राज्य की कामना करता है ! मैं उसे और उसके भाई देवक को भी मार डालूगा और जो भी मेरे द्वेषी हैं, सबको मारूँगा !' सबको कंस स्वयं मारेगा; पर राम-कृष्ण—उन्हें वह दूसरों से मरवाना ही चाहता है। उनके द्वारा देवताओं ने इसकी मृत्यु का विधान किया है—इनके साथ स्वयं उलझने की बात कैसे सोचे यह।

'मेरे परम मित्र अक्रूरजी, आप चिन्ता न करें ! आप तो कुकुर-वंशी हैं। आप पर मेरा पूरा विश्वास है। मैं अपने समस्त शत्रुओं को मार दूँगा। यह पृथ्वी हमारे सम्पूर्ण कण्टकों से रहित हो जायगी। महाशूर मगध-नरेश जरासंध मेरे श्वशुर ही हैं और कपिश्रेष्ठ द्विविद मेरा प्यारा सखा है। शम्बर, भौमासुर, दैत्यराज बाण—ये सब मुझ से मित्रता रखते हैं। इन सबकी सहायता से मैं देवताओं का पक्ष लेनेवाले सभी नरेशों को पराजित करके उनका वध कर दूँगा। इस प्रकार हमारा शासन निष्कण्टक हो जायगा। आप इन बातों को भली प्रकार समझ गये हैं। अब आप शीघ्र राम-कृष्ण को धनुष-यज्ञ तथा इस महोत्सव पर यादव-राजधानी की शोभा देखने के बहाने लिवा लायें !' कंस ने बिना रुके अपनी बात पूरी कर दी।

'राजन्, अपने दुर्भाग्य को दूर करने के लिये आपने बहुत विचारपूर्ण योजना बनायी है। वैसे तो सफलता और असफलता में मनको सम रखकर ही उद्योग करना उचित है; क्योंकि फल तो दैवेच्छा पर निर्भर है। भाग्य का मारा पुरुष बड़े-बड़े मनोरथ करता है और फिर हर्ष या शोक से युक्त होता है। हो चाहे जो, मैं आपकी आज्ञा का पालन करूँगा !' अक्रूरजी ने कोई उत्साह नहीं दिखाया। उनका स्वर तो ऐसा है, जैसे कंस की विजय अथवा मृत्यु—किसी से उनका सम्पर्क ही नहीं। कंस को समझाना तो व्यर्थ ही है, जो दैवेच्छा हो—हो जाय। उन्होंने केवल राम-श्याम को बुला-लाना भर स्वीकार किया है।

'दैवेच्छा !' क्या रखा है इस दैवेच्छा में। कंस इस दैवेच्छा—देवताओं की इच्छा और विधान को ही बदलने के प्रयत्न में तो है। उसे पूरा विश्वास है—वह सफल होगा। यह अक्रूर—यह बुड्ढा उसे उपदेश देने चला है; किंतु यह अवसर नहीं है रोष प्रकट करने का। यह उन दोनों को लाना तो स्वीकार करता ही है—शेष बातें फिर। इस समय इस अक्रूर से काम निकालना है।

'आप उन दोनों को बस, ले आयें ! फिर तो मैं शेष बातें स्वयं समझ लूँगा ! सभी गोपों को आना चाहिये और उन दोनों को आप साथ ही लायें !' कंस ने एक बार फिर अपनी बात स्पष्ट कर दी और आज तो वह अक्रूर को द्वार तक पहुँचाने आया है। अक्रूरजी को कहाँ इस सम्मान में उत्साह प्राप्त हो रहा है। वे तो मस्तक झुकाये, कुछ सोचते उठे, सोचते-से द्वार तक आये और कंस को अभिवादन करके गम्भीरता से कुछ सोचते ही अपने रथ में बैठ गये भवन जाने के लिये। यह जो महान् कार्य उन्होंने अपने ऊपर ले लिया है—उसके प्रत्येक अङ्ग पर उन्हें विचार कर लेना है। आज रात में ही सोच लेना है।

× × × ×

'वे सर्वेश्वर, सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र, सर्वसमर्थ परम प्रभु !' अक्रूरजी ने बहुत सोचा, रात्रिभर वे जगते रहे हैं। रात्रिभर उनका अन्तर्द्वन्द्व चलता रहा है। 'क्या करना चाहिये ?' कंस अत्यन्त क्रूर है और अब तो उसका नग्न पैशाचिक रूप स्पष्ट हो गया है। क्या अर्थ है उसके इन मनोरथों का। यह क्षुद्र कीट—यह भी अपने को कुछ मान बैठा है।

'मुझे उन सर्वेश्वर के दर्शन होंगे ! मैंने ऐसा कौन-सा परम पुण्य या महान् तप किया है जन्मान्तर में ? पता नहीं कौन-सा महादान उत्तम पात्र को दिया है ! आज मैं उन केशव को देखूँगा !' अक्रूरजी ब्राह्ममुहूर्त में तो नित्य ही उठ जाते हैं। आज निद्रा-त्याग का तो प्रश्न ही नहीं था, शय्या ही त्यागनी थी। कंस ने अपना स्वर्ण-रथ कल ही भेज दिया द्वार पर। नित्य-कर्म से निवृत्त होकर, भगवान् भास्कर को अर्घ्य निवेदित करके अक्रूरजी रथ पर बैठे। हाथ में रथ की रश्मि है, पर मन भावनाओं से भर गया है। शरीर का रोम-रोम उठ खड़ा हुआ है। कंस—अब कंसका स्मरण भी कहाँ है उनके चित्त में। उन्होंने सुना है कि साक्षात् उनके अनन्तशायी प्रभु ने धरा का भार दूर

करने के लिये अवतार ग्रहण किया है। आज उनके प्रत्यक्ष दर्शन होने हैं नन्दव्रज में। अक्रूरजी तो इस भावना से ही परम भक्ति में निमग्न हो गये हैं। उनके नेत्र वर्षा कर रहे हैं। रथ चलता भी है या नहीं, अश्व कहाँ जा रहे हैं, वे तृण चरने में लगे हैं या चल रहे हैं—कौन इधर अब ध्यान दे।

'ना, मेरे-जैसे विषयी पामर प्राणी के लिये उन उत्तमश्लोक का दर्शन तो वैसे ही दुर्लभ है, जैसे शूद्र के लिये पवित्र वेद मन्त्रों का पाठ। भला, उन सच्चिदानन्दघन को कहीं अन्वेषण से पाया जा सकता है।' अपनी ओर विचार करते ही हृदय हाहाकार करने लगता है। ये चर्मचक्षु बिना उस दयामय की दया के कैसे उसका साक्षात्कार कर सकते हैं। वह नन्दव्रज में है—पर कहाँ नहीं है! अपने में इतना प्रेम कहाँ कि उसकी वह दिव्य झाँकी मिले।

'नहीं, नहीं—मुझ अधम को भी आज उन अच्युत के दर्शन होंगे ही। इस कालरूपी नदी में प्रवाह-परवश तैरते तिनकों-से जीव—कभी कोई कदाचित् किनारे आ ही लगता है। आज मेरे सम्पूर्ण अमङ्गल नष्ट हो गये। मेरा संसार में जन्म लेना सफल हुआ। योगिजन समाधि के द्वारा जिन श्रीचरणों का ध्यान करते हैं, आज मैं उन्हीं चरणों में प्रणाम करूँगा!' वे अनन्त करुणार्णव—उनकी असीम अनुकम्पा—उसका स्मरण होते ही अन्तर में उल्लास का स्रोत फूट पड़ता है।

'कंस ने मुझपर बड़ी कृपा की। आज उसी के अनुग्रह से मैं पृथ्वी पर अपनी इच्छा से ही अवतीर्ण उन श्रीहरि के पादपद्मों का दर्शन करूँगा, जिन चरणों की नखमणि-चन्द्रिका के चिन्तन से ही अब से पहले के समस्त महापुरुष इस संसार-सागर से पार हो गये हैं!

'मेरा कितना सौभाग्य है—आज मैं उन श्रीचरणों का दर्शन करूँगा, जिनकी अगाध श्रद्धा से भगवान् ब्रह्मा पूजा करते है, भगवान् शंकर जिन्हें चित्त से क्षणभर भी दूर नहीं करते और भगवती लक्ष्मी निरन्तर जिन्हें अपने कोमल करों से लालित करती रहती हैं। समस्त मुनिजन, सम्पूर्ण भक्तजनों के परमाराध्य उन श्रीचरणों का मैं दर्शन करूँगा, जो अपने सखाओं के साथ वन में गायों को चराते हुए घूमते हैं और गोपियाँ जिन्हें हृदय पर धारण करके अपने वक्ष में लगे कुङ्कुम से अनुरञ्जित कर देती हैं!

'कहीं वह गोपाल वन में आया न हो गोचारण के लिये! अक्रूरजी इधर-उधर देखने लगे चौंककर। गायें तो नहीं हैं, पर ये मृगों के यूथ अवश्य दाहिनी ओर हैं—बड़ा शुभ शकुन है। ये मृग मेरी दाहिनी ओर से जा रहे हैं; अवश्य मैं उन शोभाधाम का दर्शन पाऊँगा। वे सुन्दर कपोल, मनोहर नासिका, हँसते हुए-से परम करुणापूर्ण पद्म-पलाश-लोचन—आज मेरे नेत्र घुँघराली अलकों से घिरे श्रीमुकुन्द के उस लावण्य-धाम मुख की अपूर्व छटा का अवलोकन करके धन्य होंगे।

'सर्वसमर्थ प्रभु पृथ्वी का भार हरण करने के लिये अपनी इच्छा से ही इस समय अवतीर्ण हुए हैं। उनका वह लावण्य-धाम श्रीमुख—आज मुझे नेत्र पाने का परम लाभ मिलेगा।'

अक्रूरजी का हृदय अपने आराध्य श्रीनारायण के अवतार-ग्रहण की भावना से विभोर हो गया। वे उन प्रभु के परमैश्वर्य का चिन्तन करके भाव-क्षुब्ध होने लगे—'जो अपने तटस्थ निरीक्षण से ही असत् जगत् को सत्ताहीन होने पर भी सत् सा बनाये हैं, जो अपने तेज से ही तम एवं भेद के भ्रम को निरस्त किये हैं, जो अपनी माया से अपने में ही निर्मित नाना जीवों में उनके प्राण, इन्द्रिय एवं बुद्धि आदि की वृत्तियों के अन्तर्यामीरूप से साक्षी हैं, जिनकी मङ्गलमय वाणी ही वेद है, जो नाना प्रकार के मिश्रित गुणों के अनुसार होनेवाले जन्म एवं कर्म का विधान करके जगत् को प्राणमय (चेष्टायुक्त), पोषणमय एवं पवित्र करती है और जिस वाणी से हीन पुरुष शवके समान मृतक-जैसा है, वे ही परम प्रभु अपने बनाये नियमों की रक्षा के लिये, देवताओं के कल्याण के लिये निश्चय ही यदुवंश में अवतीर्ण हुए हैं। वे अपने यश का विस्तार करते इस समय व्रज में हैं और देवता उनके निःशेष मङ्गलमय चरित्र का गान करते हैं। निश्चय आज मैं उन महत्पुरुषों की परमगतिरूप परम गुरु एवं त्रिभुवन-सुन्दर नयनानन्द स्वरूप के दर्शन करूँगा! मैं भगवती लक्ष्मी के भी परमेप्सित रूप को धारण किये प्रभु को आज देखूँगा! आज मेरे सौभाग्य का उदय हुआ!

'निश्चय मैं उन सर्वेश्वरेश्वर के भुवन-मोहन स्वरूप का दर्शन करूँगा!' अक्रूरजी का हृदय स्थिर हुआ और तब वे सोचने लगे कि क्या करेंगे वे! कैसे उस त्रैलोक्य-सुन्दर को देखेंगे—'मैं झटपट रथ से कूद पड़ूँगा और अपने मूर्तिमान् भाग्य की उपलब्धि के लिये उन वनवासी गोपों के परम मित्र प्रभु परम-पुरुष के उन्हीं श्रीचरणों में प्रणाम करूँगा, जिन चरणों को आत्मोपलब्धि के लिये योगिजन स्थिर बुद्धि से निरन्तर हृदय में धारण करते हैं।'

'वे परम मङ्गलमय—मैं उनके पाद-पद्मों में पड़ जाऊँगा, तब अवश्य मेरे सिरपर अपने वे कमल-कर रक्खेंगे, जो कालरूपी सर्प के भय से उद्विग्न होकर शरण ढूँढ़नेवाले पुरुषों को सदा अभय देनेवाले हैं। मैं कितना भाग्यशाली हूँ! मैं आज उन्हीं चरणों को प्रणाम करूँगा, जिनमें अपनी अर्चा के उपहार निवेदित करके महर्षि विश्वामित्र त्रिभुवन की सृष्टि करने की शक्ति पा गये और दैत्यराज बलि ने इन्द्रत्व का वरदान पाया। ये श्रीचरण—व्रज-रमणियों के रासजनित श्रम को जो अपनी मादक सुरभि एवं स्पर्श मात्र से दूर कर देते हैं—मैं आज उन्हीं चरणों में प्रणाम कर सकूँगा।

'कंस ने मुझे दूत बनाकर भेजा है, पर वे अच्युत मुझे शत्रु-बुद्धि से कभी नहीं देखेंगे। उन सर्वान्तर्यामी से छिपा क्या है। वे भुवनद्रष्टा—वे परम क्षेत्रज्ञ अपने निर्मलचक्षु से बाहर और चित्त के भीतर भी समस्त प्राणियों की समस्त चेष्टाओं को देखते ही रहते हैं।' जो अन्तर्यामी है, क्षेत्रज्ञ है, भुवनद्रष्टा है, वह क्या अक्रूरजी के भाव नहीं जानता? वह कंस के दूत की भाँति इनसे कैसे मिलेगा! कैसे मिलेगा वह? अक्रूरजी की भावना ने एक रूप स्थिर कर लिया है—

'प्रणाम करके मैं प्रभु के श्रीचरणों के समीप अञ्जलि बाँधकर बैठ जाऊँगा, तब वे मन्द-स्मितयुक्त करुणार्द्र दृष्टि से मेरी ओर देखेंगे। मेरे जन्म-जन्मान्तर के समस्त पाप तत्काल नष्ट हो जायँगे और मैं उस दृष्टि से ही शङ्का—भयहीन परमानन्द को प्राप्त कर लूँगा।' वे दयामय, भला, वे केवल देखकर ही कैसे रह सकते हैं—'मैं उनका सुहृद् हूँ, जाति का हूँ और वे ही मेरे एकमात्र देवता हैं! वे तो मुझे अपनी दोनों विशाल भुजाओं से उठाकर हृदय से लगा लेंगे! मेरा कर्मबन्धन दूर--दूर हो जायगा और मेरा चित्त तो क्या, यह शरीर भी उनके स्पर्श से तीर्थ हो जायगा, दूसरे भी मुझे स्पर्श करके पवित्र हो जायँ--मैं इतना पावन हो जाऊँगा।'

'मैं उन परम पुरुष का आलिङ्गन प्राप्तकर सिर झुका लूँगा, हाथ जोड़ लूँगा और तब वे उत्तमश्लोक कहेंगे—'अक्रूर!' ओह, वे मेरा नाम लेकर मुझे पुकारेंगे! जिनके नाम निखिल सुर, मुनि, महर्षि लेते हैं--वे मेरा नाम लेंगे आज! मैं तो उसी क्षण सम्पूर्ण जन्मधारियों में महान् हो जाऊँगा! उस जन्म को धिक्कार, जिसे उन लीलामय का आदर न प्राप्त हुआ।'

'उनका न तो कोई प्रिय है, न सुहृद्। न उनका कोई शत्रु है न उपेक्षणीय।' उनके लिये तो सब एक-से हैं, तब क्यों वे अक्रूर का इतना स्वागत करेंगे —' ऐसा होने पर भी जैसे कल्पवृक्ष अपने पास आये व्यक्ति की कामना पूर्ण करता है, वैसे ही वे भक्तवत्सल भी भक्त का पालन करते हैं। उन्हीं को क्यों, मैं प्रणाम करूँगा उनके बड़े भाई को भी और वे यदुश्रेष्ठ मुझ विनीत को सस्मित-मुख आलिङ्गन करेंगे। मेरा हाथ पकड़कर वे मुझे भवन में ले जायँगे और भली प्रकार मेरा सत्कार करेंगे। सत्कार करके तब कंस उनके स्वजनों से कैसा व्यवहार करता है, वे मुझसे पूछेंगे।'

अक्रूरजी निमग्न हैं अपनी भावधारा में। कभी-कभी निद्रा से जगे की भाँति चौंकते हैं और फिर मग्न हो जाते हैं। जैसे वे गोकुल पहुँच गये हैं। राम-श्याम को प्रणाम कर रहे हैं। जैसे वे हृदय से लगा रहे हैं, स्वागत कर रहे हैं। प्रत्यक्ष की भाँति सब दृश्य मानस नेत्रों के सम्मुख आ गये हैं। नेत्रों से अश्रु चल रहे हैं। शरीर पुलकित है, अब समय का क्या पता लगे, किसे लगे?

'व्रज--यह व्रज आया! सहस्र-सहस्र गायों के खुरों के चिह्नों से भरा यह वन-पथ!' अक्रूरजी को बाह्य चेतना आयी और दृष्टि-पथ पर गयी। वे पथ को ध्यान से देखने लगे रथ पर से ही—'इधर से ही वे परमाराध्य गये होंगे।'

"बालकों के ये चरण-चिह्न—अरे, ये किसके चरण-चिह्न हैं ?' भला, ये चिह्न भी पहचान की अपेक्षा करते हैं। ध्वज, वज्र, अङ्कुश, कमल आदि से सुचिह्नित किनके श्रीचरण हैं ? अक्रूरजी तो अपने महिमामय आराध्य के पादतल का ही निरन्तर चिन्तन करनेवाले हैं, इनसे ये चरण-चिह्न छिप सकते हैं। 'ये मेरे आराध्य के चरण-चिह्न हैं ! यह उनकी पद-रज है !' जैसे रथ में से लुढ़क गये हों—मार्ग में लोटने लगे, धूलि मलने लगे अपने अङ्ग में वहाँ की।

ये वृद्ध उज्ज्वल-केश--परम बुद्धिमान् मथुरा-नरेश के दानाध्यक्ष—ये तो बहुत गम्भीर प्रकृति के हैं। इनके ये बहुमूल्य रत्नाभरण, कौशेय-वस्त्र--पर ये तो जैसे उन्मत्त हो गये हैं। स्वर्ण-रथ खड़ा है, अश्व अपने सारथि को आश्चर्य से देख रहे हैं और ये—ये तो लोट रहे हैं धूलि में। धूलि में लोटते जाते हैं, धूलि अङ्गों में मलते जाते हैं और रोते जा रहे हैं। बच्चों की भाति फूट-फूटकर रो रहे हैं ये तो।

व्रज में जाना है, राजप्रतिनिधि होकर जाना है और यह धूलि-धूसरित रूप ? वस्त्र, आभरण, केश, शरीर--मुख सब अद्भुत हो उठा है। कोई धूलि-स्नान कर ले तो क्या रूप होगा उसका ? कन्हाई के पास जाना है न, उसे प्रसन्न करना है, उसका कृपा-प्रसाद चाहिये और उसे तो यह व्रजरज अत्यन्त प्रिय है। सखाओं के साथ नित्य इसी रज में तो वह खेलता है, लोट-पोट होता है और गायों के चरणों से उड़कर यह रज जब उसकी अलकों, वनमाला, भाल, भ्रूमण्डल आदि को भूषित कर देती है—कनूँ की वह धूसरित छटा जिन नेत्रों ने देखी है, धन्य हैं वे नयन।

अक्रूरजी प्रातः मथुरा से चले हैं। उनके रथ के अश्व--कंस की अश्वशाला के ये सर्वोत्तम सुशिक्षित अश्व अपनी गति में वायु को भी पीछे छोड़ दें; ये अश्व न होते—अक्रूरजी क्या आज ही इस गति से नन्दग्राम पहुँच पाते। उन्होंने रथ को हाँका ही कहाँ, कभी रश्मि खींचे ध्यान-सा करते रहे, कभी मूर्ति बने बैठे रहे और कभी रथ से कूदकर भूमि पर ही घण्टों लोटते रहे। उन्होंने कहीं विश्राम नहीं किया, मध्याह्न-भोजन भी नहीं। आज तो दिन में जल भी नहीं पिया उन्होंने। जल ही पी सकते, शरीर का इतना ही ध्यान होता—मथुरा से नन्दगाँव है कितनी दूर ! प्रातः चले थे वे और अब तो भगवान् भुवन-भास्कर पश्चिम में विदा भी हो रहे हैं—उन्हें तो इन सुशिक्षित अश्वों ने किसी प्रकार पहुँचा दिया है। अब भी मध्य-मध्य में एकाध क्षण को जो उन्हें चलने का स्मरण आया है, रथ-रश्मि ने उतने ही क्षण अश्वों को आगे बढ़ने का संकेत दिया है। बिचारे अश्व—वे तो संकेत की प्रतीक्षा ही करते रहे हैं।

× × × ×

गोदोहन का पुण्यकाल—इस समय व्रज में किसे अवकाश है कि देखे कि कौन कहाँ से आ रहा है। यह कंस का रथ—पर गोपों के वृषभ-रथ इससे कहाँ कम हैं, जो इस रथ में उन्हें कुतूहल जान पड़े। अक्रूरजी सीधे व्रजराज के गोष्ठ-द्वार पर ही रथ ले आये हैं। वे रहे सम्मुख राम-श्याम। यह दाऊ और कन्हाई की दिव्य छटा, आज इस समय ये स्वर्णगौर नीलकान्त दोनों भाई ही हैं इधर द्वार के सम्मुख। गोदोहन हो चुका, भद्र तो बाबा के साथ घर में भी चला गया। ये नीलाम्बर-पीताम्बरधारी, कमलदल-लोचन दोनों भाई—ये तो ऐसा लगता है कि किसी की प्रतीक्षा में ही यहाँ रुके हैं।

प्रतीक्षा में ही तो हैं ये दोनों। प्रातः वह महाघोटक केशी मरा था, कन्हैया गोचारण को चला और पता नहीं क्यों एकबार फिर मुड़ पड़ा था उस विशाल घोड़े को देखने के लिये उसी समय देवर्षि आ पहुँचे और उन्होंने तो पूरी प्रार्थना ही कर ली—पता नहीं क्या-क्या कहा था उन्होंने—'आज ही अक्रूरजी आयेंगे, आप दोनों भाई मथुरा पधारेंगे। बड़ा अच्छा किया जो आपने इस विकराल घोड़े का रूप रखनेवाले दैत्य को मार दिया। इसके तो हिनहिनाते ही भय से सारे देवता स्वर्ग छोड़कर भाग खड़े होते थे। अब परसों आप चाणूर, मुष्टिक एवं दूसरे कंस के मल्लों को, कुवलयापीड़ हाथी को भी अग्रज को साथ लेकर मारेंगे और आपके द्वारा कंस को भी परसों ही मैं मारा गया देखूँगा !' देवर्षि सर्वज्ञ हैं, ज्यौतिष के परमाचार्य हैं, उन्होंने तो पूरी जन्मकुण्डली ही सुना दी--

किसे-किसे मारना है, क्या करना है—यह सूचना देना ही जैसे उनका उद्देश्य रहा हो। देवर्षि ने कहा है तो बात ठीक ही होनी चाहिये। दोनों भाई प्रतीक्षा ही तो कर रहे हैं। जो इस कन्हैया के दर्शनों के लिये प्रातः से परमोत्सुक है, उसकी यह प्रतीक्षा न करेगा ?—यह तो सदा से—नित्य ही प्रतीक्षा करता है—'कोई आये ! कोई पुकारे ! किसी को उठाकर हृदय से लगाने का अवसर मिले !'

'ये हैं राम-श्याम ! अपने तेज से दिशाओं को आलोकित करते, ये जगत्पत्ति जगत् के कल्याण के लिये अपने अंशके साथ धरापर पधारे हैं। ये ही हैं परम पुरुष—जगत् के परम कारण ! मेरे आराध्य !' श्रीअक्रूरजी ने रश्मि फेंक दी हाथों से, रथ से कूदे और दण्ड की भाँति दोनों भाइयों के श्रीचरणों के पास गिर पड़े। साष्टाङ्ग प्रणिपात किया उन्होंने।

'यह श्वफल्क-पुत्र, यादव अक्रूर श्रीचरणों में प्रणाम करता है !' कहना तो यह चाहिये था; किंतु नियम के लिये भी कुछ नियम होता है न। प्रेम-विभोर अक्रूरजी का गद्गद् कण्ठ—वे क्या बोलने में समर्थ हैं ? उनके नेत्र की धारा से भूमि आर्द्र हो रही है। सम्पूर्ण शरीर पुष्पित कदम्ब हो रहा है ! वे तो पड़े हैं भूमि में।

'कौन है यह ? धूलि से भरा सर्वाङ्ग, रोम-रोम खड़े, उज्ज्वल केश, वृद्ध शरीर—इस प्रकार कौन यह सहसा चरणों के पास मस्तक रखकर भूमि पर लेट गया है ?' दाऊ या कन्हैया ने तो इस प्रकार का कोई भाव नहीं प्रकट किया। जैसे यह चिर परिचित है, यह तो होना ही चाहिये था। उठा रहा है कन्हैया, अपने कोमल करों से झुककर उठा रहा है इन वृद्ध को बलपूर्वक। दोनों विशाल भुजाएँ अक्रूर को उठाने में लगी हैं। श्याम जिसे उठाना चाहे—अक्रूरजी को उठाकर लिपट गया है यह उनसे। दोनों बाहुओं में इसने उन्हें भर लिया है।

कन्हैया के बाहु तनिक ढीले हुए और अक्रूरजी ने दाऊ को अभिवादन किया। अब उन्हें राम ने भुजाओं में भर लिया है। अच्छा, यह दाऊ तो इन्हें भली प्रकार पहिचानता है। यह तो हाथ पकड़कर इन्हें गृह की ओर ले चला है। कन्हैया तो साथ चलेगा ही।

'अक्रूरजी !' मोहन के सम्बोधन में जो अनुराग है—यह तो सम्बोधन करके ही रह गया। इस समय कण्ठ भाव-क्षुब्ध है। अभी कुछ कहा नहीं जा सकेगा। अक्रूरजी तो केवल देख रहे हैं। उनका मन, वाणी, समस्त चेतना—'ओह, इतनी अनुकम्पा है प्रभु की ! ये भक्तवाञ्छा-कल्पतरु—मैं धन्य हो गया !' वे अपने आप में रहे नहीं हैं।

× × × ×

'चाचा, आपने बड़ी कृपा की !' बाबा अभी सायं-गो-सेवा में लगे हैं तो क्या हुआ, राम-श्याम क्या अतिथि-सत्कार में विलम्ब होने देंगे। मोहन ने भवन में बैठाया उत्तम आसन पर अक्रूरजी को। अब तो रत्न-थाल में भरे यमुना-जल से दोनों भाई उनके चरण धोने बैठ गये हैं। जिनके श्रीचरण भगवान् विश्वनाथ सदा हृदय में धारण करते हैं—वे अपने कोमल करों से चरण धोयेंगे ! अक्रूरजी—वे अतिथि हैं, उनकी पूजा-सत्कार होना ही चाहिये। वे चाहें-न-चाहें, यह हठी श्यामसुन्दर माननेवाला है ? सम्भवतः भीतर से व्रजेश्वरी बालकों को प्रोत्साहित कर रही हैं। अक्रूरजी मनाकर भी कैसे सकते हैं। इस समय उन्हें कहाँ पता है अपने शरीर का। उन्होंने तो गोष्ठ में प्रणाम किया—इन नीलोज्ज्वल प्रभु ने उठाया उन्हें—बस ! तब से ही उनका शरीर तो यन्त्र हो गया है। ये दोनों भाई हाथ पकड़कर ले आये हैं, बैठा दिया है; जो जी में आता है—करते जा रहे हैं। अक्रूरजी तो किसी दूसरे ही आवलोक में है।

भली प्रकार धीरे-धीरे दबा-दबाकर चरण धोये कन्हैया और दाऊ ने अपने सुकुमार करों से अतिथि के। सवत्सा कपिला गौ निवेदित की और मधुपर्क दिया। मधुपर्क—जब ये सम्मान्य अतिथि स्वयं नहीं ग्रहण करते, तब कनूँ ने अपने करों से उनके मुख में यह मधु-मिश्रित दही लगा दिया है। इन करों से इस प्रकार मधुपर्क मिले—ऐसा भाग्यशाली आतिथ्य क्या किसी को सहज प्राप्त होता है ?

'बहुत श्रान्त हो गये हैं आप !' जैसे मधुपर्क दिया गया, वैसे ही आचमन भी सम्पन्न हुआ। दोनों भाइयों के नील-पीत उत्तरीय अतिथि के अङ्गों की धूलि को कब के स्वच्छ कर चुके हैं। अब तो चरण दबाये जा रहे हैं। मैया भीतर चली गयी है सम्भवतः द्वार के समीप से। उसे भोजन की व्यवस्था स्वयं देख लेनी है।

'आप भोजन करें अब !' आज दिन भर के पश्चात् अक्रूरजी ने यहीं मधुपर्क और जल लिया है। श्रीकृष्णचन्द्र हाथ पकड़कर आग्रह कर रहे हैं। राम ने यह विविध व्यञ्जनों का थाल लेकर सम्मुख रख दिया है। अब तो भोजन करना है, ये अमृत-पूर व्यञ्जन—जब अतिथि बनकर आये हैं, मनमें सत्कार पाने का भाव ले आये, प्रसाद कैसे प्राप्त हो ! मन-ही-मन भोग लगाना है आराध्य को।

भोजन हुआ, आचमन के अनन्तर दाऊ ने ताम्बूल दिया, चन्दन लगाया, इत्र मला—पुष्पमाला पहिनायी—अतिथि का पूजन विधिपूर्वक करना चाहिये न। अच्छा, अब आये ये श्रीनन्द-राय ! भोजन करने बैठने पर ता अक्रूरजी सावधान हो ही गये हैं। बाह्य चेतना लौट ही आयी है। उठकर देखते ही बढ़े, अभिवादन करना चाहते थे दोनों एक दूसरे का और परस्पर अङ्कमाल देकर एक हो रहे।

× × × ×

कितने सीधे, कितने सहृदय, कितने उदार हैं श्रीनन्दराय !' अक्रूरजी तो व्रजेश्वर के भाव पर ही विस्मित हैं। बहुत सीधे-सरल लोग मिले हैं उन्हें; पर ये श्रीव्रजराज—जिन्हें सर्वेश्वर ने पिता का गौरव दिया है, उनकी तुलना कहाँ मिल सकती है।

'कंस बड़ा क्रूर है ! अरे जिस दुष्ट ने क्रन्दन करती अपनी बहिन के नवजात शिशुओं का वध कर दिया, वह अपने बन्धु-बान्धव और प्रजाजनों से कैसे व्यवहार करता होगा, यह समझा जा सकता है। मैं किस मुख से आप से कुशल पूँछूँ ! रक्त-लोलुप आखेट के कुत्तों के मध्य में दीन पशुओं की भाँति हमारे सभी बान्धव पड़े हैं !' श्रीव्रजेश के नेत्रों से अश्रु की झड़ी लग गयी यह कहते ही। उन्होंने यह भी नहीं पूछा कि अक्रूरजी कैसे पधारे हैं। ये कंस के दानाध्यक्ष हैं, यह तो वे जानते ही हैं। द्वार पर कंस का स्वर्ण-रथ देख आये हैं—यह समझने का कारण ही नहीं कि अक्रूरजी नरेश से उत्पीड़ित है। ये कंस के लोगों में और कंस ने व्रजराज के प्राणाधिक प्रिय श्यामसुन्दर को मारने के लिये कितने प्रयत्न किये—कहाँ स्मरण करते हैं यह सब सहज सुहृद् ये श्रीनन्दराय। ये तो इस प्रकार उन्मुक्त हृदय से बोल रहे हैं, जैसे अपने किसी परम स्नेही के सम्मुख हों। इनका मिलना, इनका स्वागत—सभी तो यही बता रहा है कि ये अक्रूरजी को श्रीवसुदेवजी की भाँति ही अपना परम बन्धु ही मान चुके हैं। इनके सरल हृदय में किसी के प्रति दुराव भी रह सकेगा—ना, ऐसा तो सम्भव ही नहीं।

'ये बहुत थक गये जान पड़ते हैं। मेरे बठने से इन्हें संकोच होगा ! बालकों के प्रति इनका कितना स्नेह है ! बालकों ने आतिथ्य किया है, उनसे कुछ संकोचहीन भी हुए हैं !' बाबा ने थोड़ी देर बैठकर अनुरोध किया कि अक्रूरजी अब विश्राम करें। ये सम्मान्य अतिथि भी तो बार-बार अनुरोध कर रहे हैं कि सब लोग अब भोजन कर लें।

देवर्षि नारद ने बहुत कुछ बता दिया है। ये अक्रूरजी तो आ गये। अब आगे ?' कन्हैया को शीघ्रता है। अतिथि के समीप किसी को रहना ही चाहिये। भोजन करके झटपट यह फिर आगया है यहाँ। 'कंस कैसा व्यवहार करता है हमारे प्रियजनों से ?' इसे यह जानना है !

'चाचाजी, आप यहाँ तक सुखपूर्वक पहुँचे ! आपको कोई कष्ट तो मार्ग में नहीं हुआ ?' श्यामसुन्दर तो आज पूरा गम्भीर बन गया है। यह तो कहता ही जा रहा है—'आपको यहाँ कोई असुविधा तो नहीं ? कोई संकोच न करेंगे ! अच्छा, मथुरा में हमारे बन्धु-बान्धव तथा जाति के लोग कुशलपूर्वक तो हैं ?'

क्या कुशल कहें, अक्रूरजी किसकी कुशल बतायें? नेत्रों से बिन्दु गिर रहे हैं। वाणी की बात नेत्रों ने ही पूरी कर दी। कनूँ को क्या समझने में कठिनाई हो सकती है—'यह कुल-कलङ्क मामा कंस जब तक शरीर में रोग की भाँति अपने यदुवंश में बढ़ा हुआ है, तब तक आपने उन बन्धुजनों की कुशल क्या पूछी जाय, जो उस नृशंस की प्रजा हैं!' इतने क्रूर, शिशु-हन्ता नरेश की प्रजा की कुशल ही कैसी!

कंस की क्रूरता क्या अकारण बढ़ी है, देवर्षि ने अभी प्रातःकाल ही तो बहुत कुछ सूचना दी है। कन्हैया वह सब इतना शीघ्र कैसे भूल जायगा—'मैं ही अपने माता-पिता के कष्ट का कारण हूँ! मेरे ही कारण उनके और पुत्र मारे गये। मेरे ही कारण वे बंदी किये गये हैं!' कमल-मुख तमतमा उठा है। विशाल लोचन विन्दु गिराने लगे हैं। भौंहें और कुटिल हो गयी हैं।

दो क्षण श्यामसुन्दर मौन रहा, नेत्र पोंछ लिये अब इसने और अब तो यह नित्य-प्रसन्न-मुख गम्भीर—बहुत गम्भीर हो गया है। कुछ निश्चय कर लिया है इसने। यह तो गम्भीर स्वर में पूछ रहा है—'आज मेरा सौभाग्य जो आपके दर्शन हुए! मैं तो स्वयं आप से मिलना चाहता था। चाचाजी, आप कैसे पधारे हैं? बिना संकोच के मुझे आज्ञा दें, मैं क्या सेवा करूँ आपकी?' दाऊ भैया भी आ बैठा है समीप, यह तो तनिक ही पीछे आया; पर मोहन जैसे इस समय कुछ दूसरी ही धुन में है। ये नेत्र—ये कमल-लोचन अक्रूर के मुखपर स्थिर हो गये हैं।

'प्रभो!' अक्रूरजी का हृदय पुकार रहा है—यह मर्यादा का बन्धन—कितनी बोझल है यह मर्यादा भी; किंतु अब तो ये श्यामसुन्दर पूछ रहे हैं, इनसे कुछ छिपाया जा सकता है? अक्रूर जी छिपा सकते हैं? 'मुझे कंस ने भेजा है! मैं उसी क्रूर का अधम दूत हूँ! फूट पड़े अक्रूरजी। इन्होंने तो कंस की पूरी मन्त्रणा बता दी।

'बड़ा सुन्दर!' ये दोनों बन्धु तो हँस रहे हैं! ये ही जानें इनके हास्य का अर्थ। 'चाचाजी, आप विश्राम करें! हम प्रातः मथुरा चलेंगे!' अक्रूर को कुछ प्रार्थना करने का अवसर ही कहाँ है, ये तो चले—चले गये व्रजराज के पास! 'प्रभो, तुम्हारी इच्छा!' अब भला, क्या विश्राम करेंगे ये। इन्हें क्या निद्रा आनी है। इच्छा होती है, व्रजराज से जाकर कह दें सब; परंतु—करें क्या, इच्छा ही होकर रह जाती है। उठा नहीं जाता। कंस—ये राम-श्याम—एक ओर भय है तो एक ओर संकोच। बेचारे अक्रूरजी.....

मथुरा-प्रस्थान

"अहो विधातस्तव न क्वचिद् दया संयोज्य मैत्र्या प्रणयेन देहिनः।
तांश्चाकृतार्थान् वियुनङ्क्ष्यपार्थकं विक्रीडितं तेऽर्भकचेष्टितं यथा॥"

—भागवत १०।३९।१९

"बाबा, श्रीअक्रूरजी राजा कंस का निमन्त्रण लेकर आये हैं! चतुर्दशी को वहाँ धनुषयज्ञ है, मल्लक्रीड़ा-महोत्सव है! नरेश ने आपको, सब गोपों को आमन्त्रित किया है। अक्रूरजी कहते हैं कि इस अवसर पर यादव-राजधानी की शोभा देखने के लिये नृपति ने दाऊ भैया को और मुझे विशेषरूप से बुलाया है। हम दोनों को ले जाने के लिये ही अपना रथ देकर अक्रूरजी को भेजा है! हम मथुरा चलेंगे! कैसी है मथुरा? अक्रूर जी हमें लेने आये हैं, हम कल सवेरे ही चलेंगे! सभी जनपदों को नरेश ने आमन्त्रित किया है, सब लोग चलेंगे! तुम सबको चलने को कहो न!' कहैया बाबा की गोद में आ बैठा है। यह कहता ही जा रहा है। मथुरा देखने को बहुत उत्सुक जान पड़ता है।

'मथुरा? कंस के यहाँ?' बाबा चौंके। 'बड़ा क्रूर, बड़ा निर्दय है कंस! राम-श्याम वहाँ जायँगे? लेकिन कंस ने आमन्त्रित किया है। दूसरे जनपद भी आमन्त्रित हैं। सब लोग कंस के आमन्त्रण पर जायँगे ही; यदि यहाँ से न जाय कोई—पहले से अकारण ही वह गोपों से असंतुष्ट है। बार-बार व्रज के विनाश का प्रयत्न करता है, अनेक असुर नायक उसके यहाँ मारे जा चुके। इस समय न जाने पर वह अपना अपमान मानेगा और तब आक्रमण के लिये पूरा बहाना मिल जायगा उसे। गोपों को, मुझे तो तो जाना ही चाहिये; पर राम-कृष्ण? ये बालक क्या करेंगे जाकर वहाँ? क्यों बुलाया है उस क्रूर ने इनको? ये न जायँ—उसने अपना रथ भेजा है इन्हें बुलाने को। हम सब मथुरा में होंगे और इनके न जाने से क्रुद्ध होकर वह यहाँ कोई असुर—असुर-सेना ही भेज दे?' व्रजेश्वर मस्तक झुकाकर गम्भीर चिन्ता में पड़ गये हैं। भाल पर स्वेदकण झलमलाने लगे हैं।

'बाबा, तुम गोपों को कहो न मथुरा चलने के लिये! तुम तो अभी से सोने लगे! सबको बतादो तो सब अभी अपने छकड़े प्रस्तुत करलें। बड़े सवेरे चल देंगे हम सब! मैं मैया को बता दूं, मेरे वस्त्र रक्खेगी वह, और...।' पूरी बात कहने का अवकाश कहाँ है इसे। यह तो भागा भवन में।

'बहुत उत्सुक है कृष्णचन्द्र! इस हठी को यहाँ रोकना सरल नहीं है। बहुत रोयेगा, रो-रोकर अपने विशाल लोचन लाल कर लेगा! क्या ठिकाना इसका—सखाओं को लेकर वन-पथ से भागकर पहुँचने का प्रयत्न करे!' बाबा को अपने इस चपल का भय ही कंस से अधिक है। यह हठ करने लगता है तो फिर क्या किसी की कुछ सुनता है? योगमाया अन्तरिक्ष में मुस्करा रही हैं। बाबा का वात्सल्य—पर भू-देवी का भार—उसका भी ध्यान रखना है उन्हें। बाबा सोचने लगे हैं मथुरा जाने के सम्बन्ध में।

'हम सब साथ रहेंगे! कंस ने तनिक भी कुटिलता की तो उसे पता लग जायगा कि गोप केवल गायें ही चराना नहीं जानते। हम उसे ऐसा पाठ पढ़ा देंगे—' ये तरुण गोप आवेश में आ गये हैं। ये सब-के-सब सशस्त्र साथ रहेंगे और राम-श्याम का कोई अनिष्ट हो जायगा?

श्यामसुन्दर मथुरा देखना चाहता है, भय के कारण वह दुखी किया जाय, रोका जाय—वह देखना चाहता है तो क्यों न देखे ! कंस के सैनिकों से क्या गोप कुछ दुर्बल हैं !

'कन्हाई को मना लेना बहुत कठिन है ! कंस के क्रुद्ध होने का भी भय है यदि बालक न जायँ। अक्रूरजी धर्मात्मा हैं, उनपर बिश्वास किया जा सकता है। बालकों को रथ पर ही जाना चाहिये। रथ का—नरेश के आमन्त्रण का आदर होना चाहिये। मथुरा में सावधान रहना चाहिये ! सब लोग चलें—सभी तरुण गोप अपने अस्त्र-शस्त्र ले लें ! अवसर ही पड़ा तो मथुरा में भी अपने कुछ समर्थक मिल ही जायँगे ! छकड़े जुते ही रहेंगे, आशङ्का होते ही बालकों को यहाँ भेज देना चाहिये।' ये वृद्ध गोप—ये उपनन्दजी भी इसी पक्ष में हैं कि कंस का आमन्त्रण स्वीकार किया जाय !

"छकड़े जोत लिये जायँ ! सम्पूर्ण गोरस, जो इस समय गृहों में हो, साथ ले लिया जाय ! हम कल प्रातःकाल ही मथुरा चलेंगे ! नरेश को देने के लिये अपने-अपने उपहार सब साथ ले लें ! मथुरा में इस बार बहुत बड़ा महोत्सव है ! दूर-दूर के जनपदों के लोग पहुँच रहे हैं। राजा कंस को उपहार देकर हम भी इस महापर्व को देखेंगे ! राम-श्याम चल रहे हैं ! नरेश ने आमन्त्रित किया है सब को ! सब लोगों को कल प्रातः ही प्रस्थान करना है।" श्रीव्रजराज की यह घोषणा पूरे नन्दग्राम में भेरी-रव के साथ घोषित की जा रही है। द्वार-द्वार, गली-गली घोषणा की आवृत्ति हो रही है। 'राम-श्याम जायँगे !' तब सभी को सूचना तो मिल ही जानी चाहिये।

× × × ×

'कन्हैया मथुरा जा रहा है !' मैया इस बात को कैसे मान ले ! 'मथुरा—कंस की मथुरा जायगा श्याम ? सुना है कंस ने श्रीवसुदेव एवं देवकीजी को कारागार से मुक्त कर दिया है बहुत पहले से—क्या होता है इससे; अभी आज ही तो उसका वह असुर घोड़ा—वह महादैत्य केशी आया !' श्रीवसुदेव-देवकी पुनः कारागार में पहुँच गये हैं, यह बात यहाँ कहाँ जानता है कोई।

'गोप साथ जा रहे हैं, दाऊ संग है ! क्या हुआ इससे। मोहन को कैसे नेत्रों से ओट किया जाय !' मैया क्या करे ? कभी उसने श्रीव्रजेश की बात टाली नहीं। कभी कोई आग्रह नहीं किया। आज तो व्रजराज ने बताया है कि राम-श्याम के मथुरा न जाने में अधिक अनिष्ट की आशङ्का है। ऐसा न होता तो व्रजपति क्या इस आयोजन को अनुमति देते ? मैया का हृदय कहता है—'मना कर दे ! कह दे—नीलसुन्दर नहीं जायगा !' प्राण हाहाकार कर रहे हैं और रोते-रोते भी यह पता नहीं क्या-क्या सजाने, एकत्र करने में लगी है।

'यह पद्मगन्धा का नवनीत, यह मिश्री, ये अपूप और मोदक, मैया तो चाहती है कि व्रजराज बैठे रहें रात्रिभर उसके समीप और वह समझा दे ठिकाने से—'श्याम क्या पसंद करता है। कितना मिश्री पड़ेगी नवनीत में ! कितना दूध देना होगा कब-कब। किस प्रकार मनाकर उससे मुख धुलाया जा सकता है, कैसे भोजन करेगा। कौन-से वस्त्राभरण कब किस प्रकार पहिनाये जायगे।' कोई यह सब ठीक-ठीक कर सकता है—मैया को विश्वास नहीं। उसका लाल बड़ा संकोची, बड़ा लज्जाशील है; कोई उसकी मनुहार कर लेगा—मैया का हृदय मानता ही नहीं। वह एक-एक बात बार-बार समझा देना चाहती है। उसका बस चले तो सभी गोपों से वह उसी बात को समझाये। उसकी सामग्रियों का संकलन—उसका समझाना और यह अश्रुधारा—इनमें किसी का ओर-छोर ही नहीं है।

'दाऊ ! अपने छोटे भाई को सम्हाले रहना, बेटा ! इसे छोड़ना मत ! भद्र, कोई कनूँ से लड़ाई-झगड़ा न करे ! तुम साथ ही रहना !' मैया तो आज बालकों तक की मनुहार करने लगी है। ये सब लड़के नगर-दर्शन के कुतूहल में हैं। इन्हें उत्सव देखने की धुन है। ये तो प्रसन्न हो रहे हैं। ये किलक रहे हैं, ये मैया की बात को कहाँ सुनते हैं। 'मथुरा कैसी है ? मल्ल-क्रीड़ा कैसी होगी ?' इन सबों को तो अपनी ही पड़ी है।

'दाऊ जा रहा है ! इसे पिता के दर्शन होंगे !' मैया को इस समय भी यह भूला नहीं है। माता रोहिणी तो कहती हैं—'अपने छोटे भाई के साथ ही रहेगा यह !' वे तो इसे भी यही समझा

चुकी हैं और बालक के 'हाँ' करने का क्या अर्थ। 'श्रीवसुदेवजी इसी बहाने एक बार पुत्र को देख सकेंगे!' मैया को तो यही एक तनिक शान्तिप्रद बात लगती है।

'राम मथुरा जा रहा है!' माता रोहिणी को पतिका स्मरण तो आता है; पर व्रज—इस व्रज को छोड़ने की तो कल्पना भी नहीं उठती उनके मन में। 'राम मथुरा जायगा, पिता के दर्शन होंगे इसे।' माता को यह आकर्षण तनिक भी उत्सुक नहीं कर रहा है। कन्हाई मथुरा जायगा—बड़ी ही आशङ्का की बात है और इसीलिये—केवल इसीलिये दाऊ को उसके साथ जाना ही चाहिये। वे तो व्रजेश एवं गोपों के साथ क्या जाना चाहिये, इस सबके आयोजन में लगी है। उन्हें ही तो ऐसी सभी यात्राओं की व्यवस्था सदा करनी पड़ती है। श्री व्रजरानी को बालकों की सामग्री संकलित करने से अवकाश कहाँ है।

× × ×

'श्यामसुन्दर बड़े भाई के साथ मथुरा जा रहा है!' गोपियों की व्यथा कोई कैसे समझ सकेगा। 'श्यामसुन्दर जा रहा है!' जैसे कोई उनके हृदय में कह रहा है—'यह तो जा रहा है! सदा के लिये जा रहा है!' इन सब के भी पिता, पुत्र, पति भाई, स्वजन हैं—वे सब भी मथुरा जा रहे हैं। उनके लिये भी आशङ्का है। यह बात तो उसके मनमें आये—जिसका कोई सचमुच हो। इनका कहाँ कोई है। कन्हाई को छोड़कर और भी कोई अपना विश्व में है—कहाँ किसी भी क्षण आता है यह इनके मन में! 'कन्हाई जा रहा है! अपना सर्वस्व कन्हाई चला जा रहा है!' व्यथा का पार नहीं है। 'घर के लोग जा रहे हैं, उनके लिये कुछ सामग्री भी प्रस्तुत करनी है।' जिन्हे जाना है, वे अपनी सामग्री स्वयं सजाने में लगे हैं। वे देखते हैं, जानते हैं और स्वयं उनका ही हृदय क्या कम शङ्कित, कम व्यथित है। गोपियाँ—कैसे गयी उनकी रात्रि, वे ही जानती हैं! रोते, कलपते, विलखते लोचनों में क्या निद्रा आ सकती है?

'कहीं रथ चला न जाय? कहीं अक्रूर पहले ही प्रस्थान न कर दें?' ब्राह्म-मुहूर्त नहीं हुआ और ये सबकी सब गोपियाँ आ गयीं—एकत्र होकर आ गयीं ये सब मार्ग के समीप। ये बालिकाएँ—ये बरसाने की कुसुम-कोमल कुमारियाँ इस अँधेरी रजनी में ही पथ के समीप प्रतीक्षा करने आ पहुँचीं? किसी ने रोका नहीं! किसी ने समझाया नहीं! आज कौन किसको रोके? कौन किसे समझाये? पिता, भाई—सभी पुरुष तो मथुरा जाने के लिये छकड़े सजा रहे हैं। उपहार-सामग्री, गोरस और अस्त्र-शस्त्र—साम, दान से कंस की दुष्टता कुण्ठित न हो तो दण्ड भी तो प्रस्तुत रहना चाहिये। गोपियाँ—वृद्धाएँ ती कब की नन्दभवन जा पहुँचीं। जो द्वार तक जा सकती हैं, वे घर में कब रुक सकती थीं। ये बालिकाएँ—ये तो एक ओर से ही एक झाँकी देखने की आशा में नेत्र लगाये बैठी हैं। इनके नेत्र—अजस्र धाराएँ चलाते ये नेत्र—ये तो सब यूथ-की-यूथ एकत्र हो गयी है। विलाप ही तो कर सकती हैं ये स्नेह की पुतलियाँ—

हाय रे सृष्टिकर्ता, तू बड़ा निर्दय है! तुझमें दया का लेश भी नहीं। प्राणियों को प्रम-बन्धन से तू एक करता है और जब वे परस्पर पूर्णतः तृप्त भी नहीं हुए होते, उन्हें पृथक् कर देता है! तेरी क्रीड़ा बालकों की भाँति विचारहीन है! 'काली-काली अलकों से घिरा, सुन्दर कपोल एवं मञ्जुनासिका की अपरूप रूपराशिवाला, समस्त शोक को दूर करनेवाले स्मित से भूषित मोहन के भुवन-मोहन रूप को हमें दिखाकर फिर हम से दूर करता है—बड़ा ही अनुचित कार्य है यह तेरा।' भला, सृष्टिकर्ता क्या करें? जो प्रणय, जो स्नेह इस व्रज में है—वे तो केवल यहाँ चरण-रज की कामना कर सकते हैं। वे इस नित्य-लीला में कुछ कर सकें—कहाँ शक्ति है इतनी उनमें।

'अक्रूर, तेरा नाम ही भर अक्रूर है; पर है तू बड़ा क्रूर! तू तो हमारे नेत्रों के ही परम-धन को अज्ञ की भाँति हरण करने आया है। समस्त सृष्टि-सौन्दर्य जिसके अङ्ग-अङ्ग में है, उस श्याम सुन्दर को अब हम न देख सकेंगी!

'अक्रूर को ही क्यों दोष दिया जाय। यह नन्दनन्दन ही ऐसा है। एक क्षण में ही इसने हमारे सारे स्नेह को तोड़ दिया। घर, स्वजन, पति-पुत्रादि सभी बन्धु-बान्धवों का त्याग करके हम

इसकी दासियाँ हुईं और यह अपने लिये आतुर हम सबों की ओर देखता ही नहीं ! यह तो 'नव-प्रिय' है—मथुरा जाने के लिये कितना उत्सुक हो रहा है।

'मथुरा की स्त्रियाँ धन्य हैं ! आज की रात्रि का प्रभात उनके लिये मङ्गलमय होगा ! निश्चय उनकी इच्छा आज पूर्ण होगी ! वे नगर में प्रविष्ट व्रज-नव-युवराज के स्मित-शोभित श्रीमुख की शोभा को आनन्द-पुलकित होकर अपलक लोचनों से पान कर सकेंगी !'

'वे नगर की स्त्रियाँ—वे नागरिकाएँ ! वे तो बड़ी चतुरा हैं ! मोहन है तो मनस्वी, पर कितना सरल है; वे सब अपने मधुर-मञ्जु वाणी से इसे अपने वश में कर लेंगी और तब भला, हम ग्राम्य कन्याओं की स्मृति क्यों आयेगी इसे ! हमारे लज्जापूर्ण स्मित, हमारी अटपटी चेष्टाएँ भला, उन नागरिकाओं की कहाँ तुलना कर सकती हैं। उनके समीप जाकर फिर श्याम हमारे पास कैसे आ सकता है।

'श्रीकृष्णचन्द्र क्या स्त्रियों के आकर्षण से ही मथुरा रह जायगा ? इसे अपने बन्धु-बान्धवों का स्मरण न आयेगा ? पर मथुरा में ही क्या कम बन्धु-बान्धव हैं ? सुना है गर्गजी ने कहा था कि यह पहले वसुदेवजी के गृह में उत्पन्न हुआ। मथुरा में तो पूरा ही यादव-कुल है।—निश्चय आज दाशार्ह, भोज, अन्धक, वृष्णि, सात्वत आदि समस्त मथुरावासी यादव-कुल के नेत्रों के लिये महोत्सव का दिन होगा ! निखिल गुणों के आधार, शोभा-सिन्धु इस देवकी-पुत्र को वे आज मार्ग में देखेंगे !' मथुरा के लोगों के लिये तो यह देवकी-पुत्र ही है न ! वे इसे अपना लेंगे—अपना कहकर रोक लेंगे ! यही तो सब से बड़ी आशङ्का है।

'पता नहीं किसने ऐसे पुरुष का नाम अक्रूर रखा ! यह तो अत्यन्त क्रूर जान पड़ता है ! देखो न, रंग-ढंग तो ऐसे हैं कि हम सब अत्यन्त दुखी हैं और हमें बिना आश्वासन दिये ही यह हमारे परम प्रिय को ऐसे मार्ग के उस पार ले जायगा, जहाँ हम, जहाँ हमारी गति ही नहीं !'

रोते-बिलखते, क्रन्दन करते कितना समय गया—कौन कह सकता है; किंतु अब तो प्रकाश फैलने लगा ! कितना दारुण, कितना दुःखद है आज का यह प्रकाश ! आज प्रभात न होता—कुछ विलम्ब से होता—हाय ! प्रकाश—अब तो ये छकड़े नन्द-द्वार पर एकत्र होने लगे—'यह निर्दय अक्रूर—यह तो रथ पर पहुँच गया ! यह अपने रथ को सजाने-सम्हालने लगा है स्वयं और ये गोप—ये सब भी तो शीघ्रता कर रहे हैं ! ये क्यों रथ को सजाने में योग दे रहे हैं ? ये सब तो छकड़े लेकर रथ के पीछे चलने को प्रस्तुत भी हो गये ! बड़े दुर्मद हैं ये सब—बड़ी शीघ्रता पड़ी है इन्हें ! हमारा भाग्य ही प्रतिकूल है—ये वृद्ध गोप, नहीं तो ये बुद्धिमान वृद्ध गोप क्या इस प्रकार उपेक्षा कर देते ! ये रोकते नहीं मोहन को मथुरा जाने से !

'कोई न रोके, हम सब स्वयं चलकर श्याम को रोकेंगी ! देखेंगी कि कैसे वह हमारी उपेक्षा करके चला जाता है !' कैसे होगा यह ? यहाँ सब बड़े-बूढ़े हैं, इनके सम्मुख कैसे बोला जा सकेगा ! आज एकान्त मिलने की आशा तो है नहीं ! 'ये बड़े-बूढ़े क्या कर लेंगे !' जब श्याम ही चला जायगा—ऐसी लज्जा, ऐसा संकोच किस काम का ?

'श्याम—मोहन के बिना तो हमें आधा निमेष बिताना भी कठिन हो जाता है और अब वह जा रहा है ! भाग्य ने हम दुखियों का सम्पूर्ण सौख्य नष्ट कर दिया। नील-सुन्दर—नील-सुन्दर जा रहा है, जिसके अनुराग-ललित स्मित, कोमल वचन, रुचिर क्रीड़ा, प्रेमावलोकन, सुधा-स्पर्श आदि में हम रास-गोष्ठी में पूरी रात्रि क्षण के समान व्यतीत कर देती हैं; सखियो, उसी श्रीकृष्णचन्द्र के बिना हम वियोग के घोर अन्धकार-सागर को कैसे पार कर सकेंगी ! जो दिनान्त में नित्य अपने बड़े भाई के साथ, सखाओं से घिरा वनसे ग्राममें आता है और गोखुरों से उड़ी रजसे धूसर अलकें, वक्षपर लहराती भुवन-मोहन वनमाला, अधरों पर वंशी रक्खे अपने स्मितपूर्ण कटाक्ष-निरीक्षण से हमारे चित्तका हरण करता है, उसके बिना हमारी क्या दशा होगी !

'क्या दशा होगी हमारी ?' श्याम चला जा रहा है ! हृदय पुकार-पुकारकर कहता है—वह अब जा रहा है ! अब कैसी लज्जा, कहाँ शरीर की सुधि ! 'गोविन्द ! दामोदर ! माधव ! श्यामसुन्दर !' ये सब तो क्रन्दन करने लगी हैं। उच्च स्वर से विलख रही हैं।

× × × ×

महर्षि शाण्डिल्य—ये द्विज-वृन्द—भगवती पूर्णमासी, आज तो यह वीतराग समाज भी व्याकुल हो रहा है। महर्षि का मन्त्र-पाठ, विप्रों के आशीर्वाद—गद्गद वाणी आज क्या यह सब स्पष्ट होने देती है। भगवती पूर्णमासी ने तो भर लिया अङ्क में मोहन को और इनके कम्पित कर अलकों पर घूम गये। आज भगवती बोल नहीं पा रही हैं।

वृद्ध गोपियाँ—श्याम सभी का है न ! राम-श्याम को सबका चरणवन्दन करना है, सबका आशीर्वाद लेना है। सब—सब तो दोनों को गोद में उठाकर हृदय से दबा लेती हैं और...कौन समर्थ है व्रज की दशा कहने में !

'कामदा ! धम ! प्रमोद !' कन्हैया को आज एक-एक गौ से, एक-एक वृषभ से, एक-एक वत्स से मिलना है ! मिलना तो है इसे शुकों, सारिकाओं, मयूरों, मृगों—पता नहीं किनसे-किनसे। सब-के-सब आ गये हैं द्वार पर। यह जा रहा है—मथुरा जा रहा है। कब आना होगा—कौन कह सकता है। ये कन्हाई के नित्य सहचर—यहाँ तो क्षण भी युग हैं ! पुचकारकर, कण्ठ में बाहु डालकर, थपथपाकर—राम-श्याम सबसे मिल रहे हैं। सबको आश्वासन दे रहे हैं। ये पशु—ये पक्षी, ये कपि—सबकी एक-सी तो दशा है। व्याकुल तो दीखते हैं ये सम्मुख के पादप, ये तुलसी के वीरुध्, ये कुसुम-वल्लरियाँ !

वृद्धा गोपियाँ, सेवक, सेविकाएँ पशु, पक्षी, सभी तो आज व्याकुल हैं। दाऊ-कन्हैया जा रहे हैं। जा रहे हैं दोनों आज—सब से मिलना है। सब को आश्वस्त करना है। सब की व्यवस्था करनी है, कनूँ क्या किसी को भूल सकता है—'मेरी कपिला को नित्य मोदक देना मैया ! मेरे इस मृग को तू स्वयं खिलाना !' यह तो सब की व्यवस्था बता रहा है। सब को मिलकर आश्वस्त कर रहा है।

ये बालिकाएँ—कितनी संतप्त हैं ये सब ! ये तो क्रन्दन कर रही हैं। यह झूमा मयूर-मुकुट, यह फहरा पीताम्बर—'अरे, तुम सब इतना क्यों व्याकुल हो रही हो ! मैं कहाँ मथुरा टिक सकता हूँ। तुमसे पृथक् क्या मैं रह सकूँगा ? बहुत शीघ्र—बहुत शीघ्र लौटूँगा मैं। मुझे तो तुम यहाँ समझो ! वन में तो नित्य ही जाता हूँ न ! बस, मैं ऐसे ही झटपट आ जाऊँगा !' किसी के अश्रु पटुके से पोंछे, किसी के हाथों से ही। सब को ही इसने समझाया, आश्वस्त किया। ये बिचारी भोली बालिकायें—ये कितनी सरल हैं। कनू के कोमल अमृत बचन तो हृदय में हीं पहुँच रहे सीधे। कितनी विह्वल—कितनी विभोर हो उठी हैं सब !

बहुत शीघ्रता की अक्रूरजी ने, आज अब तक उन्होंने स्नान तक नहीं किया। नित्य ब्राह्म-मुहूर्त में ही नियमपूर्वक वे स्नान करके भगवान् नारायण का ध्यान करने लग जाते हैं और आज तो सूर्योदय हो गया। श्री यमुनाजी पर आगे स्नान करेंगे, यह तो पहले ही सोच लिया उन्होंने। गोपों ने भी कम शीघ्रता नहीं की है; किंतु आज व्रज का जीवन प्राण जा रहा है, आज सभी से मिलना है उसे। व्रज का यह अनुराग-वारिधि—इस स्नेह के अकूल पारावार में अक्रूरजी विस्मित, थकित हो रहे हैं। वे रथ पर बैठकर प्रतीक्षा ही तो कर सकते हैं।

ये आये राम-श्याम रथ पर ! अभी भी कहाँ रथ चल सकता है ! ये उपनन्द-पत्नी दौड़ती आ रही हैं ! ये महर्षि शाण्डिल्य, ये भगवती पूर्णमासी और ये व्रजेश्वरी—इस मैया की व्याकुलता, इसकी आर्त दशा, आज इसे अपना पता ही नहीं। यह तो उन्मादिनी-सी हो रही है।

कन्हैया बार-बार रथ से उतरता है भाई के साथ। बार-बार इसे अङ्क में लेकर हृदय से लगाते हैं ये आर्तजन और फिर बैठता है किसी प्रकार। गोप—व्रजेश, सभी समझाने के प्रयत्न में हैं इन सबको। चल रहा है—चल रहा है यह क्रम.....।

'चाचा, तुम किसी प्रकार चलाओ !' भरे लोचन हैं आज इस कमल-दल-लोचन के। यह दशा, यह क्रन्दन, यह विह्वल भाव—यह अब और नहीं देखा जा सकता।

'गोविन्द ! दामोदर ! माधव ! श्यामसुन्दर !' ओह, ये दौड़ी आयीं बालिकायें। ये उन्मादिनियाँ--किसी ने रथ के अश्वों की रश्मि पकड़ी, कुछ रथके पहियों से लिपट गयीं, कुछ मार्ग में अड़ गयी हैं। व्रजेश्वर हैं, वृद्ध गोप हैं, स्वजन हैं--यह सब इस समय कौन देख सकता है। आघात लग सकता है, अश्व कूद सकते हैं--यही होता, मोहन का यह वियोग तो न सहना पड़ता।

'मैं आऊँगा ! बहुत शीघ्र आऊँगा !' कन्हैया एक-एक की मनुहार करने लगा है रथ से उतरकर। एक-एक के अश्रु पोंछने लगा है और इसके लोचन--स्वयं इसके नेत्र जो भर आये हैं ....

'हाय ! मोहन गया ! वह जा रहा है रथ !' कहीं इस प्रकार इन घोड़ों के पीछे दौड़ा जा सकता है। ये वृद्धाएँ, ये विप्र, यह मैया और ये बालिकायें--अस्त-व्यस्त वस्त्र, बिखरे केश, फटे-फटे-से नेत्र—ये सब दौड़ रहे हैं, क्रन्दन कर रहे हैं, पुकार रहे हैं।

'नहीं सुना जा सकेगा यह क्रन्दन ! नहीं देखी जा सकेगी यह विह्वलता।' तीव्र-तीव्र और तीव्र—अक्रूरजी रथ उड़ाये जा रहे हैं। कन्हैया, दाऊ--दोनों पीछे ही देख रहे हैं। झर रहे हैं दृग्। पटुके भींग चुके--किसे स्मरण है शरीर का।

'गया—रथ गया ! वह केतु ! वह रथ की धूलि !' जो जहाँ तक मार्ग में पहुँचा, वहाँ कटे वृक्ष की भाँति गिर गया। 'रथ की धूलि भी नहीं दीखती !' चेतना लुप्त हो गयी। मूर्च्छित हो गये सब-के-सब।

राम-श्याम गये ! रथ गया ! उसके पीछे छकड़े गये, गोप गये, बालक गये। कौन गिने—कौन-कौन गये, कौन रहा। व्रज में रहा कौन ? जीवन चला गया— अब यह व्रज की विरह-व्यथित—प्रखर ताप-संतप्त—दावाग्नि-प्रज्वलित-सी भूमि—

कल्प-लतिकाएँ करीर की कँटीली झाड़ियाँ दीखती हैं ! सुरपादप जिनकी स्पर्धा के भी योग्य नहीं था, वे फलभार से झुके झूमते नवतरु—शमी और पीलू प्रतीत होने लगे हैं वे ! यह चिन्तामणि-चर्चित श्रीसेवित पुण्यधरा—आज तो यह ऊसर से भी गयी-बीती हो गयी है। ये पशु—ये पक्षी--इन पर कामधेनु और उच्चैःश्रवा अब भी निछावर हो सकते हैं; पर—पर गया वह व्रज की शोभा, सुख, उल्लास, श्री का साकार विग्रह ! व्रजजन--अब इन व्रजजनों की व्यथा--मन कैसे उसकी छाया का भी स्पर्श कर सकता है।

× × × ×

रथ--वायु वेग से उड़ता रथ, कैसे इस समय छकड़े रथ का साथ दे सकते हैं। अक्रूरजी ने बता दिया है व्रजेश को कि वे कालिन्दी के तट पर यहाँ रथ रोककर स्नान-संध्या करेंगे। 'राम-श्याम के कलेऊ की सामग्री रथ में है ही। पूजा-ध्यान में विलम्ब हो सकता है। छकड़े भी मार्ग से हटकर यहाँ आयें और प्रतीक्षा करें, आवश्यक नहीं है यह। व्रजेश को गोपों के साथ आगे चलना चाहिये।'

'श्रीअक्रूरजी परम धार्मिक हैं। वे कभी कोई भी शङ्काप्रद कार्य कर नहीं सकते। राम-श्याम उनके साथ सुरक्षित हैं। छकड़े रथ से आगे चलें, यह तो सभी प्रकार ठीक है। गोप नहीं चाहते कि उनके पहुँचने से पूर्व ही दाऊ और कन्हैया मथुरा पहुँचें। जब रथ के साथ छकड़े नहीं दौड़ सकते, तब छकड़ों को आगे ही चलना चाहिये। वहाँ नगर के समीप निवास की व्यवस्था भी करनी है। बालकों को पहुँचते ही विश्राम मिलना चाहिये। कंस से सावधान रहना अत्यन्त आवश्यक है। नगर के समीप उपवन में ही छकड़ों को रोककर शिविर खड़े करना अधिक निरापद है।' श्रीव्रजराज गोपों के साथ इस प्रयत्न में हैं कि जितनी शीघ्र हो सके, वे मथुरा के समीप पहुँच जायँ। रथ को आने में कितनी देर लगती है।

श्रीअक्रूरजी ने मार्ग से रथ को तनिक मोड़ लिया है। कालिन्दी के तट पर आकर रथ खड़ा हुआ ! दाऊ और कन्हैया दोनों स्वयं उतर पड़े रथ से। बहुत अश्रु बहा है लोचनों से, मुख धोना आवश्यक ही हो गया है। दोनों ने मुख धोकर निर्मल, स्वच्छ, शीतल जल पिया पद्म-पत्रों के पुटक बनाकर और अब तो अक्रूरजी ने रथ को सघन छाया में खड़ा कर दिया है। दोनों पुनः आये रथ के समीप। अक्रूरजी ने आग्रह न किया होता—यह वृक्षमूल, ये हरित मृदुल तृण, इनपर विश्राम करने में जो आनन्द है; पर ये वृद्ध दानाध्यक्ष नहीं मानते। इनका आग्रह है, ये बैठा रहे हैं तो रथ में ही बैठना है।

'आप दोनों कलेऊ कर लें ! मैं यहीं जल ला देता हूँ।" लेकिन आज क्या कलेऊ अच्छा लगेगा ! रोती-बिलखती मैया, दूर गये सखा—ना, कलेऊ की तो इच्छा ही नहीं है। अक्रूरजी को अतिकाल हो रहा है अपने नित्य कर्म के लिये। वे कलेऊ का अधिक आग्रह करेंगे भी नहीं ! 'आप यहीं रथ में बैठे रहें और तब तक मैं स्नान कर लूँ ! मुझे संध्या करने में कुछ विलम्ब होगा ! यदि आप·····।'

'चाचा, आप भली प्रकार स्नान करें, संध्या करें और पूजन करें। हम दोनों भाई उकतायेंगे नहीं। आप-शीघ्रता न करें !' आज कन्हैया इन श्वेतकेश अक्रूरजी के सम्मुख गम्भीर हो गया है। इसने उनको संकोच करते तो देख ही लिया है। अक्रूरजी को तो यही चाहिये। वस्त्र उतार कर रथ में रख दिये। पटुका और उत्तरीय पर आज संध्या और भगवान् नारायण का मानसिक पूजन दोनों जल में ही कर लेने हैं। तटपर आकर पूजन करने की सुविधा यात्रा में है नहीं।

अक्रूरजी तो श्रीयमुनाजी में स्नान का संकल्प कर डुबकी लगानेवाले हैं; पर यह कनूँ इस प्रकार बड़े भाई की ओर क्यों देख रहा है ? इसके चपल नेत्र तो कुछ कहते हैं। 'वह क्रन्दन करती दौड़ती पगली-सी मैया, वे मूर्ति-से ठिठके महर्षि शाण्डिल्य, वे स्पन्दन-हीना भगवती पूर्णमासी, वे स्नेह की स्निग्ध पुतलियाँ—वह कामदा, नन्दा, कपिला, कृष्ण धर्म, गौरव—बाँ-बाँ, करते पशु, हाहाकार करते-से पक्षी—कितने दुखी थे सब ! बहुत देर हो गयी, बहुत देर हुई वहाँ से चले ! बहुत परिहास हुआ। वृन्दावन की सीमा यहीं समाप्त होती है। क्या धरा है मथुरा में ? यह रथ में बैठना—ऐसे ही तो वहाँ स्वर्ण-पाषाण-भवनों में मन मारकर बंदी-सा रहना होगा ! अभी ही तो इन अक्रूरजी ने वृक्षमूल में मृदुल दूर्वादल पर विश्राम नहीं करने दिया ! मथुरा के लोग ऐसे ही होंगे ! बाबा, गोप, सखा—वे दो-चार दिन में लौट आयेंगे। ये अक्रूरजी डुबकी लगाने जा रहे हैं ! हम लोगों ने भी तो स्नान नहीं किया है आज। एक डुबकी और हाँ—यह अच्छा अवसर है ! अक्रूरजी—इनकी क्या चिन्ता करनी है। वे भगवान् विष्णु के श्वेत-कृष्ण केश, उनको भी अवसर मिलना चाहिये। अपनी खटपट वे सम्हालते रहें !' पता नहीं यही सब या कुछ और—पर कनूँ के नेत्र कुछ कह रहे हैं। योगमाया अन्तरिक्ष में तनिक चञ्चल हो उठी हैं। शास्त्र इस नन्दनन्दन के लिये कहते हैं—

'वृन्दावनं परित्यज्य पादमेकं न गच्छति।'

× × × ×

'ये राम-श्याम—वसुदेवजी के ये दोनों कुमार, ये स्नान करने आ गये रथ से ?' श्रीअक्रूरजी ने डुबकी लगायी है। वृद्ध पुरुष ठहरे, शरीर की अब अधिक सावधानी रखनी पड़ती है। इस निर्मल शीतल जल में डुबकी लगाकर नेत्रों को भीतर खोल देने से वे स्वच्छ हो जाते हैं। गायत्री का जप करते-करते ही डुबकी लगाकर नेत्र खोले थे जल में उन्होंने। कौन बताये इन वयोवृद्ध नीतिज्ञ दानाध्यक्ष से कि सामान्यतः जल में नेत्रों से भीतर की वस्तुएँ इतनी स्पष्ट दिखायी नहीं पड़ा करतीं।

'मैं दोनों को रथ पर छोड़ आया था !' झट से मस्तक जल से निकालकर खड़े हो गये अक्रूरजी। 'रथ पर कोई नहीं है, अश्व कोई ऊधम न करने लगें ?' मुख घुमाकर देखा उन्होंने रथ की ओर—देखा और फिर नेत्र मलकर देखा—'राम-श्याम तो वे क्या रथ पर बैठे हैं ! दोनों इधर ही देख रहे हैं। नहीं—इनके रथ से उतरने के तो कोई लक्षण नहीं। कितने शान्त बैठे हैं दोनों ! तब जल में क्या देखा मैंने ? मेरा क्या भ्रम ही था ? बहुत स्पष्ट तो देखा था इन दोनों को मैंने जल में !' ठीक निश्चय करने के लिये पुनः डुबकी लगाकर देखना आवश्यक ही है।

सिद्ध, चारण, गन्धर्व और ये असुर--असुर भी हाथ जोड़े मस्तक झुकाय--यह समस्त समुदाय स्तुति कर रहा है, गद्‌गद् वाणी से स्तुति कर रहा है। किसकी ? ये क्या कमलतन्तु-से भगवान अनन्त हैं सम्मुख ! उज्ज्वल स्निग्ध शत-सहस्र ज्योत्स्ना-धवल प्रकाश--सहस्र-फण मौलि, फणों पर प्रदीप्त ज्वाला मात्र-सी मणियाँ और एककुण्डलधर, नीलाम्बरधारी ये भगवान् अनन्त--शेष--ये भी अपने सहस्र मुखों से एकाग्र स्तवन में लगे हैं ! इन शेषजी के कुण्डलाकार भोग पर ये जो पद्मपराग-पीत तडित्कान्त कौशेयवस्त्रधारी नवदूर्वादलश्याम आदिपुरुष हैं--समस्त वाणी के परम स्तवनीय ये आदिपुरुष ! कमल-किञ्जल्क-अरुणाभ दीर्घ लोचन, प्रलम्ब चतुर्भुज शान्त स्वरूप, परम सुन्दर प्रसन्न वदन, स्मित-शोभित करुणावलोकन, सघन धनुषाकार भ्रूमण्डल, मकर-कुण्डल-भूषित सुन्दर कर्ण, झलमल करते दर्पण-से कपोल, विद्रुम-निन्दक अरुण अधर, दीर्घ स्थूल बाहु, विशाल वक्ष और उसपर श्रीवत्स, शङ्ख-सा रुचिर कण्ठ, पल्लवदल-सा, त्रिवली-मण्डित उदर और उस पर यह मञ्जु-रोमावली, गम्भीर नाभि-हृदय, केहरी-सी कटि, तुङ्ग कटि-तट और यह ज्योतिमयी रत्न-मेखला, कदली-स्तम्भ-सुन्दर ऊरु, मनोहर जानु, परम सुन्दर पद और ये पदतल--इन अरुण मृदुल उत्तुङ्ग पदतलों की शोभा--ये उत्तुङ्ग गुल्फ, पल्लव-कोमल अङ्गुलि-दल, यह नखमणि-चन्द्रिका की छटा ! बड़े बहूमूल्य ज्योतिर्मय आभूषण हैं ! किरीट, अङ्गद, कटिसूत्र, रत्नमाला, कुण्डल, नूपुर--इन आभूषणों को भी भूषित करनेवाला यह श्रीअङ्ग। पद्म, शङ्ख, चक्र और गदाधारी, श्रीवत्सलाञ्छित कौस्तुभकण्ठ, वनमाली परम पुरुष--सुनन्द, नन्दादि पार्षद, सनकादि मुनिगण, जगत् स्रष्टा पितामह, भगवान् रुद्र, सभी प्रजापति महर्षि, प्रह्लाद-नारदादि परम भागवत--सभी तो स्तवन कर रहे हैं इन पुरुषोत्तम का। श्री, पुष्टि, गिरा, कान्ति, कीर्ति, तुष्टि, इला, जया, विद्या, अविद्या आदि शक्तियाँ और स्वयं मायादेवी भी मूर्तिमती होकर इनकी सेवा कर रही हैं। ये मेरे आराध्य श्रीनारायण !' अक्रूरजी आनन्द-विह्वल हो गये। रोम-रोम खड़े हो गये, नेत्रों से प्रेमाश्रु चलने लगा, वाणी गद्‌गद् हो गयी। बड़ी कठिनाई से कुछ काल में अपने को तनिक स्थिर किया उन्होंने। दोनों हाथ जोड़कर, मस्तक झुकाकर सिर से अञ्जलि लगाकर भाव-क्षुब्ध कण्ठ से वे सचराचर के परमाराध्य, सुरासुर-वन्दित चरण अपने परम इष्ट श्रीनारायण की स्तुति करने लगे।

अक्रूरजी स्तुति कर रहे हैं--परम भागवत, परम ज्ञानी अक्रूरजी स्तुति कर रहे हैं अपने आराध्य की--अपने सम्मुख प्रकट परमैश्वर्यमय सुषमा-सिन्धु आदिपुरुष भगवान् नारायण की। तत्वज्ञान, निर्गुण परमार्थ-तत्व, सगुण-साकार चिन्मय रूप, भू-भार-हरणार्थ उस दयामय के अवतार-विग्रह और उनकी अपार महिमा--पता नहीं क्या-क्या ! अक्रूरजी स्तुति करते रहे--चलती रही उनकी स्तुति। भगवान् नारायण--इष्टदेव ने कृपा की, जन्म-जन्म की लालसा सफल हुई। जीवन कृतार्थ हुआ। हृदय में जो अपार भावसागर उमड़ पड़ा है, वाणी उसे कैसे व्यक्त कर सकती है। भगवान् नारायण के गुणों का, महिमा का, कृपा का पार नहीं है और पार नहीं है हृदय की उमंग का, उल्लास का। अब स्तुति क्या विराम ले सकती है। शत सहस्र कल्पों की आयु प्राप्त हो और यह स्तवन का सौभाग्य मिले--स्तुति क्या तब भी तुष्ट होगी ? अक्रूरजी करते रहे, करते रहे और सहसा वह शोभा, करुणा, वात्सल्य, ऐश्वर्य की मूर्ति अदृश्य हो गयी। अदृश्य हो गया वह सब वैभव। वाणी स्वतः मूक हो गयी, हृदय तड़पने लगा--जैसे महा सर्प की मणि छीन ली गयी हो।

'दयामय की यह अपार दया ! मैं अधम, पामर प्राणी कहाँ इस योग्य था !' अक्रूरजी ने अपने आपको आश्वस्त किया। जल से मस्तक उठाया ऊपर उन्होंने। कुछ क्षण कुछ क्षण ही तो वे उस दिव्य छटा को देख सके हैं ! बहुत विलम्ब हो गया ! वे कुछ क्षण--पर वहाँ के कुछ क्षण तो पता नहीं कितने छोटे-बड़े होने में समर्थ हैं !

'मध्याह्न समीप है ! गोप अब तक पहुँच भी गये होंगे ! व्रजेश्वर प्रतीक्षा करते होंगे ! सब व्याकुल होंगे। राम-श्याम ने अब तक कलेऊ भी नहीं किया !' पहली बार--जीवन में पहली बार अक्रूरजी अपने नित्यकर्मों में शीघ्रता कर रहे हैं। किसी प्रकार विधि पूरी कर रहे हैं।

विधि ही तो पूरी करनी है अब। जब वह परम फल प्राप्त हो गया--वह इन सब विधियों का लक्ष्य--वह तो प्रतीक्षा कर रहा है, सम्मुख रथ पर बैठा प्रतीक्षा कर रहा है। शीघ्रता से किसी प्रकार पूरा भर कर देना है इन नित्य के कर्मों को।

'चाचा, आप बड़े चकित जान पड़ते हैं! आपके तो चरण ही भूमि पर ठीक नहीं पड़ रहे हैं। आपने कोई अद्भुत वस्तु देखी है? देखी तो है, क्या देखा है? कहाँ देखा? भूमि में, आकाश में या जल में?' कन्हैया ठीक ही पूछ रहा है। अब भी अक्रूरजी को बार-बार रोमाञ्च हो रहा है। अब भी उनके नेत्र भरे-भरे हैं। अब भी उनका शरीर कम्पित, पुलकित हो रहा है। ऐसा बिना कारण तो कैसे होगा।

'भूमि में, आकाश में, जल में जितने भी आश्चर्य सम्भव हैं, वे सब आप में ही तो हैं! मैं साक्षात् आपको देख रहा हूँ। आप विश्वात्मा मेरे सम्मुख हैं, इससे अधिक आश्चर्य मैं और क्या देखूँगा।' अक्रूरजी की वाणी फिर गद्गद हो गयी है। नेत्र फिर टप-टप विन्दु गिराने लगे हैं। पर विलम्ब हो रहा है! रथ के अग्रभाग पर आकर बैठ गये वे। रश्मि हाथ में ली और चुपचाप अश्वों को हाँक दिया। इस समय अब और बोला नहीं जा सकेगा। कन्हाई पूछे भी क्या, पता नहीं ये अक्रूरजी क्या-क्या कह गये। ये रोने लगे हैं! ऐसी बात पूछी ही क्यों जाय कि कोई रोने लगे। यह बड़े भाई की ओर देखने लगा है। रथ भागा जा रहा है--भागा जा रहा है मथुरा की ओर।

× × × ×

'कन्हैया आया नहीं। रथ का तो अब तक चिह्न भी दिखायी नहीं पड़ता।' गोप आकुल हो गये हैं। बालक दूर-दूर तक मना करने पर भी दौड़ लगा—लगाकर लौट आते हैं। कब के छकड़े यहाँ पहुँच चुके हैं। कितनी देर हो गयी इन वस्त्र-शिविरों को खड़े हुए। अब तो पूरी व्यवस्था हो गयी। वस्तुएँ यथास्थान सुसज्जित हो चुकीं। अब तक राम-श्याम क्यों नहीं आये?

'अक्रूरजी भगवान् नारायण के परम भक्त हैं। उन्हें अपनी उपासना में बहुत विलम्ब लगता है। ध्यान करने लगे और मन एकाग्र हो गया.....!' यह सब तो ठीक; किंतु--किंतु बहुत विलम्ब हो गया। मध्याह्न होने को आया। दोनों बालक रथ पर बैठे उदास हो रहे होंगे! कोई है भी तो नहीं उनके समीप। दोनों बड़े संकोची हैं, बार-बार आग्रह करने पर तो कुछ कठिनता से भोजन करते हैं, भूखे होंगे दोनों! अपने-आप वे कलेऊ करेंगे ही नहीं।' बाबा को एक-एक पल युग हो रहा है। उनके नेत्र पथ की ही ओर लगे हैं।

'हम सब-के-सब चले आये! एक छकड़ा तो रथ के साथ रह गया होता।' अब इस पश्चाताप मे लाभ भी क्या है। किसे पता था कि अक्रूरजी के नित्यकर्म में मध्याह्न हो जायगा। 'अब एक दो छकड़े जाकर देख आयें!' किसी को पता नहीं रथ कहाँ कालिन्दी-तट पर रुका है। एक अनुमान है—बस। पता हो या न हो, छकड़े तो पुनः जोते जाने लगे हैं। गोप कब तक प्रतीक्षा करें।

'वह धूलि दीख रही है गगन में! वह धूलि मार्ग की ओर से इधर ही आती जान पड़ती है!' एक सूक्ष्मतम रज-रेखा--लेकिन अब कुछ क्षण ही और प्रतीक्षा की जा सकती है।

'रथ आया! कनूँ आ रहा है!' बालक दौड़े और दौड़ तो पड़े हैं ये तरुण गोप। रथ आया—दिखायी पड़ा और आया। घोड़े रश्मि खींच लेने से सहसा खड़े हो गये। यह कूदा दाऊ—यह कन्हाई। बाबा ने, गोपों ने, सखाओं ने अङ्क में भर लिया। यहाँ तो सब काम साथ ही हो जाते हैं।

ये अक्रूरजी अब भी खड़े हैं। ये बोलते नहीं, पर इनके विनीत नयन क्या अपनी बात नहीं कह रहे हैं? कन्हाई मुड़ा सुहृदों के मध्य से, श्रीअक्रूरजी का हाथ अपने कोमल हाथों में लेकर उसने कहा--'चाचा, आप इस रथ के साथ पहले नगर में प्रवेश करें! हम

तनिक विश्राम करके तब नगर-दर्शन करेंगे !' बात तो ठीक है, कंस को सूचना तो मिल जाय कि उसके आमन्त्रित अतिथि पहुंच गये हैं। अब उसे सावधान हो जाना चाहिये।

अक्रूरजी—ये तो व्याकुल हो गये हैं इतना सुनकर ही। मोहन को पाकर फिर छोड़ना भी पड़ेगा—कितनी दुःखद कल्पना है। हाथ जोड़कर भरे कण्ठ से प्रार्थना ही तो की जा सकती है--"नाथ, आपको छोड़कर मथुरा में जाना नहीं चाहता मैं ! भक्त-वत्सल प्रभु, मैं आपका भक्त हूँ, मेरा परित्याग न करें आप ! मेरे घर अपने बड़े भाई, गोपगण तथा सभी बालकों के साथ आप पधारें ! अपने श्रीचरण की रज से इस दीन की कुटिया को पवित्र करें ! इस अनाथ को सनाथ बनायें ! हम गृहस्थ हैं, हमारे गृह में आप पधारेंगे, आपके चरणोदक का सौभाग्य मिलेगा मुझे--वह चरणोदक जिससे पितर, अग्नि, देवता—सब तृप्त हो जाते हैं। जिन श्रीचरणों को प्रक्षालित करके असुरेश्वर बलि महान् यशस्वी हो गये, अपार ऐश्वर्य पाया उन्होंने और आप में ऐकान्तिकी गति प्राप्त की, उन्हीं पाद-पद्मों को प्रक्षालित करने की मेरी लालसा है ! मैं अपने गृह में आपके श्रीचरण प्रक्षालित कर सकूँ ! आपका चरणोदक--वह तो त्रिभुवन को पवित्र करता है। भगवान् शंकर उसी पादोदक को ही तो मस्तक पर धारण करते हैं और सगर के ब्रह्मशाप दग्ध साठ सहस्र पुत्र तो उसके स्पर्श से ही स्वर्ग पहुँच गये। देवदेव, जगन्नाथ, उत्तमश्लोक, पुण्य-श्रवण-कीर्तन, यदुश्रेष्ठ, नारायण ! आपको नमस्कार !" वाणी रुद्ध हो गयी है। स्वर में विवशता है। नेत्र कहते हैं--प्रभो, आप सर्वतन्त्र हैं; किंतु यह एक दीन की प्रार्थना है।

श्याम ने पुनः हाथ पकड़ा स्नेह से अक्रूरजी का। उन्हें रथ के समीप ले आया—'चाचा, आप इतने कातर न हों। मैं अपने अग्रज के साथ अवश्य आप के घर आऊँगा, पर पहले यदुकुल के परम शत्रु को ठिकाने लगा देना है मुझे। जो भी मेरे सुहृद हैं, उनका परम प्रिय, उनकी वाञ्छा-पूर्ति ही तो मेरा एकमात्र कार्य है।'

श्रीकृष्णचन्द्र का आग्रह है—आदेश ही तो है यह। अक्रूरजी ने रथ हाँका विवश होकर 'ये गोप, ये ग्वाल-बाल, ये राम-श्याम उनके घर जायँ, कंस क्या करेगा ?' पर अब कंस का भय कहाँ है उनमें। 'ऐसे भाग्य कहाँ कि इन सुरासुर-अर्चित श्रीचरणों से इतनी शीघ्र इस अधम की कुटी पवित्र हो।' कितने खिन्न-से जा रहे हैं ये। रथ हाँका नहीं जाता, बार-बार पीछे देखते हैं। अब भी कोई पुकार ले···।

'कन्हैया थक गया, बहुत भूखा है।' बाबा को एक ही चिन्ता है। अक्रूरजी के गृह जाकर उन्हें भी कंस के कोप का भाजन बनाना बाबा को स्वीकार हो ही नहीं सकता। 'कितने' कितने साधु, कितने सरल हैं अक्रूरजी। बालकों में किसी ने कलेऊ नहीं किया अब तक। कन्हाई के बिना कौन भोजन करे। सब क्षुधित हैं, मध्याह्न हो गया; अब तो इन सबको भोजन कराना है। मोहन सखाओं के साथ भोजन करने की ही शीघ्रता में है।

—❀○❀○❀—

नगर-दर्शन

"आर्द्रावलोकितधरापरिणद्धनेत्रमाविष्कृतस्मितसुधामधुराधरोष्ठम् ।
आद्यं पुमांसमवतंसितबर्हिबर्हमालोकयन्ति कृतिनः कृतपुण्यपुञ्जाः ॥"

—श्रीलीलाशुक

'बाबा, हम सब नगर देखने जाते हैं !' यह चञ्चल कृष्णचन्द्र—ये बालक, गोपों ने, बाबा ने कितना चाहा कि सब भोजन करके तनिक विश्राम कर लें। ये सब इतनी देर यहीं रहे, इतना ही क्या कम है। सबों ने परस्पर सम्मति कर ली है—'बाबा के साथ, गोपों के साथ नगर-दर्शन में आनन्द नहीं आयेगा।' यह मित्र-मण्डल जाने को प्रस्तुत भी हो चुका।

'अरे रुको, तुम्हारे साथ गोपों को कर देता हूँ। मैं ही चलता हूँ, रुको तो !' कन्हैया तो वह हँसता भाग चला। दाऊ, भद्र—सभी लड़के तो जा रहे हैं। बाबा चञ्चल हो उठे हैं।

'हम सब इतने तो हैं !' यह भद्र अपने को किसी गोप से कम चतुर कहाँ मानता है। 'हम अकेले ही जायँगे ! किसी को साथ नहीं ले जायँगे !' यह तो स्वर ही कहता है कि 'आग्रह नहीं चलेगा। कोई साथ जाय तो रूठ जायँगे हम लोग।'

'तुम सब कहीं भूल गये मार्ग तो ?' मथुरा कोई ग्राम तो है नहीं। इन बालकों का क्या ठिकाना, किधर जायँगे। ये अकेले ही नगर में जायँ—ना, यह तो ठीक नहीं है। गोप प्रस्तुत हो चुके हैं झटपट अपने लकुट लेकर।

'ना, हम अकेले जायँगे ! भूलेंगे नहीं, पूछ लेंगे !' यह तोक—यह अब रूठने वाला ही है। बालक माताओं से, घर से दूर हैं। कहीं ये यहाँ रूठ गये, रोने लगे—कौन मनायेगा। कैसे इन्हें शान्त किया जा सकेगा। किसी प्रकार ये उदास न हों, इनका मन लगा रहे—यही क्या कम है। गोपों के पद उठकर भी रुक गये हैं। इन सबों को नगर देख ही आने देना चाहिये।

'कोई धूम मत करना ! किसी को चिढ़ाना मत ! कोई कुछ दे भी तो मत लेना ! किसी के यहाँ से—किसी दूकान से कुछ उठाना मत !' बाबा को पता नहीं क्या-क्या चेतावनी देनी है। बालक अपनी उत्सुकता में 'हाँ' तो कर रहे हैं; पर ये इन बातों को ध्यान में रख सकेंगे ?

'शीघ्र आ जाना ! विलम्ब मत करना ! मथुरा में किसी को अप्रसन्न मत कर लेना !' बाबा का हृदय वेग से उछल रहा है। बालक मानते नहीं—मथुरा—कंस—कहीं कोई कुछ कह न दे इन सबों को। ये चञ्चल कुछ ऊधम न करने लगें !

'हम झट आ जायँगे ! दाऊ भैया है न हमारे साथ !' कन्हैया के साथ दाऊ है, फिर डर किस बात का। जैसे दाऊ विश्व में सब से बड़ा, सब से चतुर, सब से महान् है। हाँ है तो—बालकों के लिये तो दाऊ ऐसा ही है।

'हम शीघ्र आ जायँगे !' यह बल भी कह रहा है। बल—इसका स्वर ही कहता है—बाबा, मैं हूँ न, फिर डरने की क्या बात है।

'कृष्ण बड़ा भोला, बड़ा सीधा है। बालक बड़े संकोची हैं। मथुरा में कोई भी परिचित नहीं। अपरिचितों से ये संकोचवश बोल तो सकेंगे ही नहीं, धूम तो क्या करेंगे। उत्सुक हैं सब, देख आने देना चाहिये इन्हें नगर को !' किसी प्रकार बाबा को, गोपों को अपने मनको संतोष देना है। लड़के तो सब दौड़ते-कूदते चले ही गये; किंतु इन तर्कों से क्या संतोष हो सकता है। 'कंस—उसके उद्धत अनुचर····! कंस ने आमन्त्रण देकर बुलाया है अपने रथ से, उसके आमन्त्रितों का

अनादर करने का साहस किसी को होगा नहीं ! पर····!' बाबा का हृदय नहीं मानता। गोप नग की ओर ही नेत्र लगाये ठिठके खड़े हैं। अब क्या हो सकता है। प्रतीक्षा ही करनी चाहिये अब तो।

× × × ×

मथुरा—चारों ओर दुर्गम परिखा से घिरी यह यादव-राजधानी ! ताम्र के कोष्ठ हैं परिखा के ऊपर और यह स्फटिक का उत्तुङ्ग गोपुर, विशाल स्वर्ण के कपाटों से भूषित, स्वर्ण-तोरण-मण्डित यह नगर-द्वार जैसे आज श्रीकृष्णचन्द्र के स्वागत के लिये ही उन्मुक्त हुआ है।

ये नाना प्रकार के सभा-भवनों की श्रेणियाँ, ये उच्च भवन और इनको घेरकर हरित मेखला की भाँति नगर-परिखा के भीतर यह चारों ओर सुन्दर उपवन। भवनों पर स्वर्ण-कलश जगमग कर रहे हैं, सभी छज्जे एवं छतें तक स्वर्ण की ही हैं और स्थान-स्थान पर वैदूर्य, हीरक, नील-मणि, विद्रुम, पुष्पराग, आदि निर्मल बहुमूल्य रत्नों की ये वेदियाँ और इन वेदियों पर ये पशु-पक्षी आदिकों के लिये रखे अन्न, पक्वान्न—कंस चाहे जितना क्रूर हो, परम धार्मिक यादवकुल अपनी अर्चा के उपहार किसी-न-किसी रूप में तो उस विश्वात्मा को अर्पित करेगा ही। रत्न-वेदियों पर यह बलि-अन्न, यह अन्तर की उसी श्रद्धा का तो उपहार है।

गवाक्षों से सुगन्धित अगुरु का धूम्र निकल रहा है, उनके पास ये कपोत कूजन कर रहे हैं और ये मयूर धूम्र को सम्भवतः मेघ समझकर कुट्टिमों (चबूतरों) पर नृत्य करने में मग्न हैं। सभी आपण, पथ, चत्वर सींचे गये हैं--अवश्य ये दिनमें कई बार सींचे जाते होंगे; अन्यथा इस दिवस के तृतीय प्रहर में क्या ये इस प्रकार सिञ्चित मिलते माल्य, दूर्वाङ्कुर, तण्डुल, लाजा इस मार्ग पर इतस्ततः फैला है। श्यामसुन्दर के प्रवेश से पूर्व ही यह मङ्गल विधान—क्या पता, कोई सम्मान्य पुरुष इधर से गया हो पहले भी।

द्वार-द्वार पर जलपूर्ण स्वर्ण-कुम्भ सजे हैं और वे दधि एवं चन्दन से चर्चित हैं; उन पर आम्र-पल्लव सज्जित करके दीपकों को रखा गया है और पुष्प-प्रपूजित हैं ये सब कुम्भ। कदली के स्तम्भों में झूमती धारें, बँधे हुए तोरण, मङ्गल-पट्टिका, और इन द्वारों के ही ऊपर तो सीधे वेणु के उच्च दण्डों में पताकाएँ फहरा रही हैं।

मथुरा--नित्य सुसज्जित, नित्य मङ्गलमयी मथुरा की आज तो कुछ शोभा ही दूसरी है। आज मथुरा का अधिष्ठाता आया है वहाँ ! पुरी का कोना-कोना, अणु-अणु जैसे जगमग करने लगा है। 'आज वसुदेव-पुत्र आयेंगे !' मथुरा-निवासियों ने कितने उल्लास से सजाये हैं अपने गृह। कितनी उमंग से ये पथ परिष्कृत हुए हैं और ये मङ्गल-विधान--उन अनदेखे कुमारों के लिये कितना स्नेह, कितना आदर लिये मङ्गल-विधान प्रातः से बार-बार नूतन होते रहे हैं।

कंस सम्राट् सही, भय एवं शक्ति से ही तो उसका शासन है। कैसे उसे यह स्वागत-सम्भार कभी प्राप्त होता। वह भीरु--वह शङ्कालु कंस--वह क्रूर क्या इसे सह पाता ! वह तो निकलता है तो गृहों के गवाक्ष तक बंद करा देते हैं उसके अनुचर। उसे सब से भय ही लगा रहता है। लेकिन आज—आज तो वह प्रेमघन आ रहा है। आज तो वह आ रहा है, जिसके रूप, शील, आकर्षण, माधुर्य को सुनते-सुनते प्राण आतुर हो गये हैं। पिपासा प्रदीप्त हो उठी है। आज उसे देखा जा सकेगा, वह आयेगा ! मथुरा आज भी यदि भरपूर न सजे तो कब सजेगी।

वे महाभागा ब्राह्मण-पत्नियाँ--धन्य हैं वे, जिन्होंने राम-श्याम को देखने का सौभाग्य प्राप्त किया वन में ही। वे जब उस अपरूप रूप-माधुरी का वर्णन करने लगती हैं—नेत्र धारायें चलाने लगते हैं, शरीर पुलकित हो जाता है, कण्ठ रुद्ध हो उठता है। वे तो स्मरण से ही विह्वल-सी रहा करती हैं। कितने आग्रह, कितने अनुरोध से बार-बार नगर-नारियों ने उनसे पूछा है उसी बात को और वे सब तो जैसे थकती ही नहीं। इतने दिनों से जिसका वर्णन सुना है, आज वह आयेगा ! आज उसे नेत्र देख सकेंगे।

'अक्रूर आये ! रथ आ रहा है !' एक बार खलबली-सी हुई प्राणों में। उत्सुकता-चञ्चल पद ठिठक गये—'रथ तो खाली ही है !' लाजा, दूर्वाङ्कुर, अक्षत की कुछ मुट्ठियाँ पथपर उत्सुकता में

ही बिखर गयी थीं। 'वे आ गये हैं! नगर द्वार से बाहर उद्यान में व्रजराज ने शिविर डाला है।' प्राणों की प्रतीक्षा और--और आतुर हो उठी है!

'आये--राम-श्याम आये! अपने सखाओं के साथ वे राजपथ से आ रहे हैं!' पता नहीं किसने कहाँ, किससे कहा; पर कहा--बात विद्युत्-गति से नगर में फैल गयी। नगर में दौड़-धूप मच गयी। 'मार्ग पर--राजमार्ग पर!' भला, इतना स्थान राजमार्ग पर दोनों ओर कैसे निकले कि पूरा नगर एक ही स्थान पर एकत्र होकर दर्शन कर ले। पथ के दोनों ओर जन-समुदाय का ठट्ट ही तो लगना है।

दधि, अक्षत, पुष्प, माल्य, चन्दन, दूर्वाङ्कुर और उपहार—ये अर्चा के उपहार तो कब से प्रतीक्षा कर रहे हैं। कोई भोजन कर रहा था, उसने शीघ्रता में हाथ धोये, पूजन थाल उठाया और भागा। कुछ ने तो उत्तरीय कंधे पर भी डालने का अवकाश नहीं पाया। बेचारी नारियाँ—सबसे अधिक उत्सुकता उन्हीं में तो है, उन्हीं के श्रवण तो विप्र-पत्नियों के संवाद से पवित्र होने का सौभाग्य पा सके हैं। नारियाँ—अब क्या उनके प्राण अपने वश में हैं? अधर-राग नेत्रों में, अञ्जन अधरों में या एक नेत्र में अञ्जन और दूसरे में अधर-राग, एक कान में कुण्डल के स्थान पर नूपुर—वे चाहे जैसे दौड़ पड़ी हैं। 'कहीं वे आगे न चले जायँ!' भोजन का थाल पड़ा रह गया है, आधे अङ्गों में उबटन लगा है, स्नान के लिये बैठकर जल डाल लिया था ऊपर—वस्त्र आर्द्र ही हैं—कौन देखे यह सब। कौन सोचे इन बातों को। देखने का वह परमपात्र, वह सौन्दर्यघन, हृदयहारी आ गया है! उसे देखना है—अभी देख लेना है! कोई सोते से उठकर दौड़ी, कोई बच्चे को दूध पिलाते से पृथक् करके। राजपथ के दोनों ओर के छज्जे झूम उठे। पथ पुरवासियों की पंक्ति से मण्डित हो गया।

× × × ×

राम-श्याम आ रहे हैं! बड़े भाई के साथ, सखाओं से घिरा यह मोहन आ रहा है! नीलाम्बरधारी, स्वर्ण-गौर दाऊ और सजल-जलद-नील, पीताम्बर-परिधान यह कान्ह। मयूर-पिच्छ का मुकुट, कपोलों पर झलमल करते रत्न-कुण्डल, घुँघराली स्निग्ध अलकों में उलझे सुमन, विशाल भाल पर चन्दन-खौर के मध्य गोरोचन-तिलक, सघन कुटिल भ्रूमण्डल, अरुणाभ सुदीर्घ चपल-लोचन, स्मितशोभित बिम्बाधर, मञ्जुचिबुक, कम्बुकण्ठ, सुपुष्ट स्कन्ध, केयूरकङ्कणमण्डित विशाल बाहु, पीन भुजदण्ड, उन्नत वक्षपर लहराती वनमाला, केहरी की-सी क्षीण कटि पर रत्नमेखला, सुकुमार लाल-लाल चरण, मत्तगयन्द-से झूमते, घूमते, सखाओं के साथ कुछ बोलते, हँसते, इधर-उधर चपल-चपल देखते ये राम-श्याम आ रहे हैं। ये शोभा के सिन्धु, लावण्य की प्रतिमा-से भुवन-मोहन गौर-कृष्ण और इनके ये सखा—ये सब-के-सब बालक—एक-से अलंकृत, एक-से चपल और इनका यह सौन्दर्य—वृद्ध सृष्टिकर्ता के कर इतनी शोभा का सृजन कर सकते हैं? काम--मन्मथ—वह तो इनकी छाया का लेश पा जाय तो पता नहीं क्या-से-क्या बन जाय! पर बालक कुछ चकित-से, संकुचित-से दीखते हैं। यह नवीन नगर, इतने अपरिचित लोग—फिर भी कितने प्रसन्न, कितने चञ्चल, कितने मञ्जु हैं सब।

बालक सचमुच कुछ संकुचित-से हैं। कन्हैया अक्रूरजी के साथ रथ से उतरा—कितनी उमंग से दौड़े थे ये हृदय से लगाने। कनूँ ने भी तो उसी आतुरता से भुजाएँ फैला दीं। क्यों—पता नहीं क्यों भद्र को लगा—उसका ही कनूँ है यह? कुछ अद्भुत, कुछ विचित्र, कुछ ऐसा जो कहा न जा सके, समझ में न आये—पर कुछ लगता है हृदय में। कान्ह कुछ दूसरा-सा अद्भुत-सा लगता है। भद्र को, तोक को, सबको ही कुछ प्रतीत हुआ--होता है! यह व्रज नहीं है, मथुरा है न! श्याम यहाँ आकर कदाचित् कुछ गम्भीर हो गया है। इस अपरिचित स्थान में आने का ही कुछ प्रभाव होगा। कुछ है—ऐसा, जो हृदय से जाता नहीं है। यह अलंकृत, रत्नप्रदीप्त, ऐश्वर्यमय नगरी, ये उपहार लिये उत्सुक पुरवासी--बहुत कुछ देखने को है; पर मन जैसे उचटा-उचटा-सा है इन सबों का।

"यह रूप-राशि! यह शोभा का कल-कल भरता महासागर! धन्य हैं गोप, कृतार्थ हैं गोप-बालाएँ, सौभाग्यशाली हैं व्रजजन! पता नहीं कितने महापुण्य किये होंगे उन्होंने कि व इन राम-श्याम को निरन्तर देखते हैं! इनके समीप रहते हैं!" जन-जन पुलकित हो रहा है। प्रत्येक हृदय आशीर्वाद की वर्षा कर रहा है; पर प्रत्येक कण्ठ बाष्प-मूक हो चुका है। छज्जों से, मार्ग के दोनों ओर से अक्षत, कुसुम, लाजा, दूर्वाङ्कुर, चन्दन की अनवरत वर्षा हो रही है। बालकों के अङ्गों पर केसर-मिश्रित चन्दन के पीत एवं दधि के उज्ज्वल बिन्दु बढ़ते जा रहे हैं। अलकों में सुमन उलझते ही जा रहे हैं।

महामाणिक्य, अद्भुत रत्न-पक्षी, मूल्यवान् वस्त्र—पता नहीं क्या-क्या करों में लिये लोग हाथ फैलाये पथ के दोनों ओर उत्सुक खड़े हैं--'ये कुछ ले लें! कुछ स्पर्श कर दें! पूछ ही लें कि यह क्या है। एक बार देख लें!' नीराजन के मञ्जु थाल सार्थक हो रहे हैं! उपहार कमल-लोचनों के दृष्टिपात से परिपूत होते जा रहे हैं! सबको तुष्ट करते, नेत्रों में ही सबका सत्कार लिये ये राम-श्याम सखाओं से घिरे चले जा रहे हैं।

—❀⊃❀⊃❀—

रजक-मोक्ष

"नूनं नानामदोन्नद्धाः शान्ति नेच्छन्त्यसाधवः।
तेषां हि प्रशमो दण्डः पशूनां लगुडो यथा॥"

—भागवत १०। ६८। ३१

कन्हैया है ही विचित्र रुचि का, कोई युग-युग की साधना से पुनीत अर्चा करते-करते श्रान्त होता है और जैसे इसे पता ही नहीं हो और कहीं बलात् माखन-चोरी करेगा और मना करने पर चिढ़ायेगा भी। ये बेचारे नागरिक-जन—ये मथुरा के सम्पन्न व्यवसायी, कितनी उत्सुकता से, कितनी श्रद्धा से दोनों हाथों पर अपने बहुमूल्य उपहार आगे किये नेत्रों में अपार अनुरोध लिये कब-से खड़े हैं। श्यामसुन्दर यदि स्वीकार कर ले उनके ये उपहार—कृतार्थ हो जाय उनका श्रम। लेकिन यह कनूँ—यह तो किसी के उपहार को स्पर्श ही नहीं करता। क्या है इन वस्तुओं में—व्रज में, नन्दभवन में ऐसे वस्त्र, ऐसे रत्न वन्दी, गायक, सेवक राशि-राशि समय पर निछावर पाते रहे हैं। इन तुच्छ वस्तुओं में क्या आकर्षण है कि इनकी ओर ध्यान दिया जाय। कोई गोपकुमार कौतुक से भी तो नहीं देखता इनकी ओर।

देखने की क्या यहाँ कोई वस्तु नहीं ? है क्यों नहीं, वह क्या सम्मुख से एक रङ्गकारों का समूह आ रहा है। ये रजक रङ्गकार—कितने सुन्दर, कितने बहुमूल्य, कितने सुरङ्ग वस्त्र हैं इनके समीप। वस्त्रों को सुसज्जित करके ये स्वर्ण-यष्टियों पर सजाये जा रहे हैं। ऐसे वस्त्र कहीं लपेटे जा सकते हैं। इनमें तो रेखा तक नहीं पड़नी चाहिये। कितने आकर्षक हैं ये वस्त्र, कन्हैया अभी से आगे देखने लगा है। इसकी दृष्टि—ओह, ये वस्त्र इसे बहुत अच्छे लगे जान पड़ते हैं।

ये रजक—यह इनका प्रधान, कितना गर्विष्ठ है! यह किस अहंकार से चला आ रहा है। ये सम्मान्य पुरजन मार्ग के दोनों ओर खड़े हैं, ये वृद्ध द्विजजन अर्चा के उपहार लिये हैं और यह रजक—क्या हुआ जो यह वस्त्र धोता नहीं, रँगता है। रङ्गकार सही--है तो धोबी ही; पर इसका यह घमंड, यह अपने पूरे दल-बल के साथ राजपथ से अकड़ता चला आ रहा है। न द्विजों के प्रति सम्मान, न किसी का संकोच। इसका यह भाव तो गोप-कुमारों तक को अच्छा नहीं लगा जान पड़ता। ये सब बालक—ये किस प्रकार देख रहे हैं राम-श्याम की ओर—ये तो जैसे कहते हैं--'दाऊ भैया, कनूँ, देख तो यह कितना धृष्ट धोबी है! यह तो किसी की ओर देखता तक नहीं। ऐसा अकड़ता आ रहा है, जैसे हम सबों को ही एक ओर होकर इसे मार्ग देना पड़ेगा! तू इसे तनिक फटकारेगा नहीं ?'

रजक—क्या हुआ जो वह रजक है। महाराज कंस का अपना रङ्गकार वह। महाराज उसे मानते हैं, फिर क्यों किसी का संकोच करे वह और सो भी आज--आज तो उसके पास स्वयं महाराज के वस्त्र हैं। इन्हीं वस्त्रों को महाराज कल के महोत्सव में धारण करके रङ्गशाला में विराजेंगे। इस अवसर पर धारण करने के लिये महाराज ने ये सर्वोत्तम बहुमूल्य वस्त्र विशेष रूप से रँगने के लिये दिये थे उसे। आज वह राज-वस्त्र पहुँचाने जा रहा है, दूसरों को चाहिये कि उसके लिये मार्ग छोड़ दें। ये वस्त्र—महाराज के इन वस्त्रों में तनिक भी मोड़, नन्हीं-सी रेखा भी नहीं पड़नी चाहिये। वस्त्रों के प्रति उसकी सावधानी--सीमातीत सावधानी--अन्ततः इसी प्रकार तो वह इन समस्त मथुरा के लोगों को दिखा सकता है कि उसकी क्या महत्ता है, कितना प्रभाव है उसमें।

ये वस्त्र--रङ्गकारों के करों की स्वर्ण-यष्टियों में लहराते, जगमगाते ये रङ्ग-बिरङ्गे वस्त्र। वस्त्र तो बहुत सुन्दर हैं। चक्रवर्ती सम्राट्-से प्रभावशाली मथुरा-नरेश जिन वस्त्रों को कल के महोत्सव में धारण करना चाहते हैं--कल के महोत्सव में, मथुरा-नरेश के लिये कल के महोत्सव-सा महान् तो कदाचित् राजसूय का महाभिषेक भी नहीं और उसमें वे इन वस्त्रों को धारण करना चाहते हैं--वस्त्रों के आकर्षण का इससे अधिक परिचय और क्या होगा। इससे अधिक--इससे भी अधिक--यह भुवन-मोहन कन्हाई इन वस्त्रों की ओर देखने लगा है, इनकी ओर आकृष्ट हुआ है--सुन्दर, पवित्र, भाग्यशाली वही तो है, जिसे यह लेना चाहे!

× × × ×

"भाई, तुम्हारे पास ये बड़े सुन्दर वस्त्र हैं! धुले हुए, स्वच्छ, मनोहर रंगों से सजे हुए!" वस्त्र हैं--उत्तम वस्त्र हैं और उन्हें लेने की इच्छा भी है तो फिर बचा क्या? श्याम कुछ चाहे और न मिले, कुछ दूसरे की भी वस्तु होती है--कहाँ सीखा, कहाँ, समझा है इसने। सभी तो इसकी इच्छा के पूर्व ही अनुरोध करते हैं कि वह उनकी वस्तु स्वीकार कर ले। कोई वस्तु अच्छी लगे तो माँग लेने में संकोच कैसा। वस्त्र अच्छे हैं यही तो--कौन जाने मथुरा-नरेश के कल के महोत्सव-मनोरथ की कामना का यहीं से कदन प्रारम्भ नहीं करना है इसे। जो भी हो--वस्त्र सुन्दर हैं, पहनने की इच्छा है और यह कन्हाई माँग रहा है--"देखो न, ये सब लोग हम लोगों का सत्कार कर रहे हैं! तुम भी इन वस्त्रों में से हमारे अनुरूप वस्त्र हमें दे दो! डरो मत, तुम यदि हमें वस्त्र दोगे तो तुम्हारा परम मङ्गल होगा--इसमें तनिक भी संदेह की बात नहीं है!"

'संदेह की बात नहीं--परम मङ्गल होगा!' वस्त्र भी देने हैं तो अकेले आप को ही नहीं--पूरे मण्डल को। ऐसे वस्त्र--इतने सुन्दर वस्त्र भला, सखाओं को, बड़े भैया को पहनाये बिना कन्हाई कैसे पहिन लेगा। उसे सब वस्त्र चाहिये भी कहाँ। यही--उसे पीताम्बर, दाऊ को नीलाम्बर, सखाओं को उनके वस्त्रों के अनुरूप--बस, इतना ही तो।

'वस्त्र चाहिये!' यह धोबी तो विचित्र ही ढंग से बोलने लगा है। इसके सुरा-घूर्णित लाल-लाल नेत्र--कर्कश कण्ठ और यह तो डाँटने लगा है--"अपना मुख तो देखो पहले! ऐसे ही वस्त्र पहनकर क्या नित्य जंगल-जंगल, पर्वतों में घूमते रहे हो तुम सब? ये वस्त्र तुम्हारे ही योग्य हैं? बड़े धृष्ट हो तुम लोग! महाराज के वस्त्रों की कामना करते हो! भाग जाओ यहाँ से! मूर्खो, यदि जीने की इच्छा हो तो फिर कभी ऐसी प्रार्थना किसी से मत करना! तुम लोगों जैसे उद्धत लोगों को नरेश मृत्यु-दण्ड तक दे सकते हैं! यह न भी हो तो तुम्हें वे पिटवायेंगे, कारागार में डाल देंगे और तुम्हारी समस्त सम्पत्ति छीन ली जायगी!'

'अरे, यह रजक--यह नीच इस प्रकार बड़बड़ाता जा रहा है और इस राजपथ पर, इतने लोगों के सम्मुख--यह कनूँ को इस प्रकार डाँट रहा है!' नहीं, यह सहा नहीं जा सकता। भद्र अब एक शब्द नहीं सह सकेगा। उसका स्वर्ण-गौर मुख अरुणाभ हो गया है। यह बढ़ा, यह चला--यह उठा लकुट!

'हूँ!' बड़ा अच्छा किया! कन्हाई की एक हुंकार, दाहिना हाथ उठा और बस--रजक का सिर तो भुट्टे-सा धड़ से टूट गिरा भूमि पर और कूदने लगा। यह रक्त से लथ-पथ हो गयी है श्याम की हथेली! बालक प्रसन्न हो गये हैं। आगे, पास दौड़ आये हैं और मोहन--कमल-सुन्दर मुख पर रोष की यह मन्द अरुणिमा--कितनी छटा, कितनी सुषमा है इस रोष में भी।

"बाप रे!" ये भागे उस प्रधान रजक के अनुचर। कहाँ वस्त्र, कहाँ स्वर्ण-यष्टियाँ! प्राण बच जायँ--यही बहुत है। बिचारे अपने आभूषण, कटि में बँधी स्वर्ण-मुद्राएँ, सब फेंककर भागे जा रहे हैं। फेंकते जाते हैं--'कहीं ये बालक पीछा न करें! दौड़ायें नहीं किसी वस्तु के लिये उन्हें! हाथ से--केवल हाथ से उनके प्रमुख का मस्तक उड़ा दिया.....ओह!' बहुत सुना है उन्होंने और आज यह प्रत्यक्ष.....नहीं, प्राण नहीं देना है उन्हें। काल! मृत्यु--भागे जा रहे हैं वे। कहाँ?

किधर ? जहाँ जा सकें, जिधर प्राण बचें ! दूर—दूर भाग जाना चाहते हैं वे। 'पुकारें ? महाराज को पुकारें ? ना, कण्ठ से शब्द ही नहीं निकलेगा ! कहीं पुकार सुनकर ये बालक पीछे दौड़ पड़ें.....?

× × × ×

वस्त्र--रंग-विरंगे, चमकते धुले वस्त्र--इन्हीं वस्त्रों को तो कन्हाई माँग रहा था। अब ये बिखरे पड़े हैं। धोबी भाग गये--उनका भागना--उनका भय--बालक ताली बजाकर हँस पड़े। पुरजन—किसी ने तनिक भी खेद का भाव नहीं दिखाया। 'ये रजक--ये गर्वोद्धत धोबी--अच्छी शिक्षा मिली इन्हें।' जैसे सबके हृदयों में श्रद्धा का एक ज्वार ही और उमड़ पड़ा है।

'भैया, देख तो ! ये वस्त्र तुझे कितने सुन्दर लगते हैं !' श्याम ने नीले-नीले वस्त्र चुनकर बड़े भाई को सजाया। हाथ में लगा रक्त तो उसने पहले ही पोंछ दिया इन्हीं वस्त्रों में से एक वस्त्र में। अब तो वह स्वयं अपने लिये वस्त्र चुनने लगा है।

'तू तो रंग-विरंगा हो गया है !' तोक ने चिढ़ाया मधुमङ्गल को। सचमुच इसने कितने अटपटे रंगों के वस्त्र एक साथ लपेट लिये हैं।

'तू इन वस्त्रों में उलझकर गिर जायगा !' यह तोक तो इस प्रकार इन वस्त्रों में लिपट गया है कि कैसे चलेगा, यह सोचा ही नहीं इसने। सभी की तो यही दशा है—वस्त्र ही अटपटे हैं। सीधी बात—कछनी बाँधी और पटुका कंधे पर धरा--अब ये टेढ़े-सीधे वस्त्र--पर बड़े सुन्दर वस्त्र हैं। कनूँ इन्हें लपेट रहा है तो सुन्दर ही हैं। सब अपनी समझ से ठीक ही पहन रहे हैं। अब वस्त्र उनके आकार के अनुरूप नहीं--ठीक सजे नहीं, यह वे जानें भी कैसे।

'कितने भोले, कितने सरल, कितने सुन्दर हैं ये बालक !' वृद्ध वायक--स्नेहमय यह दर्जी बढ़ आया है किसी प्रकार भीड़ में से आगे। 'ये नगर-जन--ये लोग देख-देखकर मुस्कराते हैं, इन सरल बालकों की सहायता नहीं करते !' वृद्ध का स्नेह नेत्रों से झरने लगा है।

'आप आज्ञा दें तो मैं इन वस्त्रों को ठीक कर दूँ !' वह कतरी लाया है, सूचिका लाया है, कौशेय-सूत्र लाया है। 'इसी बहाने इन्हें सम्मुख खड़ा रखकर देख सकेगा--स्पर्श कर सकेगा वह !' हृदय स्नेह-मग्न हो रहा है उसका।

'हाँ बाबा, तू मेरे वस्त्र ठीक कर दे ! झटपट कर दे !' झटपट कर दे !' यह तोक आ खड़ा हुआ वायक के सम्मुख। 'इस मधुमङ्गल के मत करना भला !'

'मैं आप सबके वस्त्र ठीक किये देता हूँ ! अभी किये देता हूँ !' नेत्रों में जल भरा है, शरीर का पता ही नहीं, पर हाथ चल रहे हैं—शीघ्रता से चल रहे हैं। कर्तरी, सूचिका, वस्त्रों के मोड़—पता नहीं क्या-क्या कर रहा है वह। ये शत-सहस्र बालक—सभी को शीघ्रता है, सभी को पहले अपने ही वस्त्र ठीक कराने हैं। सबके ही वस्त्र तो एक साथ ठीक हो गये ! कैसे हो गये—पूछने की बात नहीं है। अन्तरिक्ष में कनूँ के श्रीचरणों के पीछे वह जो कोई महाशक्ति चला करती हैं--.....

वस्त्र ठीक हो गये--ये शेष वस्त्र, यह रजकों का छोड़ा हुआ द्रव्य, आभूषण--इनको कौन पूछे। जो वस्त्र ठीक लगे, शरीर पर आये, चुन लिये गये--अब इनको कौन देखे। बालकों को इनसे क्या सम्बन्ध। वे तो अभी इन पर चरण रखते आगे चले जायँगे। उनके चरणों के पाँवड़े बन जायँ ये--इतना बड़ा भाग्य भी क्या सहज प्राप्त हुआ करता है।

'बाबा, वस्त्र ठीक हो गये न ?' बाबा--श्याम इस वृद्ध वायक को आज बाबा कह रहा है। वायक--दर्जी--वात्सल्य का सागर उमड़ आया है उसके अन्तर में। वह कहाँ सुनता है, कहाँ देखता है कि उसका कार्य समाप्त हो चुका। यह कार्य कभी न समाप्त होता ! ये श्याम-गौर--ये इसी प्रकार उसके पास, उसके सम्मुख खड़े रहते। वह इनके वस्त्र ठीक किया करता--सदा, सदा, वह बस, ऐसे ही वस्त्र ठीक करता रहा--ये खड़े रहते !

'बाबा !' कन्हैया और क्या दे सकता है इस प्रेम के धनी को। किस मुख से इससे कहे वर माँगने के लिये और अब है ही क्या जो देने को रह गया है। वृद्ध वायक--वह तो इस लेन-देन की सीमा से परे, बहुत परे पहुँच चुका है कब का।

'बाबा, वस्त्र ठीक हो गये !' वस्त्र ठीक हो गये--कन्हैया का कण्ठ भी स्निग्ध हो चुका है। 'अब हम जायँगे !' ना, यह बात मुख से निकल नहीं सकेगी। कहाँ जायगा ? कैसे जायगा वह ? वृद्ध ने जिन रज्जुओं में उसके श्रीचरण आबद्ध किये हैं--'आगे जायगा राजपथ पर ! अग्रज, सखाओं के साथ आगे चला है वह। वृद्ध के लिये--वृद्ध के सम्मुख से--नहीं, वहाँ से तो अब कहीं नहीं जाना है उसे ! वहाँ से कहीं भी जाया जा भी तो नहीं सकता !' 'बाबा, तुम मेरा सारूप्य प्राप्त करो और जब तक लोक में रहो, परम ऐश्वर्य, अतुल सम्पत्ति, व्याधिहीन सबल शरीर, अव्याहत स्मृति एवं अबाध इन्द्रिय-शक्ति प्राप्त हो !' बाष्प-रुद्ध मोहन के कण्ठ का यह वरदान कोई सुने या न सुने, वे जगत् की अधिष्ठात्री भी तो मस्तक झुकाकर स्वीकार कर ही चुकीं। और अब आगे भी तो जाना ही ठहरा पथ पर; आगे-आगे-जा रहे हैं ये राम-श्याम सखाओं के मध्य। इनके ये नव-वस्त्र-भूषित श्रीअङ्गद, ये रंग-विरंगे कौशेय के बहुमूल्य वस्त्र--ये नगर-दर्शन करने जा रहे हैं।

—❀⊂❀⊂❀—

सुदामा माली

"भक्तिस्त्वयि स्थिरतया भगवन् यदि स्याद्दैवेन नः फलितदिव्यकिशोरवेशे ।
मुक्तिः स्वयं मुकुलिताञ्जलि सेवतेऽस्मान् धर्मार्थकाममगतयः समयप्रतीक्षाः ॥"

—श्रीलीलाशुक

'मेरे प्रभु—मेरे आराध्य पधारेंगे !' यह मालाकार सुदामा, आज कितने वर्षों पर सफल होगी प्रतीक्षा ! कितने वर्षों पर आज अँधेरे-अँधेरे ही वह कुसुम-चयन के लिये उठा। वे दिन—हाँ, वे भी दिन थे—'सुदामा की माला !' मथुरा में किसी को महोत्सव करना हो, किसी को भगवान् नारायण की विशेष आराधना करनी हो—सुदामा का स्मरण पहले किया जाता। कई दिन पहले उससे अनुरोध—हाँ, अनुरोध ही किया जाता। उसकी बनायी वनमाला के बिना क्या श्रीविग्रह का शृङ्गार पूरा हो सकता है ! सुदामा की माला—जैसे हृदय ही गूँथ दिया करता है वह। ऋतु, सौन्दर्य, सुरभि, सौकुमार्य—पता नहीं क्या-क्या ध्यान रखता है वह। कला—माल्य-ग्रन्थनकला है और उसके कलाकारों का अभाव कहाँ है; किंतु—किंतु सुदामा की जराजीर्ण कोमल अँगुलियाँ, सुमन जैसे उसके स्पर्श से ही खिल उठते हैं। उसकी कला—कौन स्पर्धा कर सकता है इस वृद्ध से !

दिन गये—वे दिन गये जब मथुरा में भगवान् नारायण को घर-घर सोत्साह अर्चा समर्पित होती थी, जब भव्य उपकरणों से मन्दिरों की झाँकी मानव के नेत्र-हृदय के कलुष को नित्य अपवारित किया करती थी। महाराज उग्रसेन—पर उनके स्थान पर बलात् कंस राजा हुआ ! पिता को बन्दी करके सिंहासन पर बैठनेवाला—वैसे ही उसके अनुचर। सुदामा की कला सुप्त हो गयी, वर्षों से प्रसुप्त। 'वह वृद्ध—बहुत वृद्ध हो चुका !' बहाना तो उचित ही है; पर सत्य—सत्य क्या छिपा है किसी से, सुदामा की अँगुलियाँ किसी के विलास का प्रसाधन प्रस्तुत करेंगी ? सुदामा की माला—वह तो श्रीहरि—उन परमाराध्य का ही उपहार है। उद्धत, गर्विष्ठ कंस सिंहासन पा ले—हृदयासन कहाँ मिला है उसे किसी का और सुदामा—यह माली सुदामा—नारायण को छोड़कर किसी मानव के कण्ठ में इसकी माला पड़ेगी ? सुदामा ने सुमनों से ही विदा ले ली। सुमनों से विदा—सुमनों से ही क्रीड़ा करने वाली अँगुलियाँ विरक्त हो गयीं उनसे। जिसके प्राण पुष्पों के स्वर में बोलते हों—वह फूलों से विरक्त हो गया !

'मेरे आराध्य पधारेंगे !' वर्षों—कल्प-के-कल्प बीते लगते हैं उसे तो और आज इन दीर्घ कल्पों के पश्चात् जब वह कुसुम चुनने उठा ! आज कुसुम-चयन करना है ! माल्य-ग्रन्थन करना है ! कुसुम—चिर-पितृ-वियोगी शिशु जैसे आज पिता को पाकर आनन्द-विह्वल हो उठे हों। उसके उद्यान में आज सम्भवतः लतिकाओं, वीरुधों, तरुओं तो क्या, तृणों—तृणों तक में पुष्प भर उठे हैं। पत्तों से भी अधिक पुष्प और पत्र—हाँ, ये अरुण, मृदुल हरित सुचिक्कण किसलय भी तो लगेंगे माल्य-ग्रन्थन में।

राशि-राशि पुष्प और इन सुरङ्ग, सुरभित, सुकुमार पुष्पों के मध्य सुदामा—माली सुदामा जैसे पुष्प मन्दिर में बैठा इन पुष्पों का अधिष्ठाता देवता ही है ! कुसुम, किसलय, तुलसीदल, नव दूर्वाङ्कुर—सुरभित पत्र, दल, पता नहीं क्या-क्या अपने चारों ओर सजाये बैठा है वह। माल्य—कुसुम-स्तबक—पता नहीं, क्या-क्या बनाना है उसे। उसकी अँगुलियाँ व्यस्त हैं, नेत्र निर्झर बने हैं, रोम-रोम पुलकित है, वह आज वर्षों पर पुनः माल्य-ग्रन्थन में लगा है।

सुदामा की सुप्त कला--नहीं, नहीं--यह कला क्या उसकी है! इतनी अनुपम मालाएँ बना भी सका है वह कभी। आज—आज ही तो उसके आराध्य आयेंगे! आज तो कला की अधिष्ठात्री भी हंस की पीठ से उसकी अँगुलियों के आसन पर आ विराजी हैं अपने को सार्थक करने के लिये। वह माल्य-ग्रन्थन कर रहा है--माल्य, स्तबक--पर कितने? पता नहीं कितने, वह बना रहा है, बनाता जा रहा है। कितने का प्रश्न कहाँ है--आज आराध्य आयेंगे! वे त्रिलोकेश्वर स्वयं पधारेंगे उसके यहाँ! हाँ, पधारेंगे, अवश्य पधारेंगे और वह रंग-बिरंगी, नाना प्रकार की मालायें, चित्र-विचित्र स्तबक बनाये ही जा रहा है। उसे संतोष ही नहीं हो रहा है किसी भी अपनी कृति से।

× × ×

'कन्हैया कहाँ जा रहा है?' पूछे कौन। सखाओं को तो नगर देखना है। राजपथ से ही चला जाय, यही कहाँ आवश्यक है। श्याम इस वीथी से मुड़ पड़ा है, इधर भी तो देखना है कि क्या है यहाँ। नगरवासी--वे भी तो अनुगमन ही कर सकते हैं! ये परम स्वतन्त्र--भला, इन दोनों बन्धुओं से क्या पूछें वे और क्या अनुरोध करें? कंस--क्रूर कंस--अभी-अभी उसका मुख्य रङ्गकार इन्होंने मार दिया है। उसके वस्त्र अब भी इनके अङ्गों पर हैं। सब तो महाभाग वायक--उस प्रेम स्निग्ध वृद्ध दर्जी की भाँति निर्भय नहीं हो सकते। आशङ्का, भय--पर इन भुवन-मोहन का साथ छोड़ना भी तो शक्य नहीं। हृदय इन्होंने चुरा लिया। अब पद तो स्वतः इनके पीछे चलते हैं।

'कनूँ, इस भवन में जा रहा है! यहाँ कुछ मिलेगा!' मधुमङ्गल की भङ्गी चपल हो रही है। वह भोग लगाने की ताक में है।

'यह तो दूसरे भवनों से बहुत छोटा, बहुत साधारण है! कौन रहता होगा इसमें!' भद्र अपनी ही उधेड़बुन में है। 'कन्हैया तो सचमुच इस भवन में ही जा रहा है। बिना पूछे, बिना सूचना दिये इस भवन में--किसका भवन है यह?'

'सुदामा, धन्य हो तुम!' नगर-वासियों के हृदयों में आज माली की वे श्रीनारायण के श्रीविग्रह के वक्षपर लहराती मालायें जैसे मूर्त हो गयी हैं। 'जो हमारे उपहारों की ओर देखता तक नहीं, हम जिसकी झाँकी के लिये इस प्रकार पीछे लगे हैं--हम क्या, बड़े-बड़े ऋषि-मुनि युग-युग के तप से जिसकी एक झाँकी चाहते हैं, वह स्वयं तुम्हारे यहाँ आया है! तुम उसे लेने मार्ग तक भी नहीं गये और वह तुम्हारे भवन—सीधे तुम्हारे भवन पहुँचा है।' पता नहीं क्या-क्या भाव उठ रहे हैं अन्तर में। अब तो द्वार पर ही प्रतीक्षा करनी है। इस छोटे गृह में कितने लोग आ सकेंगे? भीतर जाकर भीड़ कर देने से लाभ? बाधा भी तो पड़ेगी इनके आमोद में।

श्याम--कन्हैया वह तो सीधे भवन में ही चला आया है। जो उसे कब से--कितने समय से हृदय में लिये पूजता है, जो उसी के लिये प्रातः से व्यस्त बैठा है, उसका भी भवन पूछना है? उसे भी क्या परिचय की आवश्यकता रह गयी है? श्याम तो सीधे भवन में आया है और कितना मुग्ध-सा देख रहा है। यह माली--यह तो देखता ही नहीं। यह तो अपने ही कार्य में तन्मय है। 'माली!' गूँजी मेघ-गम्भीर सुधा-सिंचित वाणी।

'माली!' इतनी सुन्दर मालाएँ--इतने सुन्दर स्तबक--सभी बालक उत्सुक हो गये हैं।

'माली!' सुदामा अस्त-व्यस्त उठा। 'प्रभो!' कितना विह्वल कण्ठ है उसका। वह तो उठा, खड़ा हुआ और दण्ड की भाँति भूमि पर गिर पड़ा।

'माली!' दाऊ और श्याम आगे बढ़ आये हैं माली के समीप। यह मोहन उसके मस्तक पर अपने अभय कर फेर रहा है।

'स्वामी!' माली तो जैसे अब चैतन्य हुआ है। उसके नेत्रों की वारिधारा ने श्रीचरण धो दिये हैं--'पर, पर आराध्य आये हैं और वे अब तक खड़े ही हैं!' सुदामा शीघ्रता से उठा, उसने आसन बिछाया और इस आसन पर विराजने का उसे अनुरोध कहाँ करना है।

अर्घ्य, पाद्य, आचमन और--'जब दयामय ने इतना दया की है तो इस कंगाल के यहाँ जो सम्भव है....!' कन्हैया से भला, इतनी अनुनय की क्या आवश्यकता है। यह तो सदा से ऐसे ही नैवेद्य के लिये क्षुधातुर है और ये सुमधुर फल, ये परम सुस्वादु कन्द—बालकों ने आनन्द से भोग लगाया। ताम्बूल, चन्दन और मालाएँ—आज ही तो मालाएं सफल हुई। आज माल्य-ग्रन्थन कृतार्थ हुआ। सुदामा ने सुन्दर, सुरभित मालाएँ पहिनायी अपने हाथों और स्तबक दिये करों में।

'आज मेरा जन्म लेना सफल हुआ ! प्रभो, आपने इस अधम पर कृपा की, आपके पधारने से मेरा कुल पवित्र हो गया ! सभी देवता, समस्त पितर मुझ पर प्रसन्न हुए आज ! सर्वेश, आप ही जगत् के परम कारण हैं। यहाँ पृथ्वी पर तो आप प्राणियों के कल्याण के लिये, उनके अभ्युदय के लिये अवतीर्ण हुए हैं। जगदात्मा, सर्व-सुहृद्, दयामय, आपकी किसी के प्रति विषम दृष्टि भला, कैसे हो सकती है; पर जो आपका भजन करते हैं, उनपर आपका विशेष अनुग्रह होता ही है। स्वामी, मैं आपका सेवक हूँ ! मुझे आज्ञा दें ! आप किसी को कोई आज्ञा दें, यही आपका परमानुग्रह है ! आपके आज्ञा-पालन का सौभाग्य प्राप्त हो दीनबन्धु !' बद्धाञ्जलि, गद्गद-कण्ठ सम्मुख खड़ा सुदामा तो स्तुति ही करने लगा है। यह स्तवन—ये बालक तनिक चकित-से हो रहे हैं।

'माली, हम तो तुम्हारी मालाओं के लिये ही आये !' कन्हैया के अधरों पर यह उज्ज्वल स्निग्ध स्मित। मालाएँ—माली सुदामा की मालाएँ—सुदामा तो आनन्दपूर में प्रवाहित होने लगा है। वह मोटी-मोटी वैजयन्ती वनमाला पहना रहा है पुनः सबको। उसकी ये मालाएँ—धन्य हैं ये।

'माली, हम बड़े प्रसन्न हुए ! बड़ी सुन्दर हैं तुम्हारी मालाएँ ! माँगो तो—तुम क्या लोगे ? बिना संकोच के माँगो !' जो इतने स्नेह से, इतनी श्रद्धा से मालाएँ दे, उसे क्या उनके बदले में कुछ न मिलेगा ! कोई अकड़ता, आँखें दिखाता तब तो बात दूसरी थी। फिर तो उसका सिर ठीक कर देना ही उचित रहता है; पर यह माली—सखाओं ने स्नेहपूर्वक श्याम की ओर देखा। कितना चतुर, कितना उदार है उनका कनू। देने के लिये अभाव क्या है। माली चाहे जो माँगे, लौटकर बाबा से कह ही भर तो देना है।

'आपके श्रीचरणों में मेरा अविचल अनुराग हो ! जो आपके हैं—आपके भक्त हैं, उन्हीं से—केवल उनसे ही मेरा सौहार्द हो और समस्त प्राणियों के प्रति हृदय में सदा दयाभाव बना रहे !' क्या मांगा इस माली ने ? यह तो कन्हैया के चरणों पर गिरकर अञ्जलि फैलाकर दीन की भाँति गिड़गिड़ा-सा रहा है। कनू जब स्वयं देने को उद्यत है—माँगता क्यों नहीं यह ?

'अच्छी बात !' श्याम का स्वस्थ कण्ठ माली के प्राणों को परितृप्त कर गया। 'मैं अपनी ओर से तुम्हें बल, दीर्घायु, कान्ति, यश और सम्पत्ति देता हूँ—ऐसी सम्पत्ति जो तुम्हारे वंश में बढ़ती ही रहेगी !' मोहन ने हाथ रखा पुनः वृद्ध माली के मस्तक पर।

माली—वह तो तन-मन की सुधि ही भूल गया है। वह जिस आनन्द-सिन्धु में निमग्न है—पर बाहर नगरवासी आकुल हो रहे हैं। अब बाहर चलना चाहिये। कन्हैया ने दाऊ की ओर देखा। दोनों भाई सखाओं के साथ भवन से बाहर निकले। माली—महाभाग माली, वह तो इस समय शरीर-संसार दोनों से बहुत ऊपर है—बहुत ऊपर।

—❀⊂❀⊂❀—

कुब्जा पर कृपा

"मधुरैकरसं वपुर्विभोर्मथुरावीथिचरं भजामहे।
नगरीमृगशावलोचनानां नयनेन्दीवरवर्षवर्षितम् ॥"

—श्रीलीलाशुक

'सुन्दरी, कौन हो तुम ?' यह कन्हाई है न, बड़ा चपल है यह। बेचारी कूबरी, पता नहीं कहाँ जा रही है। इतनी शीघ्रता से, इतनी उतावली में, इसी राजपथ से यह निकल जाना चाहती है इस नटखट के समीप से। इसकी यह कूबर से झुकी कटि—इसे तो देखकर सभी का जी चाहता है इसे चिढ़ाने को और फिर कान्ह—पता नहीं हाथ में स्वर्ण-थाल सम्हाले, रत्न-खचित पात्रों में विविध रङ्गों के अङ्गराग सजाये यह कहाँ चली जा रही है। कहीं भी जा रही हो, मोहन को तो चिढ़ाना है। पर यह क्या चिढ़ा रहा है ? सुन्दरी—सुन्दरी तो है यह। सुन्दर सुडौल कमल-मुख और यह युवावस्था—यदि कूबरी न होती.....। श्याम तो पूछता ही जा रहा है—हँसता हुआ पूछता ही जा रहा है—"तुम किसकी हो ? किसके लिये ये अङ्गराग ले जा रही हो ? हमें बताओ तो ! तुम्हारे अङ्गराग तो बड़े सुरभित दीखते हैं, हम लोगों को यह अङ्गराग दो ! इससे तुम्हारा तत्काल कल्याण होगा !"

कुब्जा—किसकी बताये वह अपको ? दासी ही तो है—दासी की भला, क्या सत्ता—लेकिन यह विश्वविमोहन नव-जलधर-सुन्दर रूप, यह मादक बंक विलोकन, यह रस-स्निग्ध हास्य और यह स्वर—यह स्वर तो सीधे प्राणों को उन्मद बनाता भीतर—भीतर ही प्रविष्ट होता जा रहा है। कुब्जा—दासी कुब्जा, उसके हृदय में इस घनश्याम ने जो अपार रस-वर्षा कर दी है अभी—अभी और वह भी अकल्पित, अतर्कित, सहसा—कुब्जा के प्राण उसमें स्नात हो गये हैं। वह इस आग्रह—इस अनुरोध, इस सम्मान को सम्हाल सकेगी ! उसकी भी वाणी से रस फूट पड़ा है—"सुन्दर, मैं कंस की दासी हूँ और मेरा नाम त्रिवक्रा है !"

त्रिवक्रा—रूपके अनुरूप ही है नाम। बालक हँस पड़े हैं। मोहन मुस्करा रहा है; पर कुब्जा—आज इस रस-सागर ने उसे रसमय कर दिया है ! यह अनुलेपन चाहता है न, कुब्जा यह सौभाग्य छोड़ कैसे दे—"मेरा कार्य है अङ्गराग प्रस्तुत करना और मेरे हाथों का लगाया अङ्गराग भोजपति कंस को अत्यन्त प्रिय है !"

कंस की दासी है यह। अङ्गराग बनाना इसका कर्तव्य है और कंस को इसी के हाथ का लगाया अङ्गराग प्रिय है ! बेचारी इसी से इतनी शीघ्रता में जा रही थी। यह भी तो सम्भव नहीं कि स्वयं श्यामसुन्दर को अङ्गराग लगा दे और कंस के पास किसी दूसरे को भेज दे। यह उद्धत धोबी थोड़े ही है कि इससे बलात् अङ्गराग छीना जाय। न जाय कंस के समीप तो वह दुष्ट पता नहीं क्या दण्ड दे। कितनी सरल है यह !

"आपको छोड़कर भला, यह अङ्गराग और कहाँ सार्थक हो सकता है !" अरे, यह तो कंस की बात ही नहीं सोचती। अपना स्वर्ण-थाल लिये यह श्यामसुन्दर के सम्मुख ही आ गयी है। अपने हाथ से सजायेगी वह यह श्याम श्रीअङ्ग।

"पहले भैया को !" दाऊ की ओर संकेत भर कर दिया मोहन ने और यह कस्तूरिका की सुरभि से पूर्ण श्याम अनुलेपन, कितना भव्य लगता है यह स्वर्ण-गौर दाऊ के श्रीअङ्गों पर। इसमें यह रक्तचन्दन-कुङ्कुम का मण्डन—कुब्जा की सुरुचि है ही प्रशंसनीय। श्याम के अतसी-कुसुम-कलेवर पर इसने गोरोचन केसर के पीत और कर्पूर-मलयज के उज्ज्वल अङ्गरागों से जो मण्डन किया है—भोजपति को यदि इसी दासी के करों का अनुलेपन प्रिय है तो आश्चर्य की बात क्या है! ये राम-श्याम—आज ये सब कंस के ही भाग पर अधिकार करने पर तुल गये हैं। भोजराज के वस्त्र ले लिये और अब यह उनका अङ्गराग—पर ये अपने अङ्गों के वर्ण से भिन्न अङ्गरागों में कितने सुन्दर हो गये हैं! कुब्जा—यह कूबरी तो एकटक—अनिमेष देखने लगी है इस दिव्य छटा को।

× × × ×

"तू चञ्चल मत होना भला !" क्या करने जा रहा है यह चपल। इसने अपने चरणों के द्वारा कुब्जा के दोनों पैरों के अग्रभाग दबा क्यो दिये ? दाहिने हाथ से ठुड्ढी पकड़ी और—तड़-तड़, कड़-कड़—एक हल्का झटका—लो !

'ओह !' आश्चर्य से कुब्जा थकित हो गयी। लोग स्तम्भित-से देखते रह गये। 'कूबर भाग गया ! कन्हैया ने सीधी कर दिया इसे !' बालकों ने सबसे पहले ताली बजायी और उनका प्रसन्न कोलाहल गूँज गया।

'तुम्हारा तत्काल कल्याण होगा !' नगर-वासियों ने मोहन की उस वाणी पर तब क्या इतना ध्यान दिया था ? तत्काल कल्याण—यह जन्म की कूबरी—एक पल, कदाचित् उससे भी कम—यह सीधी खड़ी है उनके सम्मुख। इन श्रीकृष्णचन्द्र ने तनिक स्पर्श किया इसे और यह—यह तो जैसे कोई सौन्द ° की स्वर्ग-दिव्य सुन्दरी हो गयी इसी पल में। ये सीधे समान अङ्ग, यह रूप राशि—पुरवासियों ने हाथ जोड़े और मस्तक झुका दिया।

× × × ×

'ओह !' कुब्जा—अब कुब्जा कहाँ रही है वह ! पता नहीं कहाँ गया कूबर। लेकिन क्या शरीर ही बदला है ? वह स्पर्श—वह आधे पल का स्पर्श—उस स्पर्श ने शरीर के साथ पूरा अन्तः—समूचा भीतरी भाग बदल दिया। वह स्पर्श—वह स्पर्श—कुब्जा के प्राण जैसे जल से बाहर निकाले मत्स्य की भाँति तड़पने लगे हैं। यह रूप—यह त्रिभुवन-सुन्दर रूप—जैसे विश्व के अणु-अणु में यही रूप बस गया है। यह नीलसुन्दर—बस यही ! नेत्रों के सम्मुख जैसे और कुछ है ही नहीं।

"वीर, अब तुम यहाँ इस प्रकार क्यों खड़े हो ? प्यारे, आओ ! आओ चलो; हम घर चलें ! मैं तुम्हें छोड़कर कहीं नहीं जा सकती। पुरुष-श्रेष्ठ, तुम्हारे लिये मेरा चित्त उन्मथित हो रहा है, मुझपर कृपा करो ! आओ—घर चलो !" ये इतने नगरवासी, मथुरा का यह राजपथ—कुब्जा कहाँ देखती है यह सब। इसने तो कन्हाई के पटुके का छोर पकड़ लिया है और उसे अपने घर चलने का आग्रह करती खींचने लगी है।

'ये सखा, ये पुरजन और यह दाऊ भैया—यह क्या कर रही है ?' श्याम-सुन्दर ने देखा बड़े भाई की ओर, सखाओं की ओर और खुलकर हँस पड़ा। यह अच्छी रही—"सुन्दरी, तुम इतनी शीघ्रता मत करो ! तुम बहुत अच्छी हो ! बहुत अतिथि-वत्सला हो ! हम पथिकों पर तुम्हारा अपार अनुराग है ! तुम लौटो अब अपने घर ! मैं आऊँगा तुम्हारे यहाँ—अवश्य आऊँगा ! तुम घर तो चलो !"

'मैं आऊँगा—अवश्य आऊँगा !' कुब्जा को इससे अधिक सुनना भी कहाँ है। 'ये आयेंगे ! उसे आज्ञा-पालन करना चाहिये। वह दासी है—इन श्रीचरणों की दासी है अब तो और आज्ञा-पालन करना ही उसका कर्तव्य है, धृष्टता उचित नहीं—दुराग्रह—कहीं ये रूठ गये तो ? वह आज्ञा मानेगी—आज्ञा मानेगी वह !

'धन्य है यह दासी !' नारियों के भी तो हृदय है। 'ये कोटि-काम-कमनीय, मन्मथ-मन्मथ—और इस दासी को इनका स्पर्श मिला, सम्मान मिला !' हृदय पता नहीं कैसा हुआ जा रहा है। वस्त्र अस्त-व्यस्त हो रहे हैं, केश-बन्ध स्वतः खुल गये हैं, आभूषण अङ्गों से अपने आप गिरते-से जा रहे हैं और ये सब तो जैसे मूर्तियाँ हों इन स्वर्ण-मणि-भित्तियों पर चित्रित की हुई।

ये मथुरा के सम्मान्य जन—अब साहस कुछ बढ़ गया है। 'वायक ने इनके वस्त्र ठीक किये, सुदामा ने माला पहनायी, कुब्जा दासी ने अङ्गराग लगाये—ये महामहिम, पर कितने सरल, कितने उदार हैं ! इनसे भला, संकोच क्या !' कन्हैया से भी कोई संकोच करे—कोई ताम्बूल खिला देता है, कोई मालाएँ पहना देता है, कोई चन्दन लगा जाता है और कोई नीराजन लिये प्रस्तुत है। राम-श्याम की अर्चा चल रही है। ये मन्द-मन्द चलते जा रहे हैं अन्तर के अनुराग की आराधना स्वीकार करते।

धनुर्भङ्ग

"शरणागतवज्रपञ्जरे शरणे शार्ङ्गधरस्य वैभवे।
कृपया धृतगोपविग्रहे कियदन्यन्मृगयामहे वयम्॥"

—श्रीलीलाशुक

'कल धनुर्यज्ञ है। गोप-गण कंस के उस महाधनुष की बड़ी प्रशंसा करते थे। बड़ी कठोर तपस्या करके उसे वरदान के रूप में पाया है कंस ने। धनुष—कैसा होगा वह धनुष ?' कन्हैया के मन में कुतूहल जगा है या यह कृष्णचन्द्र कंस की आशा की उस महारीढ़ को अभी ही देख-परख लेना चाहता है, कौन कह सकता है।

'महाराज कंस के लिये वह धनुष अत्यन्त सम्मान्य है। उसे रखने के लिये एक विशाल भवन बनवाया है उन्होंने, शतशः शूर अहर्निश सशस्त्र प्रमादहीन होकर उसकी रक्षा करते हैं। स्वयं महाराज कंस अपने करों से उसकी नित्य पूजा करते हैं। अन्ततः वे इसी धनुष को लेकर तो दिग्विजयी हो सके हैं। उनके अतिरिक्त कोई उसे उठाने में समर्थ नहीं! कल धनुर्याग है—कल वह धनुष मल्ल-भूमि में लाया जायगा। उसकी विधिवत् अर्चा होगी। महाराज कंस चुनौती देंगे कि कोई उठा तो ले धनुष को—कोई नहीं उठा सकता। स्वयं महाराज उठायेंगे धनुष, उसपर प्रत्यञ्चा चढ़ायेंगे और.....!' पुरवासियों की वाणी आगे कहने में काँपती है। 'पता नहीं किस भाग्यहीन की आयु समाप्त हुई है। कंस धनुष उठायेगा—चढ़ायेगा, शर-संधान करेगा और.....और वह कहता है कि इस महाधनु को बलि भी तो चाहिये! कोई-न-कोई उसके बाणों से विद्ध होगा—पता नहीं कौन, किसी को अनुमान तक नहीं हो पाता। बेचारा मुमूर्षु—वह दर्शक ही तो रहता है—एक चीत्कार और कोई भी दर्शक भूलुण्ठित होने लगेगा। कंस—उसके असुर अनुचर अट्टहास करेंगे! प्रशंसा करेंगे चाटुकार निर्मम नरेश के लक्ष्यवेध की। कल—कल धनुषयज्ञ है, पता नहीं किसकी आयु समाप्त हो रही है। कंस की राजाज्ञा घोषित हो चुकी है—उपस्थित होना ही पड़ेगा इस महायज्ञ में। उपस्थित न होने का अर्थ पता नहीं क्या लगाये वह कुटिल—और.....।' भय से मुख पीत हो उठता है। कौन कह सकता है कि कल का लक्ष्य—बलिपशु वह नहीं हो जायगा!

'हूँ!' श्याम की यह हुंकृति, यह दृष्टि—यह हुंकार ही मानो अभयदान देती गूँज गयी है। 'कहाँ है वह धनुष ?' उस नरहत्या से अपवित्र धनुष को महायज्ञ से पूर्व ही सम्भवतः पवित्र कर देना है इसे। धनुष न सही, रक्षक भीतर न जाने देंगे तो यह उसका भवन ही देख लेगा। पुरवासियों से पूछता चला जा रहा है। 'भवन—बस, भवन बता दो! धनुष है कहाँ ?' धनुष है तो देखा क्यों नहीं जा सकता। सखा उत्कण्ठित हो रहे हैं। हाँ, धनुष तो देखना ही है।

× × × ×

'यह विशाल भव्य भवन—वह क्या धनुष रखा है! धनुष तो द्वार के सम्मुख ही रखा है विशाल प्राङ्गण में। वज्र वेदिका पर यह पुष्प-पूजित, सिन्दूर-चर्चित, रत्न-खचित महाधनु! कितना चित्र-विचित्र, कितना रंग-विरंगा, कितना सुन्दर और कितना विशाल है यह!' बालक द्वार के समीप बढ़ आये हैं। अद्भुत है यह धनुष!

'कनूँ, तू देख तो सही! तुझसे उठेगा यह ? तुझसे न उठे तो मैं आऊँ।' पुरजन कहते थे कि यह किसी से नहीं उठता। अन्ततः यह अपने गिरिराज से भारी तो है नहीं। भद्र को लगता है कि बारी-बारी से इसे उठाकर देखा तो जाय, क्यों नहीं उठेगा। 'दाऊ भैया तो उठा ही लेगा!

सब मिलकर उठायेंगे !' उठाना है—सब मिलकर तो उठा ही लेंगे; पर यह कन्हैया ही यदि उठा ले, यही सबसे सुकुमार है। पीछे झगड़ेगा कि मैंने ही उठाया—पहले यही उठा देखे तो अच्छा।

'डरना मत, ये सब राक्षस ही हैं !' ये इतने सशस्त्र प्रहरी—ये सब तो बड़े ध्यान से द्वार की ही ओर देख रहे हैं। ये यदि धनुष न उठाने दें ? श्याम कहता है कि राक्षस हैं सब। काले-काले, मोटे-मोटे, बुरे-बुरे-से—अवश्य सब राक्षस ही हैं। 'राक्षस—बड़े दुर्बल होते हैं राक्षस तो। देखने में पहाड़-जैसे और उन्हें तो यह कनूँ ही चुटकी से मसल दे....। ये राक्षस हैं—खूब चिल्लायेंगे, पूरी धमाचौकड़ी करेंगे, घूरेंगे, गुर्रायेंगे—बड़ा आनन्द आयेगा ! राक्षसों से कौन डरे।' बालकों ने एक बार प्रहरियों की ओर देखा। सब-के-सब हँस पड़े। उपेक्षा, कौतुक-विनोद का यह उन्मुक्त हास्य।

'अरे, ठहरो ! रुको ! कहाँ आते हो तुम सब !' ये चिल्लाये प्रहरी। 'द्वार तक, द्वार से कुछ भीतर तक सही—पुरजन द्वार तक आकर महाराज के इस धनुष को आदरपूर्वक मस्तक झुका जाते हैं। ये बालक—बड़े सुन्दर बालक हैं ये। द्वार से कुछ भीतर आकर धनुष देख लें सब, क्या बिगड़ता है। कौतूहल शान्त हो जाय इनका; पर यह क्या, ये तो भीतर दौड़े आ रहे हैं !'

'ठहरो ! रुको ! छुओ मत !' शस्त्र उठाये प्रहरी झपटे। ये सब धनुष को छूना चाहते हैं। ओह ! यह श्यामकिशोर तो धनुष के समीप खड़ा हो गया वेदिका पर। बड़े धृष्ट हैं सब। इन्हें भगा देना होगा।

कन्हैया तो पहुँच भी गया धनुष के पास, यह उठाया इसने धनुष अपने बायें हाथ से। यह वेदिका पर नोक टेककर झुकाया इसने और लो—ज्या चढ़ गयी। अब तो यह उठाकर ज्या को खींचकर देख लेना चाहता है, कितना खिंच सकती है यह।

बालक ताली बजाते हैं, किलकते हैं ! प्रहरी आश्चर्य-चकित, आतङ्क-स्तब्ध झपटे आ रहे हैं, द्वार पर पुरजनों की भीड़ स्तब्ध-सी देख रही है। एक निमेष—एक पल ही तो। अच्छा खेल है यह भी। कन्हाई कूदा वेदी पर, धनुष उठा, ज्या चढ़ी, और उठाकर खींचने लगा है यह—एक निमेष ही तो लगा है इनमें और अब.....।

एक भीषण शब्द—कोई महाग्रह जैसे भूमि पर गिरा हो ! सहस्र-सहस्र वज्रपात हुए हों ! दिशाएँ पूरित हो गयीं ध्वनि से। प्रतिध्वनि ने गगन गुञ्जित कर दिया। भवन की भित्तियाँ हिल उठीं। पक्षी चीत्कार करते गगन में व्याकुल भागने लगे हैं। पशुओं ने बन्धन तोड़ लिये हैं और वे दौड़ रहे हैं इधर-उधर चिल्लाते हुए। सभी चौंके, कुछ गिरते-गिरते बचे। प्रहरियों के हाथों से शस्त्र गिर पड़े।

यह कनूँ—इसने तो धनुष के दो टुकड़े फेंक दिये हैं वेदिका पर। यह पड़ा है कंस के गर्व का भग्न मेरुदण्ड। हो चुका धनुर्यज्ञ। श्याम तो इस प्रकार देख रहा है कभी सखाओं की ओर और कभी धनुष की ओर, जैसे कहता हो—'यह तो बहुत जीर्ण था। देखने में ही इतना मोटा था यह ! कितनी शीघ्रता से टूट गया, ऐसा क्षीणसत्व धनुष !'

× × × ×

'क्या हुआ ?' इतना भीषण शब्द ! कंस का मुकुट गिर पड़ा राजसभा में। भय के कारण शरीर काँपने लगा ! 'हुआ क्या ?' श्रीकृष्ण मथुरा में आ गये हैं, यह क्या भूलने की बात है ? पता नहीं क्या कर रहे हैं वे बालक !

'धनुष टूट गया !' यहाँ धनुष के प्रहरियों का तो जैसे रक्त सूख गया। 'पता नहीं महाराज क्या करेंगे !' स्तब्ध रह गये सब एक क्षण। 'पकड़ो। बाँध लो इन्हें ! भाग न जायँ ! इन्हें पकड़ ले चलो !' हाथ से गिरे शस्त्र उठाकर दौड़े वे सब द्वार की ओर। 'कोई बालक कहीं भाग गया—महाराज क्षमा नहीं करेंगे !'

'अच्छा !' यह दाऊ कूद गया अपने अनुज के समीप। यह उठा लिया इसने धनुष-खण्ड। 'बड़े दुष्ट हैं ये सब ! कनूँ को पकड़ना चाहते हैं !' दाऊ के नेत्रों में आयी अरुणिमा और अब ले धड़ाधड़ ! यह कन्हैया ने भी बड़े भाई का अनुकरण किया, इसने भी उठाया धनुष का दूसरा खण्ड।

'कनूँ ! कनूँ !' भद्र, वरूथप, सुबल—अब भला, कौन शान्त रह सकता है। ये उठे बालकों के हाथ के लकुट। 'ये दुष्ट राक्षस—ये उनके कन्हाई पर प्रहार करने चले हैं !'

'नहीं ! तुम सब तनिक खड़े तो रहो !' कन्हैया पुकारता है, रोकता है—'ये राक्षस ही तो हैं ! मैं अकेला ही बहुत हूँ और यह दाऊ भया.....।' हाँ, यह दाऊ भी मना करता है। यह तो नेत्रों के संकेत से ही रोकता है। दोनों अकेले ही इस धूम का आनन्द लेना चाहते हैं—बड़े वैसे हैं.....पर दाऊ मना करता है न ! बालक लकुट उठाये प्रतीक्षा कर रहे हैं। कोई राक्षस राम-श्याम की मार से बचकर आगे बढ़ा—दोनों ओर ये सहस्रशः लकुट उसकी कपाल-क्रिया करने में एक क्षण नहीं लगा सकते।

'क्या हुआ ?' वहाँ कंस अभी चर ही भेजने की सोच रहा था और पहुँच गया एक रक्त से लथपथ प्रहरी—किसी प्रकार—किसी प्रकार भाग सका है—'महाराज, बलराम—श्रीकृष्ण ने धनुष तोड़ डाला ! रक्षकों को मार रहे हैं वे उन्हीं धनुष-खण्डों से !' कैसे मार रहे हैं—यह तो इसके अङ्ग ही बताये देते हैं।

'धनुष तोड़ डाला ! मार रहे हैं !' कंस तो जैसे भय से उन्मत्त हो जायगा। 'सेनापति ! दोनों चले न जायँ !' कहाँ इतना अवकाश है कि बताये कि कितनी सेना भेजी जाय। राम-श्याम—उनके लिये तो पूरी सेना भी पर्याप्त होगी, कंस का हृदय कहाँ यह मानता है।

सेना—इतनी शीघ्र जितनी भी सेना प्रस्तुत हो सकती है, उसे ही लेकर तो सेनापति को जाना है। स्वयं सेनापति को जाना है और फिर सेनापति जायँ या और कोई—धनुष-खण्ड लिये राम-श्याम दण्डधर यमराज की भाँति भवन में आघात जो कर रहे हैं ! आघात, रक्त की धारा, चीत्कार और बस। शवों की ढेरी ही बढ़नी है वहाँ। उस भवन-प्राङ्गण में भरे हुए सैनिक—बाण, भुशुण्डी, शतघ्नी—इनके उपयोग को अवकाश नहीं। भल्ल, मुद्गर, शक्ति, परिघ, खड्ग—हाथ उठे तो कोई शस्त्र प्रयुक्त हो। खड्ग कोष से आधा भी नहीं निकला, भल्ल उठ भी नहीं सका और मस्तक का कचूमर हो गया। फट्-फट्, भड़-भड़—आज ये गोरस के घट फोड़ने के चिर अभ्यस्त कर सिर फोड़ने में जुटे हैं। कहाँ ? किधर—विद्युत्-गति से ये कूदते, उछलते—कोई कहाँ देखे इन्हें। भवन-प्राङ्गण शवों से पट गया है। रक्त की धारा चल रही है जल निकलने के मार्गों से।

'भैया !' कन्हाई ने देखा इधर-उधर ! हाथ का रक्त टपकता धनुष-खण्ड फेंक दिया। 'अब इसकी क्या आवश्यकता है। कोई भी असुर तो नहीं दीखता यहाँ !' कोई कराहता भी नहीं है, खड़ा तो क्या होगा। दाऊ ने भी धनुष-खण्ड भूमि पर गिरा दिया।

रक्त से लथपथ वस्त्र—अलकों से रक्त की बूँदें टपक रही हैं और ये बालक—कितनी उमंग से अङ्कमाल दी है इन्होंने राम-श्याम को। इनके वस्त्र ही कहाँ अछूते हैं। ये कंस के वस्त्र—अब इन्हें यहीं विसर्जित कर देना चाहिये। अपने वस्त्र ही ठीक हैं। अपनी कछनी और पटुके के ऊपर ही तो सबों ने ये वस्त्र पहन लिये थे। अच्छा ही हुआ - अपने वस्त्र रक्त पड़ने से बच गये हैं। सबने रजक से छीने वस्त्र वहीं उतार फेंके। भवन-कक्ष के निर्मल जल से भली प्रकार प्रक्षालन हुआ अङ्गों का और स्नान-से किये निकले ये सब भवन से बाहर।

बिखरी अलकें, कटि में कछनी, कंधों पर पटुके—अङ्गराग, माल्य, अलकों के सुमन - सब विसर्जित हो चुके भवन में ही; वही वेष, हास्य - वही मन्द-गयन्द गति, वही चपल-चपल निरीक्षण—जैसे कुछ हुआ ही नहीं। जिस प्रकार आये थे शिबिर से वैसे ही तो लौटे जा रहे हैं।

'कंस की उमड़ती-घुमड़ती अपार वाहिनी; वे शस्त्र-सज्ज विश्वप्रसिद्ध असुर—पूरी सेना ही आयी थी इन्हें मारने !' नगर के लोगों में पता नहीं क्या-क्या चर्चा फैलने लगी है—'भवन लोथों

से भरा पड़ा है ! जल निकलने के मार्गों से भलभलाता रक्तनालों की भाँति प्रवाहित ही होता जा रहा है। पूरी सेना—मथुरा की प्रायः पूरी सेना मार दी इन दोनों भाइयों ने !' जितने मुख, उतनी बातें।

'कितनी देर ही लगी इन्हें भवन में ! शरीर पर न रक्त का एक बिन्दु है और न श्रम का एक स्वेद सीकर !' अद्‌भुत-अद्‌भुत बातें कहने लगे हैं लोग। "यह भुवन-मोहन रूप, यह तेजोमय श्रीविग्रह, यह पराक्रम, यह प्रगल्भता और उसपर भी यह शील, मृदुलता—अवश्य ये दोनों भाई देवश्रेष्ठ हैं !' मार्ग में दोनों ओर अब लोग श्रद्धा-भक्तिपूर्वक हाथ जोड़कर मस्तक झुकाने लगे हैं।

'ये लोग तो अब उस स्नेह से नहीं मिल रहे हैं ! वह उत्कण्ठा, वह स्वागत की प्रेमभरी आतुरता—ये तो अब बड़े गम्भीर बन गये हैं।' कन्हैया को क्या यह पूजा--यह गम्भीर श्रद्धा रुचिकर हो सकती है। उसे तो हृदय चाहिये--उन्मुक्त, संकोचहीन हृदय। अब भला, नगर-दर्शन में क्यों लगेगा उसका मन।

'बहुत विलम्ब हो गया ! बाबा प्रतीक्षा करते होंगे !' हाँ बहुत विलम्ब हो गया। भगवान् भास्कर पश्चिम गगन में अरुणाभ हो चले। अब लौटना चाहिये।

× × × ×

'कृष्णचन्द्र !' बाबा ने बाहु फैलाकर अङ्क में लिया। 'राम, तुम लोगों ने कोई धूम तो नहीं की ? किसी ने कुछ कहा तो नहीं ?' कितनी आशङ्का, कितना भय लिये व्याकुल होते रहे हैं ये गोपगण।

'बाबा, मथुरा बड़ी अच्छी है !' यह कन्हाई कहाँ प्रश्नों का उत्तर देता है। यह तो अपनी ही कहेगा। इसने क्या-क्या देखा है, कितनी अद्‌भुत वस्तुएँ देखी हैं।

'तुम लोग भूखे हो, पहले भोजन तो कर लो !' बाबा को ही कहाँ अपने प्रश्नों का स्मरण है। बालकों को हाथ-मुख धुलाना है। पता नहीं कहाँ-कहाँ घूमे हैं सब। उष्णोदक से भली प्रकार पद धोने से श्रान्ति दूर हो जायगी और कल शिवरात्रि है, व्रत का दिन है। आज इन्हें पायस-भोजन कराना है। सचमुच कन्हैया थक गया है आज। सभी थक गये हैं। इतना शीघ्र भोजन करके नहीं तो क्या ये सब निद्रित हो जाते ? सबोंने भोजन किये और सो गये। मोहन कितनी गाढ़ निद्रा में, कितने सुख से सोया है।

—❀⊂❀⊂❀—

गजोद्धार

'नानाभावैर्लीलयैवोपपन्नैर्देवान् साधूँल्लोकसेतून् बिभर्षि ।
हंस्युन्मार्गान् हिंसया वर्तमानान् जन्मैतत्ते भारहाराय भूमेः ॥'

—भागवत १०।६३।२७

कंस की व्याकुलता का पार ही नहीं है। बलराम, श्रीकृष्ण—वसुदेव के दोनों पुत्रों ने धनुष तोड़ डाला—वह धनुष, जिसे कंस को छोड़कर दूसरा कोई अब तक चढ़ा नहीं सका था। धनुष तोड़ा, रक्षकों को मारा—सहायता के लिये भेजे गये सैनिकों को भी मार डाला ! अब क्या होगा ? धनुष तो गया—गया उसके साथ धनुष-यज्ञ। एक अवसर था—धनुष पर ज्या चढ़ाकर, शर-संधान करके सहसा लक्ष्य बना लेते उसे—उस वसुदेव-पुत्र को ! गया वह भी अवसर !' मल्ल हैं, हाथी है, और शूर हैं—कहाँ आशा टिकती है। 'यदि ये सब सफल न हो सके···!' अपने शयन-कक्ष में एकाकी कंस इधर-से-उधर घूम रहा है।

'हैं ! यह क्या ? यह क्या ?' कक्ष के मणि-प्रदीप से यह जो छाया पड़ रही है भित्ति पर—इस छाया में तो मस्तक ही नहीं है ! यह सिरहीन कबन्ध !' सिर है तो—कंस ने व्याकुल होकर अपना मस्तक टटोला ! 'यह छाया में मस्तक क्यों नहीं है ?'

'यह कौन है ? कौन आया ?' चीत्कार निकल गयी उसके मुख से। 'यह दो मस्तकों की छाया--कोई तो दूसरा नहीं आया है ! यह तो उसी की छाया है। उसके तो एक ही सिर है--छाया के ये दो मस्तक ! ये प्रदीप—ये तारक ? भय के मारे कक्ष से प्राङ्गण में आ गया; पर ये सब तारे, सब प्रकाश दो-दो क्यों दिखायी पड़ते हैं उसे ?'

'ये मेरी छाया में तो छिद्र ही छिद्र हैं ! मेरे शरीर में से ये स्थान-स्थान से किरणें पारदर्शी हो गयी है !' कानों पर हाथ रख लिया उसने। ये अमङ्गल—ये अपशकुन ! कहीं पीछा नहीं छूटता है इनसे। 'क्या, क्या प्राण-वायु का शब्द नहीं सुनायी पड़ रहा है ?' नहीं ही तो सुनायी पड़ता है। इतनी सावधानी से कानों को बंद करने पर भी कहाँ सुनायी पड़ता है भीतर की वायु का कोई शब्द !

'ये वृक्ष—ये सब-के-सब स्वर्ण-पत्रों से जैसे मढ़ दिये गये हों !' भवन में निद्रा नहीं आती, बड़े अमङ्गल शकुन दीख पड़ रहे हैं। कदाचित् पुष्पोद्यान में तनिक विश्राम मिले—व्यर्थ है यह आशा। यहाँ नन्हे-नन्हे वारुधों तक में जैसे चमचमाते सोने के पत्ते लग गये हों !

'मेरे तो पैरों के चिह्न ही नहीं बन रहे हैं !' दृष्टि भूमि पर गयी। 'नहीं बन रहे हैं—प्रयत्न करके, धूलि-भरे पुष्पों के आलवाल में पैर रख-रखकर देख लिये, चरण-चिह्न तो दीखते ही नहीं !'

'ये भूत, ये प्रेत, ये पिशाच—ये भयंकर, विकटाकार, बीभत्सरूप—ये आलिङ्गन कर रहे हैं !' किसी प्रकार अर्धरात्रि के पश्चात् शय्या पर लेटकर नेत्र बंद किये--ये अशुभ स्वप्न ! कंस को स्वप्न में भी विश्राम नहीं है। स्वप्न में—स्वप्न में वह मुण्डित-मस्तक, सर्वाङ्ग में तेल लगाये, गधों के रथ पर दिगम्बर बना दक्षिण जा रहा है ! दक्षिण जा रहा है--गले में शव के ऊपर की माला है, विष खा रहा है !' भय के मारे चीत्कार कर उठा वह।

जाग्रत् में न नासिका दीखती, न भ्रूमध्य ! दिशाएँ प्रज्वलित जान पड़ती हैं और स्वप्न—स्वप्न और भी भयंकर हैं। ये मृत्यु-सूचक अपशकुन--यह उलूक उसी का नाम लेकर पुकार रहा है। ये श्वान रो रहे हैं रात्रि में भी और रो रही है शृगाली तथा मार्जार। ये मृत्यु-सूचक अपशकुन—मृत्यु ! वे वसुदेव के लड़के—कल ही उनसे साक्षात्कार होना है ! ये मृत्यु के दूत-से शकुन !' कंस के लिये रात्रि का प्रत्येक पल कल्प हो रहा है। कब रात्रि व्यतीत हो ! कब प्रातःकाल हो !

ब्राह्ममुहूर्त—क्षितिज पर प्रकाश की क्षीण रेखा—आज तो कंस इस अँधेरे में ही अन्तःपुर से आ गया है मन्त्रणा-गृह में। 'आज शिवरात्रि है! गोप आज उपोषित रहेंगे! आज उपवास-दुर्बल होंगे सब और वे धर्मभीरु—आज लड़ाई, हिंसा से बचना चाहेंगे सब! आज ही तो अवसर है। बड़े प्रमादी हैं मन्त्रिगण! अब तक नहीं आये सब!' कंस ने सेवकों को आदेश दिया। आज वह स्वयं आयोजन करने लगा है।

'धनुष तो रहा ही नहीं। धनुर्यज्ञ की तो चर्चा ही नहीं करनी चाहिये। धनुष की चर्चा—उसे लेकर कुछ भी कहना नीति के अनुकूल नहीं। कहीं गोपों को पता लगे—उन्हें आशङ्का हो जाय—वे सब भाग खड़े हों दोनों लड़कों के साथ! मल्ल-क्रीड़ा-महोत्सव—आज तो मल्ल-क्रीड़ा-महोत्सव होना है।' कंस जान-बूझकर अब आज के महोत्सव को मल्ल-क्रीड़ा का रूप दे रहा है।

'कुवलयापीड़ को भरपूर सुरा पिला देना महामात्र! आज का सुयश तुम्हें—तुम्हारे महागज को प्राप्त होना ही चाहिये! सावधान रहना!' कंस अपने आयोजन के विषय में सबको एक बार पुनः सतर्क कर देना चाहता है। सेवकों को आदेश दे दिया गया है। मल्लभूमि पूजित हो रही है वहाँ। मञ्चों की पक्तियाँ पहले से व्यवस्थित हैं। उन्हें पुष्प,माल्य,कौशेय-वितान,पताका, तोरणादि से अलंकृत किया जा रहा है।

'महाराज मल्लभूमि में पधार रहे हैं! पुरजन अपना-अपना स्थान शीघ्र ग्रहण कर लें!' मल्लभूमि से गूँजने लगा है यह भेरियों,शृङ्गों,तुरहियों का निनाद! पुरवासियों ने शीघ्रता की। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य—सभी अपने-अपने स्थानों पर आ गये! यदि भय न हो—कहाँ किसी में कुतूहल है। कंस का महोत्सव—क्रूरता, हिंसा, अपमान गुरुजनों का—और क्या होना है वहाँ। कौन स्वेच्छा से ऐसी अधर्मपूर्ण सभा में जाना चाहेगा। पर भय—भय के कारण ही तो ये पुरनारियाँ भी इतने सबेरे ही आ गयी हैं यहाँ। इन्होंने भी अपने लिये निश्चित स्थान स्वीकार कर लिये हैं।

'नगर के पुरवासी नर-नारी आ गये और आ गये आमन्त्रित सामन्त, अधीनस्थ नरेश!' कंस को मन्त्रियों ने सूचना दी। सब के आ जाने पर ही तो उसे आना चाहिये। 'महाराज मथुराधीश महाराज पधार रहे हैं!' बन्दियों ने जयघोष किया! सब लोग उठकर खड़े हो गये। मन्त्रियों से घिरा कंस—कहाँ है आज उसकी यह श्री, क्या हुआ तेज? आज तो वह देखता ही नहीं कि कौन कैसे अभिवादन कर रहा है। अमात्यगण अपने स्थानों पर रुके और सबसे उच्च, सर्वाधिक सुन्दर, सुविस्तृत, शस्त्र-सज्ज, रत्न-जटित स्वर्ण-मञ्च पर कंस सिंहासनासीन हुआ। सामन्तों, नरेशों, पुरजनों ने अपने उपहार निवेदित किये मञ्च के सम्मुख, अभिवादन किया चुपचाप और अपने-अपने स्थानों पर शान्ति से—नीरव-भाव से आँकर बैठ गये।

वाद्यों के स्वर उच्च हुए। तुरहियों ने मल्लयुद्ध के ताल की गति अपनायी और ये अलंकृत कृष्णवर्ण, महाकाय, वज्रदेह मल्ल—ये अकड़ते, ऐंठते, झूमते चले आ रहे हैं यूथ-के-यूथ। इनके ये शिक्षक—जैसे मत्त गजराजों को लिये उनके गर्विष्ठ शिक्षक चले आते हों। यह चाणूर, यह मुष्टिक, यह कूट, ये शल और तोशल बन्धु—मथुरा के ये सर्वश्रेष्ठ शूर। कितने प्रसन्न हैं ये सब। वाद्य की गति पर कैसे झूमते आ रहे हैं। महाराज को अभिवादन करने में भी कितनी गर्विष्ठ पद्धति है इनकी। मल्ल-भूमि—ये ही तो इस मल्ल-भूमि की शोभा हैं। कितने स्नेह से देख रहा है कंस इन्हें। इसी दिन के लिये तो ये गजराज पाले गये हैं। आज इनके इस गठे, सुपुष्ट देह पर ही तो समस्त आशा अटकी है कंस की।

'व्रजाधिपति नन्दराय आये हैं! उन्हें मेरा आदेश सुनाओ कि शीघ्र पधारना चाहिये समस्त गोपों के साथ उनको रङ्ग-भूमि में। हम उनके आगमन की प्रतीक्षा करेंगे!' कितना सुसभ्य हो गया है यह कुटिल! कितनी शिष्ट हो गयी है इस सदा के उद्धत की वाणी। सचमुच यह व्रजाधिप की प्रतीक्षा ही तो कर रहा है। सब—दूसरे सब तो आ ही चुके, अब तो गोपों का ही आना शेष रहा है।

× × × ×

'श्री मथुराधिप ने मल्लक्रीड़ा-महोत्सव देखने के लिये आमन्त्रित किया है! वे पहुँच गये हैं, प्रतीक्षा कर रहे है!' व्रजेश को क्या पता था कि इतने सबेरे यह अयाचित आमन्त्रण पहुँचेगा।

महोत्सव इतनी शीघ्र प्रारम्भ हो गया ? हो तो गया ही, यहाँ से वाद्यों का स्वर सुनायी दे रहा है। उचित तो यही था कि नरेश से पूर्व ही वहाँ पहुँच गये होते। अब तो शीघ्रता--बहुत शीघ्रता करनी है।

कल बालक सब नगर देखने चले गये सायंकाल। पता नहीं कहाँ-कहाँ घूमते रहे। बहुत देर करके लौटे। बहुत थक गये थे। अभी-अभी तो श्रीकृष्णचन्द्र ने उठकर मुख-हाथ धोया है। आज शिवरात्रि है। ये बालक बड़े हठी हैं। ये सब गत कई वर्षों से व्रत करते आ रहे हैं। कलेऊ तो किसीको करना नहीं है। ये सब यदि शीघ्र प्रस्तुत हो जायँ।....

'बाबा, तुम चलो सब गोपों को लेकर ! मैं दाऊ भैया के साथ आता हूँ। मेरे साथ इतने सखा रहेंगे न ! तुम आगे चलो !' आज कन्हैया कितना गम्भीर बन गया है।

'तुम सब पीछे आओगे !' समय नहीं है। कंस का आमन्त्रण आ चुका। अच्छा ही है--ये चपल साथ जाकर कोई अविनय न कर बैठें। इस समय आग्रह करने से यदि श्याम न माने--रूठ जाय...विलम्ब हो रहा है। 'कोई चञ्चलता मत करना ! वहाँ आकर चुपचाप हम लोगों के समीप आ जाना। मैं प्रतीक्षा करूँगा।'

'मैं तो अभी आता हूँ, दाऊ की अलकों में थोड़े पुष्प लगा दूँ, बस !' श्याम को अपने भाई का शृङ्गार करना है अभी। इस समय यह किसी की बात सुनने से रहा। भाई का शृङ्गार—कौन कह सकता है कि बड़े भाई के पश्चात् छोटे भाई तोक एवं सखाओं के शृङ्गार में नहीं लग जायगा यह। यहाँ इतने सेवक हैं, सब सावधान रहेंगे। ये शिबिर की, छकड़ों की, वृषभों की देख-भाल करेंगे।

हृदय न चाहे पर कंस -- बड़ा क्रोधी, बड़ा क्रूर है कंस; उसका आमन्त्रण आया तो जाना ही है। बाबा गोपों को साथ लेकर शीघ्रतापूर्वक आये रङ्ग-भूमि में। अपने उपहार उन्होंने नरेश के मञ्च के सम्मुख निवेदित कर दिये।

'दोनों बालक तो नहीं आये !' कंस ने एक बार देख भर लिया। 'अच्छा ही हुआ ! अब वे इन गोपों से पृथक् रहेंगे !' गोपों पर एक दृष्टि भर डाल ली कंस ने। रङ्गशाला के सेवकों ने संकेत से स्थान सूचित कर दिया। बाबा अपने समस्त गोपों के साथ एक ही मञ्च पर चुपचाप बैठ गये।

× × × ×

"भद्र, कितने उच्च स्वर से ये दुन्दुभियाँ बज रही हैं ! उत्सव प्रारम्भ हो गया दीखता है !" कन्हैया चलने के लिये उद्यत हो गया है। सभी उत्सुक हो गये हैं।

'अरे, यह इतना बड़ा मतवाला हाथी--यह तो रङ्ग-भूमि के द्वार पर ही झूम रहा है !' बालक दूर ही खड़े हो गये।

'हाथी तो मदमत्त है और यह अम्बष्ठ (महावत)—यह तो इस गजराज को हटाने का नाम ही नहीं लेता। मदिरा से घूर्णित इसके ये लोचन ! कितनी क्रूरता से घूर रहा है यह !' कन्हैया ने स्थिर दृष्टि से देखा गज को और उस गज के महावत को। दूसरे ही क्षण पटुके को कटि में कस लिया इसने। अलकों को समेटकर बाँधते हुए आगे-आगे बढ़ आया। श्यामसुन्दर ! गूँजा यह उसका मेघ-गम्भीर स्वर--'अम्बष्ठ, तूने रङ्गशाला के द्वार को क्यों रुद्ध कर रखा है ? हम भीतर जायँगे ! अपना गज हटा यहाँ से !

यह तो बधिर हो गया है। कितनी उपेक्षा का भाव है इस क्षुद्र में। श्याम क्या सह लेगा यह उपेक्षा ? कमलमुख गम्भीर-से-गम्भीर होता जा रहा है। भ्रुकुटियों में बल आ गया है--'गज हटा और मार्ग दे ! देर मत कर, चल हट; अन्यथा इस हाथी के साथ तुझे भी मैं यमराज के घर भेजता हूँ !'

'इस गोप के लड़के का यह साहस !' मदिरामत्त महावत ने दाँत पीसे ! उसके दोनों पैरों के अँगूठे गज की नेत्र-पुट-ग्रन्थि पर बलपूर्वक रगड़ उठे। फुँकारता दौड़ा यह गजराज--जैसे महाकाल ही दौड़ा आता हो।

'हाथी आया ! पकड़ लिया इसने तो कन्हैया को !' बालक चौंके, स्तब्ध-से हुए और तत्काल उनके मुख तनिक आश्वस्त हुए। यह नवनीत-स्निग्ध श्याम—इसे क्या हाथी पकड़ लेगा ? यह तो उसकी सूँड़ से फिसल निकला और उसी के पेट के नीचे इधर-उधर हो रहा है।

'कहीं पकड़ ले यह गज ! पकड़ न ले !' धक्-धक् कर रहे हैं हृदय। 'यह पकड़ लिया ! सूँघते, फुंकारते, घूमते गज ने पकड़ लिया—हाय ! कनूँ...!' सखाओं के प्राण--एक पल--एक पल यदि और लगे.....

'चल हट !' छूटा—छूट गया श्यामसुन्दर ! यह तो पीछे पहुँच गया। पूँछ पकड़कर खींच रहा है, बलपूर्वक खींचे लिये जा रहा है। चिग्घाड़ मारता यह सचल पर्वत खिंचता जा रहा है पीछे को। यह तो लगभग पचीस धनुष तक खींच ले गया ! बेचारा हाथी--यह चिरचञ्चल, बछड़ों की पूँछ पकड़कर दाहिने-बायें कितना घूम चुका है यह। बछड़ा न सही—हाथी तो और बड़ा है। क्रुद्ध फुंकार करता हाथी पकड़ने को झपटता है और कन्हैया दूसरी ओर कूदकर हो जाता है। कभी दाहिने, कभी बायें—हाथी इस खींचा-तानी में कैसे छूटे, यही समझ नहीं पाता। 'बड़ा सुन्दर खेल है यह तो' बालक तो ताली बजाने लगे हैं।

हाथी की पूँछ--बड़े कड़े, काँटे-से बाल होते हैं उसमें। कन्हाई के किसलय-कोमल, अरुण-मृदुल कर--ये और लाल हो उठे हैं। कब तक पूँछ पकड़े रहे यह। यह छोड़ दी पूँछ। यह कूद आया हाथी के सम्मुख। 'तड़ाप !' एक थप्पड़--हाथी ही जानता होगा कि कैसी थप्पड़ है यह--छोटे-छोटे लाल-लाल चरण--अब तो यह भाग खड़ा हुआ।

'अब पकड़ा--अब पकड़ गया ! अब सूँड छू गयी !' बालकों के नेत्रों की पलकें जैसे स्थिर हो गयी हैं। 'पद एक पद--अब-अब--अब पकड़ा हाथी ने ! अरे, यह मोहन गिर पड़ा ! नटखट कहीं का ! यह तो जान-बूझकर गिरा था और यह क्या कूदकर हँसता हुआ खड़ा हो गया दूर !' हाथी ने समझा--देखा--गिर गया है उसे मारनेवाला। पूरे वेग से, पूरे बल से दाँतों को मारा भूमि पर उसने। पूरे दाँत धँस गये भूमि में।

'कुछ नहीं--कोई नहीं है यहाँ तो !' दूसरे ही क्षण हाथी ने समझ लिया अपनी भूल को। दाँत खींच लिये बल लगाकर। उसकी चिग्घाड़—उसका रोष और ऊपर से यह महामात्र अङ्कुशों की मार से मस्तक छेदे डालता है। भरपूर अङ्कुश मारकर प्रेरित कर रहा है।

'कनूँ ! कनूँ !' सखाओं ने हाहाकार किया। श्याम के प्रिय सखा--इनके प्राण परमार्त हो उठे हैं। यह क्रीड़ा अच्छी नहीं। सखा व्याकुल हैं। यह दाऊ—इसकी मुट्ठियाँ बँध गयी हैं। मुख अरुण होता जा रहा है। भ्रू-मण्डल खिंचते जा रहे हैं। एक क्षण—एक क्षण में ही यदि इसे रोष आ जाय—सारा खेल समाप्त हो जायगा। नहीं, यह खेल अब और नहीं चल सकता।

'हाथी !' हाथी दौड़ा आ रहा है। सखा चीत्कार कर रहे हैं। कन्हाई खड़ा--स्थिर खड़ा रहा। हाथ बढ़ाकर पकड़ ली गज की सूँड़ इसने और यह धमाका—ढह पड़ा यह पर्वत।

यह आया दाऊ--दाऊ इसी क्षण दौड़ पड़ा भाई की सहायता के लिये। केसरि-शावकों की भाँति राम-श्याम ने उस मतवाले गजराज की सूँड़ पर चरण जमाये और दोनों हाथों से हाथी के एक-एक दाँत मूली के समान उखाड़ लिये।

यह दुष्ट--यह क्रूर महावत—यह अब अपने अङ्कुश से ही आक्रमण करने झपटा है। हाथी के गिरते ही यह कूद गया भूमि पर और अब आक्रमण करेगा। हाथी के दाँत से ही एक हाथ—कपाल-क्रिया हो चुकी इसकी तो। रक्त की धारा चल रही है।

'कनूँ !' बालक दौड़ पड़े। 'कन्हैया ने इतना बड़ा हाथी मार दिया—यह हाथी भी राक्षस होगा !' राक्षस न होता तो क्या यह सुकुमार कन्हाई इतना बड़ा हाथी मार सकता था।

'तेरे हाथ तो देखूँ !' भद्र ने दाहिना हाथ अपने हाथ में लेकर देखना प्रारम्भ किया। बड़ी देर तक इस हाथ से इसने हाथी की पूँछ खींची है। कितना लाल हो गया है यह पल्लव-कोमल कर। कहीं खरोंच नहीं आयी--जैसे प्राण-दान मिल गया है सखाओं को।

'दुन्दुभियाँ बज रही हैं ! मल्ल-क्रीड़ा होती होगी !' श्याम ने गजदन्त लकुट की भाँति कंधे पर रख लिया। दाऊ तो पहले से रखे है। क्या जाने भीतर भी किसी से निबटना पड़े तो ? मल्ल-क्रीड़ा होती होगी--अब तो भीतर चलना चाहिये !

—❀⊂❀⊂❀—

मल्ल-मर्दन

"मल्लानामशनिर्नृणां नरवरः स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान्
गोपानां स्वजनोऽसतां क्षितिभुजां शास्ता स्वपित्रोः शिशुः ।
मृत्युर्भोजपतेर्विराडविदुषां तत्त्वं परं योगिनां
वृष्णीनां परदेवतेति विदितो रङ्गं गतः साग्रजः ॥"

—भागवत १० । ४३ । १७

'हाथी—महागज कुवलयापीड़—चिग्घाड़ें मार रहा है! क्रोध से फुंकारता है! कंस के प्राण कानों में आ गये हैं। जान पड़ता है, दोनों द्वार पर आ गये हैं!' अत्यन्त आतुर हो गया है। पता नहीं क्या होगा!

'हाथी—क्रुद्ध हाथी द्वारपर ही चिग्घाड़ रहा है! क्या बात है? क्या हो रहा है?' सबके नेत्र द्वार की ओर ही लगे हैं। सब उत्कण्ठित हैं। कंस का भय न होता—अवश्य सबके सब बाहर दौड़ जाते।

'अभी बालक आये नहीं! कहीं वे आते न हों!' गोपों की, बाबा की दशा वर्णन से बाहर है। 'ये प्रबन्धक—ये क्यों जाकर हाथी को हटवा नहीं देते? ये सब तो केवल देख भर रहे हैं द्वार की ओर। क्या यह भी इसी मल्ल-क्रीड़ा का कोई अङ्ग है? कोई हाथी से—क्रुद्ध हाथी से लड़ेगा?' कंस के ये वज्रदेह विशाल-काय मल्ल—क्या ठिकाना कि ये आज गज से ही युद्ध करनेवाले हों।

'एक धमाका—बड़ा भारी धमाका!' गज की फुंकारें, चिग्घाड़—सब तो मूक हो गयीं। क्या हुआ! महागज—महागज भी क्या मारा गया?' कंस का हृदय जैसे बैठा जा रहा है। लोगों के नेत्र और उत्कण्ठित हो रहे हैं।

लहराता मयूर-पिच्छ, पीछे समेटकर तनिक बाँधी हुई अलकें और उनमें से झाँकते से सुमन, कपोलों पर झलमलाते कुण्डल, दीर्घ कमलदल-लोचन, विशाल भाल पर स्वेद के मुक्ता-बिन्दुओं के मध्य गोरोचन-तिलक, बंकभ्रुकुटि, अरुणरेखा-से पतले अधर, वक्ष पर वनमाला, कण्ठ में मुक्ता-माल—यह आया श्यामसुन्दर। पटुका कटि में कसे, कंधों पर पुष्ट लकुट की भाँति उज्ज्वल, स्वर्ण-जटित दीर्घ गजदन्त रखे ये राम-श्याम! चरण रक्तारुण हो रहे हैं। वक्ष पर, भुजदण्डों पर, रक्त के बिन्दु हैं और गज के गण्ड से झरते मद के बिन्दुओं ने भी भली प्रकार भूषित किया है इन्हें। ये गुंजार करते भ्रमरों की टोलियाँ—यह भुवन-मोहनरूप, यह मल्ल-रङ्ग के अनुरूप वेश और यह मत्त-गयन्द-गति। इनके पीछे यह बालकों का यूथ—कितने प्रसन्न, कितने सुन्दर—कितने निर्भीक हैं ये बालक। ये तो द्वार पर आकर रुक गये हैं। यहीं से पूरी रङ्गभूमि देख लेना है इन्हें। बाबा—गोपगण कहाँ हैं, यह भी तो देखना ही है।'

'राम-श्याम—वसुदेवपुत्र—यह मल्लवेश! ये महागज के दन्त। यह वज्रदेह!' मल्ल-भूमि ही तो द्वार के सम्मुख है। मल्लों की दृष्टि गयी—'इनसे युद्ध? इनके शरीर से तो वज्र भी पिस उठेगा!' समस्त उत्साह, पूरा साहस एक क्षण में भर गया। अब तक व्यायाम चल रहा था उनका। अब तो सब धीरे से एक ओर जाकर बैठने लगे हैं।

'यह रूप, यह श्रीविग्रह, ये पुरुषोत्तम!' लोगों के नेत्र अपलक हो गये हैं। यह छवि—नेत्र को परम लाभ मिला है आज।

'काम--मूर्तिधर मन्मथ इनकी छाया से भी तुच्छ होगा !' स्त्रियों के शिरोवस्त्र कंधों पर आ गये हैं। वेणी के पुष्प गिरने लगे हैं। मुख स्वेद-बिन्दुओं से भूषित हो उठा है। कहाँ पता है उन्हें शरीर का। यह रङ्गभूमि—यह जन-समाज; पर वे तो इस नीलसुन्दर में एकाग्र हो गयी हैं।

'दाऊ—कन्हैया--ये बालक--आ गये ये सब !' गोपों में जैसे प्राण आ गये हों। यहाँ पुकारा नहीं जा सकता, किस प्रकार वे संकेत कर रहे हैं--बुला रहे हैं अपने इन प्राणप्रिय बालकों को। ये सब खड़े हैं, सम्भवतः उन्हीं को देखना चाहते हैं। उनका यह कन्हैया—यह राम ! उन्हीं के तो स्वजन हैं ये। ये उन्हीं के समीप तो बैठना चाहेंगे।

'ये गजदन्त—ये दण्डधर बन्धु !' कंस के इन सभासद् दुष्ट नरेशों की तो मुखश्री ही चल गयी। उन्हें लगता है, अब उन्हीं की बारी है। ये दुष्टों के शासक—कहीं पूछ न बैठें—'क्या किया है तुमने ? कहीं हमारे कृत्यों का विवरण इसी समाज में माँगने न लगे ! यदि इस उत्सव-सभा को ये न्याय-सभा बना लें—कौन समर्थ है इन्हें रोकने में !' मुख पीले हुए जा रहे हैं। निकल भागने का भी तो अवकाश नहीं। ये दोनों भाई अपने सखाओं के साथ द्वार रोके ही खड़े हैं, जैसे सबका इसी समय निर्णय करने का निश्चय कर लिया हो।

'राम-कृष्ण—ये शिशु !' बाबा के नेत्र ललक उठे हैं। 'हमारे बच्चे !' बच्चे--शिशु ही तो हैं राम-श्याम ! 'कितने सुकुमार हैं दोनों !' हृदय, मन, प्राण—सब नेत्रों में एकाकार हो गये हैं।

'आ गया ! आ गया यह मेरा काल ! इसने महागज को मार डाला है ! ये विशाल दन्त--यह आ गया ! मेरी ओर--ओह, मेरी ओर देख रहा है !' कंस के नेत्र फट-से गये हैं। वह घूर रहा है। उसके हाथों ने ढाल और खड्ग की मूठ सम्हाल ली है। उसे लगता है, अब आये--अब ये उसी के पास आयेंगे दानों भाई। ये विशाल गजदन्त उसी को मारने के लिये दोनों ने ले रखे हैं। उसी को ढूँढ़ते इधर-उधर देख रहे हैं।

'यह सुकुमार-विग्रह--इनका जो प्रभाव सुनते आये हैं, अभी-अभी तो इन्होंने महागज को मारा है !' मथुरा के विद्वान् समझ ही नहीं पाते इस नीलसुन्दर को। भला, कोई पुस्तकों के ज्ञान से इस कन्हैया को कभी समझ सका है ? विराट्--अनन्त, अपार, अगम्य विराट् लगता है यह इन पण्डितों को।

'प्रभो !' ये देवर्षि नारद, ये मुनिगण--ये क्यों हाथ जोड़कर प्रणिपात कर रहे हैं ? ये आत्माराम, हृदयगुहा में नित्य ज्योतिर्मय परमतत्त्व में एकाग्र रहनेवाले महायोगी--पर यह कन्हैया, यह इन्दीवरदल-श्याम, वही परम-तत्त्व तो यह सम्मुख खड़ा है कंधे पर गजदन्त रखे। सच्चिदानन्द की यह घनमूर्ति--इस श्रीविग्रह में जो छटा, जो माधुरी है--योगियों का वह अन्तस्तत्व जैसे शत-सहस्र-कोटि-कोटि-गुणित माधुर्य लेकर नेत्रों को, मनको, प्राण को--आज इस स्थूल जीवन को कृतार्थ करने बाहर आ गया है।

'हमारे परमाराध्य !' जैसे पिपासा से प्राण त्यागते चातकों को मेघके दर्शन हुए। 'भगवान् नारायण--वही सुनील ज्योतिर्मय अङ्ग-कान्ति, वही श्रीविग्रह और यह कौस्तुभ, श्रीवत्स, भृगुलता !' वृष्णिवंशियों ने कितना कष्ट, कितना उत्पीडन सहा है ! आज-आज आराध्य ने दया की। आज समस्त क्लेश दूर हुए ! सम्पूर्ण तप सार्थक हुआ।

'ये राम श्याम—ये साक्षात् नारायण हैं ! यही वसुदेवजी के यहाँ इस संसार के प्राणियों पर दया करने के लिये अवतीर्ण हुए हैं। यही हैं देवकी के सप्तम और अष्टम पुत्र। कारागार में ये उत्पन्न हुए और गोकुल पहुँचाये गये महाभाग नन्दजो के यहाँ। अब तक ये गुप्तरूप से वहीं रहते थे। वहाँ इन भाइयों ने ही कंसके प्रधान-प्रधान असुरों को मारा है !' तनिक स्थिर हुआ चित्त। नेत्र तो अब भी इन राम-श्याम के चन्द्रमुख पर ही स्थिर हैं; किंतु हृदय का उल्लास वाणी में आ गया है। लोगों ने जो कुछ सुना है, परस्पर कहने लगे हैं। वे जो जानते हैं, सुन-सुनाकर वे जो भी उलटा सीधा जान सके हैं--कहाँ मीमांसा की है, उन्होंने अपनी सुनी बातों की। ये राम-श्याम—ये दोनों भाई महाशूर हैं। जो सुना है, उसमें संदेह का तो कोई कारण ही नहीं है। लोग बड़े उत्साह,

उल्लास से सुना रहे हैं परस्पर। बड़ी भव्य आशा है उनकी—'सभी लोग कहते हैं कि इन दोनों भाइयों के कारण यह यदुवंश लोक-विश्रुत हो जायगा। इनसे रक्षित होकर महान यश, लक्ष्मी और महत्व को प्राप्त करेगा! धन्य हैं ये गोप, धन्य हैं गोपियाँ और धन्य हैं हम सब भी, जो अब इनका सांनिध्य प्राप्त करेंगे!'

× × × ×

'लोग बोल रहे हैं—पता नहीं क्या फुसफुसाहट चल रही है! सब इन दोनों लड़कों की ओर ही देख रहे हैं।' कंस का रोष बढ़ता जा रहा है। वह मल्लों को घूर रहा है। 'ये सब क्यों चुपचाप बैठे हैं!'

'महाराज असंतुष्ट हो रहे हैं! ये बालक अब गोपों की ओर जाना चाहते हैं। इन्होंने देख लिया है गोपों को!' चाणूर ने अवसर से लाभ उठाया। वह झट उठकर सम्मुख आ गया—"नन्द-नन्दन, सुनो! बलराम, सुनो तो सही! हम सब लोग तुम्हारी ही प्रतीक्षा कर रहे हैं। बड़ा अच्छा हुआ, तुम लोग समय पर आ गये। तुम लोग वीरों में प्रशंसित हो, मल्लयुद्ध करने में बड़े कुशल हो—यह सुनकर ही तुम्हें महाराज ने बुलवाया है। महाराज तुम्हारा मल्लयुद्ध देखना चाहते हैं!'

श्याम मल्लयुद्ध में कुशल है! यह कैसी बात है? क्या षड्यन्त्र है यह? पर चाणूर तो कहता ही जा रहा है—'देखो, प्रजा यदि मनसे, वाणी से, कर्म से राजा का प्रिय करे तो उसका कल्याण होता है और यदि अप्रिय करे—उसका कल्याण हो नहीं सकता। तुम लोग गोपाल हो। गोपगण वनों में आनन्द से गायें चराते हुए मल्ल-क्रीड़ा करते ही रहते हैं। मल्लयुद्ध में तो गोप-जाति सदा से प्रख्यात है, अतः तुम लोग और हम सब भी महाराज का प्रियकार्य करें। महाराज को प्रसन्न करें। महाराज के प्रसन्न होने से सभी प्राणी हम पर प्रसन्न होंगे, क्योंकि राजा तो सर्व-भूतमय होता है।'

'मल्लयुद्ध—यह सजी-सजायी मल्ल-भूमि—है तो यह इसी योग्य। यह सुकोमल मृत्तिका—इसमें मल्लयुद्ध करना बड़े आनन्द की बात है।' श्याम ने एक बार बड़े भाई की ओर देखा। वहाँ तो सदा स्वीकृति है। दाऊ—कोई आ जाय, कोई लड़ ले! दाऊ—इस बलको क्या सोचना है। कन्हैया ने सखाओं की ओर देखा नेत्र तिरछे करके और सम्मुखीन हो गया चाणूर के। 'तुम लोग इन भोजपति की प्रजा हो और हम वनवासी हैं—ठीक ही है यह। नरेश ने अवसर दिया कि हम उनका कोई प्रिय कार्य कर सकें, यह उनका परम अनुग्रह है; किंतु हम बालक हैं, अतएव अपने समान बलवाले बालकों के साथ भली प्रकार मल्ल-क्रीड़ा करके दिखादेंगे! तुम लोग तो इस मल्ल-युद्ध-सभा के सभासद् हो, इसके नियमों को जानते ही हो; मल्लयुद्ध में कोई अधर्म नहीं होना चाहिये!"

'कितना उचित, कितना समयानुकूल विचार है! ये बालक बालकों के साथ ही तो लड़ सकते हैं!' समस्त समुदाय प्रशंसा करने लगा है।

'तुम बालक हो!' यह दैत्य चाणूर तो ठहाका मारकर हँसने लगा है—'मुझे ही टालना चाहते हो? तुम न बालक हो और न किशोर ही हो! तुम तो समस्त बलवानों में श्रेष्ठ हो! तुमने अभी-अभी सहस्र गजराज के समान शक्ति रखनेवाले कुवलयापीड को खेल-खेल में ही मार दिया है! देखो, टालो मत! आओ तुम मेरे साथ आओ और ये बलराम मुष्टिक के साथ नियुद्ध करें! आओ!' चाणूर ने तो थाप दी जङ्घा पर और पीछे मुड़कर देखा—मुष्टिक क्या संकेत नहीं समझता। यह खड़ा हुआ वह, यह थाप दी उसने भी।

'अच्छी बात!' कन्हैया किसी की उद्धत चुनौती सह ले! कैसे हो सकता है यह। दाऊ ने तो पहिले ही गजदन्त भूमि पर फेंक दिया। कछनी सम्हाल ली गयी है—बस! इन मल्लों के समान लँगोट बाँधकर लड़ने को प्रस्तुत होकर तो कोई आया नहीं है। आवश्यकता भी क्या है! दाऊ—श्याम, क्या आवश्यकता है लँगोट की। सखाओं के साथ ऐसे ही तो सदा मल्लयुद्ध किया है इन्होंने।

हाथों से हाथ, पैरों से पैर, जाँघों से जाँघें, घुटनों से घुटने, मस्तक से मस्तक, छाती से छातियाँ—यह चलने लगा है मल्लयुद्ध। एक दूसरे को खींचने, गिराने के प्रयत्न में जुट पड़े हैं ये। घुमाना, झटका देना, पकड़कर दबाना शरीर से, गिराना, खींचना, पीछे ठेलना, ऊपर उठा लेना, नीचे दबा देना, वेग से हटाना, स्थिर करना—सभी दाव-पेच चल रहे हैं। प्रत्येक दूसरे को जीत लेने का पूरा प्रयत्न कर रहा है।

× × × ×

'यह युद्ध—यह अधर्म युद्ध! कहाँ ये परम सुकुमार बालक और कहाँ ये लौहकाय पर्वत-से विशाल मल्ल! ये राम-श्याम तो अभी युवा भी नहीं हुए हैं, इनके ये कुसुम-कोमल कलेवर—कंस तो क्रूर है! ये मल्ल राक्षस हैं, हृदयहीन हैं सब; पर ये सभासद्—ये पुरजन—क्यों चुप हैं ये सब! बोलने का साहस नहीं होता तो यहाँ से उठ क्यों नहीं जाते! इस समाज के इस अधर्म का उत्तरदायी होना होगा। निश्चय ये सभी लोग अधर्मभागी होंगे! जहाँ अधर्म होता हो, वहाँ एक क्षण भी नहीं ठहरना चाहिये। इसीलिये तो बुद्धिमान् पुरुष ऐसे समाजों में जाते ही नहीं। जाना भी नहीं चाहिये; क्योंकि अधर्म का समर्थन करने या अधर्म होते देखकर भी बिना प्रतिवाद किये चुपचाप देखने से भी पाप का भागी होना पड़ता है!' स्त्रियाँ अत्यन्त कातर हो उठी हैं। उनमें परस्पर आलोचना चलने लगी है।

'शत्रु के चारो ओर उछलते, बल लगाते श्रीकृष्ण का मुख तो देखो! बड़े-बड़े स्वेद-बिन्दु आ गये हैं उसपर, जल-बिन्दुओं से भूषित विकच पद्मकोष के समान यह मुख-कमल!' दृष्टि स्थिर हो गयी है वहीं।

'तुम राम का मुख नहीं देख रही हो! कितना तमक उठा है यह मुख! लोचन लाल-लाल हो गये हैं और मुष्टिक के प्रति अमर्षभरा यह हास्य—कितनी अद्भुत है यह छवि!' इसके मन को दाऊ के आकर्षण ने थकित कर दिया है।

"व्रजभूमि धन्य है! कितनी पवित्र है वह भूमि, जहाँ ये परमपुरुष इस मानव-वेश में छिपे, वनधातुओं के चित्रों से श्रीअङ्ग सजाये वन-पुष्पों की मालाओं से भूषित, गायें चराते, वंशी बजाते अपने इन बड़े भाई बलराम के साथ इन चरणों से विचरण करते रहे हैं। ये भगवान् शंकर और भगवती लक्ष्मी द्वारा अर्चित श्रीचरण जहाँ विहार करते रहे हैं.....।"

"त्रिभुवन में अनन्यसिद्ध यह लावण्यसार रूप, यह ऐश्वर्य, यश एवं श्री का एकान्त निवास वपु, यह नित्य नवीन परम दुष्प्राप्य झाँकी—पता नहीं गोपियों ने पूर्व जन्म में कितने महान् तप किये होंगे, वे इस त्रैलोक्य-मोहन को निरन्तर अपने नेत्रों से देखती रही हैं! इस रूप का नेत्रों से पान करने का सतत सौभाग्य मिला उन्हें....।"

"गाय दुहते, गोबर उठाते, दही मथते, गृह लीपते, झूले पर झूलते, रोते बालक को चुप करते तथा स्नानादि सभी कार्यों के समय इन उत्तम श्लोक में अनुरक्त चित्त से इनके यश का—इनकी लीलाओं का निरन्तर गान करती हैं, धन्य हैं वे गोप-बालाएँ।" जो निरन्तर लीला-गान करती हैं, नित्य अनुरक्त हैं, उन्हें इनके दर्शनों का नित्य सौभाग्य मिला—इसमें भला, आश्चर्य ही क्या।

'आगे अपार गायों का यूथ और उनके पीछे अधरों पर मुरली धरे, उसे भुवन-मोहन स्वर से बजाते, मत्तगयन्द-से झूमते, सदय दृष्टि से इधर-उधर देखते ये गोपाल—प्रातः वन में जाते समय और सायं वन से घर लौटते हुए इनकी स्मित-शोभित यह छटा! हमें तो कल्पना ही करनी है न! धन्य हैं वे, जो नित्य झटपट घरों से दौड़कर द्वार से, गवाक्ष से अपलक-नयन होकर इस झाँकी को देख सकी हैं।'

'हम भी गोपियों में होतीं! ये गोपियों के सौभाग्य; पर हाय-हाय! ये क्रूर, कुलिश-कठोर चाणूर-मुष्टिक!' स्त्रियों की अद्भुत दशा है। क्षण-क्षण पर भय और फिर विस्मृति—पता नहीं कौन-सा जादू है इस रूप-राशि में। पुरुष—वे तो जैसे प्रतिमाएँ हों। नेत्रों के पलक तक गिर नहीं रहे हैं।

गोप--फटे-से नेत्र, धक्-धक् करता हृदय, विवर्ण मुख-कान्ति--इन गोपों की व्यथा का क्या पार है। एक शब्द बोला नहीं जा सकता ! एक चेष्टा, तनिक-सी गति--पता नहीं क्या परिणाम हो ! कंस की कुटिलता--पर यह सब सोचने को अवकाश नहीं है। प्राण आतुर--त्रस्त--मूर्छित-से हो रहे हैं।

ये बालक--ये सब तो कभी चञ्चल होते हैं, कभी सन्न-से हो जाते हैं। कभी खिल उठते हैं और कभी पीताभ हो जाते हैं इनके मुख। ये यहाँ खड़े रह गये हैं। इधर-उधर झुककर झाँकते हैं। भय, संकोच--पता नहीं क्या-क्या होगा इन बालकों में। 'कन्हैया लड़ रहा है ! इस राक्षस से कनूँ लड़ रहा है !' श्याम तनिक नीचे आता दीखा और ये सब तो इस प्रकार अलकें समेटने लगते हैं, पटुके सम्हालते हैं, जैसे ये स्वयं चाणूर को पहुँचते ही पछाड़ देंगे। इन सबों ने कछनी कस ली है, अलक बाँध ली हैं। पटुके कटि में लपेट लिये हैं। ये तो मल्ल-भूमि में कूदने को उद्यत-से हैं। 'कनूँ--कनूँ सबसे दुबल है न। वह लड़ रहा है--भली प्रकार लड़ रहा है ! यदि कनूँ दुर्बल पड़े--!' भद्र, सुबल, वरूथप--ये सब क्या प्रस्तुत हैं। 'चाणूर पहाड़-सा है तो क्या हुआ--राक्षस है न ! कचूमर निकाल देंगे इसका !' ओष्ठ फड़क उठते हैं बार-बार। मुट्ठियाँ बँध-बँध जाती हैं। मुख अरुण हो गये हैं। इनका सखा लड़ रहा है न ! दाऊ की क्या चिन्ता है; पर कनूँ—यह लड़ जो रहा है इस पहाड़-जैसे राक्षस से !

× × × ×

'ये स्त्रियाँ अत्यन्त भयभीत हैं, ये नगरवासी व्याकुल हो रहे हैं, ये गोप—ये तो जैसे काष्ठ हो गये हों !' इतना ही तो नहीं है। ये गोप-बालक--इनका सुकुमार कनूँ थकने लगा है, कितनी देर से लड़ रहा है वह। इनके धैर्य की सीमा समाप्त हो रही है। 'अब कूदा भद्र, अब--एक क्षण--बस, एक क्षण और !' श्यामने तनिक मुख घुमाकर चारों ओर देख लिया, देख लिया सखाओं को। उसकी दृष्टि ही कहती है--'तनिक रुको तो !'

'यह वज्र से बना है क्या ?' चाणूर का अङ्ग-अङ्ग फटने लगा है। यह श्याम--यह देखने में ही सुकुमार लगता है। यह तो इतनी निष्ठुरता से दबाता, इस प्रकार थाप देता है, जैसे मुद्गर पड़ता हो। सर्वाङ्ग शिथिल होता जा रहा है। बार-बार भूमि पर गिरता है चाणूर, ओह--इस प्रकार भी विश्राम कहाँ। यह कृष्ण तो घुटनों से कटि को तोड़ ही देगा। वह फिर उठता है और फिर गिरता है। श्याम के प्रहार तो तीव्र--तीव्रतर होते जा रहे हैं। यह और वेग से और बलपूर्वक शरीर को पीसता जा रहा है। चाणूर किसी प्रकार छूटने का प्रयत्न कर रहा है। प्राण बच जाते--एक झटका--किसी प्रकार छुड़ा लिया उसने अपने को। 'यह तो फिर झपटा पकड़ने ?' कूदकर ऊपर, बाज की भाँति झपटकर दोनों हाथों की मुट्ठियाँ बाँधकर पूरे बल से वक्ष पर प्रहार किया उसने।

'वज्रपात-सा घोष--कृष्णचन्द्र के श्रीवत्साङ्कित विशाल वक्ष पर असुरने घूसा मारा !' कोई कुछ सोचे, कुछ करे, इससे पूर्व चाणूर की दोनों भुजाएँ कन्हाई के कोमल हाथों ने जकड़ लीं। घूसा--वह तो जैसे मत्तगजेन्द्र पर किसी ने पुष्पमाल्य डाला हो ! अब तो यह मयूर-मुकुटी इस महाकाय मल्ल को अपने मस्तक के चारो ओर घुमाने लगा है।

चाणूर का विशाल देह—केश बिखर गये हैं, माला टूटकर कब की गिर चुकी और अब तो विश्व घूमता—कुम्हार के चक्र पर चढ़ा तीव्रता से घूमता दीखने लगा है। अन्धकार—चारो ओर अन्धकार हो गया उसके लिये। 'गों-गों' उसका चीत्कार भी अस्पष्ट हो रहा है ! बालक ताली बजाने लगे हैं और यह पटक दिया कन्हैया ने दैत्य को, जैसे धोबी वस्त्र को पत्थर पर पटक देता है। पूरा शरीर फट-सा गया। रक्त की धारा चलने लगी। बेचारा तड़प भी नहीं सका।

'चाणूर तो गया !' मुष्टिक ने भी किसी प्रकार छुड़ाया अपने को और पूरे बल से दाऊ पर मुष्टिकाघात किया उसने। यह दुष्ट भी वक्ष पर ही प्रहार करता है।

मल्ल-क्रीड़ा करते-करते यह घूसा—अच्छी बात ! दाऊ तो छोटे भाई की ही प्रतीक्षा कर रहा था। कन्हैया ने यह पटका चाणूर को ! यह दैत्य भी घूसा मारता है ?—'तड़'। लोग अपने मञ्चों पर उझक पड़े। रङ्ग-भवन प्रतिध्वनि से काँप उठा। हुआ कुछ नहीं है—बस, दाऊ भैया ने एक चपत भर जड़ दी है मुष्टिक की कनपटी पर और यह अति सुरापायी-सा लड़खड़ाता, मुख से रक्त फेंकता मुष्टिक गिरा ! अब तो गिर गया यह !

'पकड़ो !' यह कूट—इस मल्लयूथ का यह अग्रणी ! दो मल्ल मार दिये इन लड़कों ने इसके देखते-देखते ! यह तो क्रोधोन्मत्त दाँत पीसता झपट पड़ा है।

'अच्छा, तो यह दाऊ पर झपटा है ?' दाऊ—अब यह दाऊ रुष्ट हो चुका है। ये दुष्ट दैत्य—एक घूसा बायें हाथ का उपेक्षा से हँसकर धर दिया उसने। दाऊ का घूसा—कूट की तो कपाल-क्रिया हो चुकी।

'पकड़ो-पकड़ो !' ये शल-तोशल भी झपट पड़े हैं एक साथ ही। कूट दाऊ पर झपटा तो ये श्याम को ही पकड़ लें। 'चल !' बिचारे पूरे उठ भी नहीं पाये। कन्हाई ने उझकते-न-उझकते मस्तक पर ही एक-एक लात धमक दी कूदकर। श्याम के सुन्दर चरण रक्त से लाल हो गये। मस्तक फट गये शल-तोशल के—ऐसे फट गये कि भेजा बाहर निकल आया।

'बाप रे !' बेचारे मल्ल—अब किसका सिर व्यर्थ है जो इन चञ्चल चरणों से फुड़वाये ! मल्ल तो भागे, भाग गये सब रङ्ग-स्थल से बाहर। पता नहीं कहाँ तक भागते गये होंगे वे। उन्हें अब कंस या कोई भी क्या पा सकता है।

'मल्ल तो भाग गये ! यह अच्छी रही, आज मल्लक्रीड़ा-महोत्सव है ! मथुरानरेश और ये सब लोग मल्लयुद्ध देखने आये हैं और मल्ल तो ऐसे भागे कि कुछ बात—सखाओं ने ताली बजाकर बेचारों को और भगा दिया !' चरण रक्तारुण हो रहे हैं, सर्वाङ्ग में धूली लग गयी है। रक्त के बिन्दु झलमल करते स्वेद-कणों के मध्य बड़े भव्य हो गये हैं। यह कन्हैया मल्लभूमि के मध्य में खड़ा हो गया है। मल्लभूमि—उसमें पड़े ये पाँच मल्लों के शव। चाणूर का कृष्णवर्ण तो कहीं-कहीं से रक्त में से झलक रहा है। मुष्टिक के मुख के समीप की भूमि लथपथ हो चुकी है कीचड़ से और औंधा पड़ा है यह कूट। इसके तो मस्तक को जैसे मुद्गर से चूर्ण-चूर्ण कर दिया गया हो। ये शल-तोशल—ये दोनों तो बैठे-बैठे ही पीठ के बल लुढ़क पड़े हैं। इनके सिर के पास रक्त-कीच हो रही है और इस मल्ल-भूमि के मध्य ये राम-श्याम ! दाऊ छोटे भाई को कितने स्नेह से देख रहा है, जैसे पूछता हो—'कनूँ अब ? क्या चाहता है अब तू ?'

'मल्ल तो भाग गये, पर आज मल्लक्रीड़ा-महोत्सव है न ? कोई नहीं है तो न सही, ये सखा तो हैं !' श्याम ने बढ़कर भद्र का हाथ पकड़ लिया है और खींच रहा है। 'ये कंस के मल्ल—ये क्या जाने मल्लयुद्ध। मल्लयुद्ध तो अब होगा ! ये सखा ही तो कन्हैया की ठीक जोड़ हैं !'

'मैं नहीं लड़ूँगा !' भद्र जाना नहीं चाहता। 'कनूँ इतनी देर लड़ता रहा है, थक गया होगा !' इतने लोगों के मध्य इस प्रकार मल्ल-युद्ध करना क्या संकोच की बात नहीं है ? भद्र को संकोच हो रहा है। क्यों यह कन्हैया दूसरे को नहीं खींच लेता ?

'नहीं, मैं तुमसे नहीं लड़ूँगा !' 'तुझे आज पटकूँगा !' श्याम अपनी धुन छोड़ने से रहा। आज उत्साह में है यह। बलात् भद्र को खींचकर उससे लिपट गया है यह।

'अच्छी बात !' अब भद्र क्या इतने लोगों के सम्मुख हार मान लेगा ? श्याम—इसने राक्षस को मार क्या दिया, बड़ा वीर मानने लगा है अपने को।

'वरूथप!' जब कन्हाई मल्ल-क्रीड़ा चलाने ही लगा तो दाऊ चुपचाप क्यों देखता रहे। अब यह वरूथप के साथ लड़ेगा। वरूथप ही तो सखाओं में इसके कुछ जोड़ का है।

राम-श्याम, वरूथप और भद्र—भला, इन सबों में ही क्या विशेषता है; सभी तो भीतर आ गये हैं मल्ल-भूमि के। और भी जोड़ियाँ तो उतर गयी हैं बालकों की। तालियाँ बजाते हैं बाकी सब। प्रशंसा करते हैं, उत्साह दिलाते हैं।

बालकों की यह मल्ल-क्रीड़ा! दुन्दुभियाँ, तुरहियाँ, वाद्य--कितने सस्वर, कितने तालबद्ध बजने लगे हैं ये सब वाद्य। ये भुवन-सुन्दर जोड़ियाँ, इनका यह अलौकिक, अद्भुत मल्लयुद्ध—वाद्यों को अभी ही तो सार्थक होना है।

'साधु! बहुत सुन्दर! हाँ, जय-जय!' कितना उत्साह, कितना उल्लास आ गया है लोगों में। सब मञ्च से बार-बार उठे जा रहे हैं। बार-बार पुकारते जा रहे हैं। बालकों को उत्साह दिला रहे हैं।

भद्र और कन्हाई, दाऊ और श्याम--ये अनुपम जोड़ियाँ, ये रुनझुन करते नूपुर, ये स्वेद-भूषित कमलमुख, यह अरुणाभ मुखों पर! कितनी उल्लासपूर्ण है यह मल्ल-क्रीड़ा। ये सब मल्ल-युद्ध कर रहे हैं।

—❀○❀○❀—

कंस-कदन

"प्रमत्तमुच्चैरितिकृत्यचिन्तया प्रवृद्धलोभं विषयेषु लालसम् ।
त्वमप्रमत्तः सहसाभिपद्यसे क्षुल्लेलिहानोऽहिरिवाखुमन्तकः ॥"

—भागवत १०।५१।५०

'बंद करो ! वाद्य बंद करो !' यह चिल्लाया कंस। प्रधान मल्ल मारे गये, शेष प्राण लेकर भाग गये और यह सब करनेवाले ये राम-कृष्ण—ये दोनों बालकों के साथ मल्ल-क्रीड़ा करने में लगे हैं। ये पुरजन—ये यादव—ये सब कितने प्रसन्न हो रहे हैं। किस प्रकार सम्मुख ही इन लड़कों की प्रशंसा कर रहे हैं! कंस क्रोध से उन्मत्त हो गया है। नेत्र अंगार-से जल रहे हैं।

'वसुदेव के ये दोनों पुत्र बड़े दुष्ट हैं! निकालो, इन्हें अभी पकड़कर नगर से बाहर निकाल दो!' सेना कल ही मारी जा चुकी, मल्ल भाग गये, अब कौन है इस आज्ञा को सुननेवाला ? कौन अपना सिर कच्चे घड़े के समान फोड़ने को दे ! लेकिन कंस उन्मत्त हो गया है। उसे कहाँ स्मरण है कि उसकी आज्ञा कोई सुन नहीं रहा है। 'निकालो इन्हें !' अब तो इनको मारने की कल्पना ही ध्वस्त हो चुकी। मारनेवाले तो भूमि पर पड़े हैं और कंस—कौन अपने काल से भिड़ने का साहस करे !

अब तो ये निकाल दिये जा सकें नगर से—कंस के मन में बड़ी-से-बड़ी कामना यही रह गयी है।

'गोपों की समस्त सम्पत्ति छीन लो ! दुर्बुद्धि नन्द को मार डालो !' गला फाड़कर पूरी शक्ति से चिल्ला रहा है कंस। उसे लगता है, उसकी आज्ञा उसके सेवक पूरा ही करते जा रहे हैं। प्रलाप—प्रलाप ही करता जा रहा है वह—'वसुदेव को भी मार दो ! बड़ा दुर्जन है, बड़ा कुटिल है वह और मार दो मेरे पिता उग्रसेन को उसके अनुचरों के साथ। वह भी मेरे विरोधियों का ही पक्षपाती है। मार दो ! इन सब को मार दो !'

'क्या बकवाद है ? कौन चिल्लाया ?' मल्लयुद्ध तो प्रथम पल ही बंद हो गया। सभी लोग स्तम्भित-से देखने लगे हैं कंस की ओर। ये बालक तो बड़े कौतुक से देख रहे हैं !

'यह बाबा को मारने की बात करता है !' भद्र ने घूसा बाँधा ! किंतु यह पागल हो गया है। कोई भी तो इसकी बात सुनता नहीं है। इसके सेवक भी तो इसका मुखभर देख रहे हैं।

'यह बकता ही जा रहा है ! सभी गुरुजनोंको अपशब्द बकता जा रहा है !' कन्हैया की भौंहें कठोर हो गयीं। यह चला श्याम मञ्च की ओर।

'आया ! कृष्ण आया !' कंस एक झटके में मञ्च पर खड़ा हो गया दाहिने हाथ से खड्ग खींचकर और बायें हाथ में चर्म (ढाल) सम्हालकर।

कन्हैया—यह कूदा कन्हैया। यह तो कंस के मञ्च पर ही पहुँच गया। विशाल राजमञ्च—कंस इधर-से-उधर कूद रहा है। दूर-दूर रहना चाहता है वह इस कृष्ण से और आघात भी करना चाहता है। यह दाहिने-बायें कूदता, उछलता कंस—कन्हैया से कूदकर कहाँ जायगा अब यह। श्याम ने बलपूर्वक झपटकर बाल पकड़ लिये इसके पीछे से झटका देकर। यह गिरा मुकुट—मथुरा का यह असुर-मुकुट तो गिर चुका। खड्ग—खड्ग तो तब चले जब उसको चलने का अवसर मिले ! श्याम ने तो इसे केश पकड़कर झटके से फेंक दिया इस उत्तुङ्ग मञ्च से नीचे और लो—यह कूदा कृष्णचन्द्र ! यह तो कंस के शरीर पर ही कूद पड़ा है।

नेत्र निकल आये हैं बाहर, मुख से रक्त की धार चल रही है। यह लोक को आतङ्कित करनेवाला महाक्रूर, घोर अहंकारी कंस—बिखरे केश, रक्त-लथपथ देह, अब यह धूलि में पड़ा है और अब भी इसका परिणाम नहीं। अब भी यह कन्हाई इसके केश पकड़कर घसीट रहा है इसके प्राणहीन शव को। लथेड़ रहा है—इस प्रकार जैसे सिंह हाथी को मारकर लथेड़ता है।

कन्हैया रुष्ट है। इसका रोष अब तक गया नहीं। अब भी भौंहें चढ़ी हैं, नेत्र अरुणारे हैं, मुख तमतमा रहा है। यह घसीट रहा है कंस के शव को। 'हाय-हाय! छोड़ दो! छोड़ दो!" सभी लोग तो पुकार रहे हैं। मर गया कंस तो; अब भला, यह उसके शव की दुर्गति क्यों? अन्ततः यह नरेश का ही तो शव है।

दुर्गति शव की—कंस का क्या बनता-बिगड़ता है इससे। यह शव—अब कोई कुछ भी कर ले इसका। कंस—असुर होकर भी कंस भाग्यशाली ही रहा। भय से ही सही, शत्रुता से सही, बराबर, अविराम, खाते-पीते, उठते-बैठते, जागते-सोते, प्रत्येक समय वह इसी श्याम का ही तो चिन्तन करता रहा है। इसी को देखते-देखते तो शरीर छोड़ा है उसने। वह महाभाग—वह तो सारूप्य को प्राप्त हो गया। चिन्मय मेघश्याम दिव्यदेह—भला, अब इस कुत्सित पार्थिव देह पर क्या मोह उसे।

ये कंस के आठो भाई—ये कङ्क, न्यग्रोध, सुनामा, शङ्कु, सुहू, राष्ट्रपाल, सृष्टि और तुष्टिमान्—ये अपने बड़े भाई का बदला लेना चाहते हैं। दुष्ट शस्त्र उठाकर दाँत पीसते दौड़े हैं। श्याम क्रुद्ध है, वह कंस के शव को घसीट रहा है, और ये दौड़े हैं उसकी ओर! दाऊ ने वह गजदन्त का परिघ उठाया! बड़े वेग से झपटे थे ये आठो; किंतु दाऊ के हाथ का गजदन्त—वन में क्रुद्ध केसरी जब अपनी सटाएँ झाड़ता क्षुद्र पशुओं को फेंकता जाता है, उसे क्या फिर किसी की ओर देखना पड़ता है। परिघ का एक हाथ और बस—ये बिछा दिये दाऊ ने आठों को भूमि पर। ये चले थे उसकी उपस्थिति में ही उसके अनुज पर आक्रमण करने!

"जय-जय!" यह गगन में अपार जय-घोष, यह स्तुति की सस्वर ध्वनि और गगन से गिरती यह दिव्य सुमनों की झड़ी! कंस मारा गया। देवताओं का भय दूर हो गया! वे आनन्दोत्सव मना रहे हैं।

'कनूँ, छोड़ भी दे अब इसे! छिः क्या करता है तू!' श्याम ने भद्र की ओर देखा और संकुचित हो गया। सचमुच शव को घसीटना कुछ अच्छा नहीं है। अब ये सब चिढ़ायेंगे।

× × × ×

'हा नाथ! हा प्राणवल्लभ! आपके मारे जाने से हम सब मृत-सी ही हैं अब! ध्वस्त हो हो गये हमारे गृह! नष्ट हो गयी हमारी प्रजा!' ये अश्रु बहाती, मस्तक और वक्ष पीटती राजरानियाँ! ये कंस और उसके भाइयों की स्त्रियाँ। केश बिखरे, वस्त्र अस्त-व्यस्त—ये असूर्यम्पश्या राज-वधुएँ; पर जब इनके सौभाग्य के आधार ही न रहे तो फिर किसके लिये लज्जा! शोक के आवेग में इन्हें अपना भी स्मरण कहाँ है।

'हृदयेश, आप नहीं हैं! आपके बिना हमारी भाँति ही यह आपकी राजधानी भी शोभाहीन हो गयी है! इसके भी उत्सव और मङ्गल समाप्त हो गये! आप न रहे! निरपराध प्राणियों से आपने घोर शत्रुता कर ली थी और उसी द्रोह ने आपकी यह दशा की! अपराध भी किसका कहें, प्राणियों से शत्रुता करके कौन शान्ति पा सकता है!' पतियों के शरीर को अङ्क में लेकर, बार-बार उनका आलिङ्गन करती, उनके केश, मुख, अङ्ग में लगी रक्त कीच हटाती ये सब क्रन्दन कर रही हैं।

"ये श्रीकृष्ण—कितनों ने आप को समझाया कि ये ही समस्त प्राणियों को उत्पन्न करनेवाले और उनके नष्ट करनेवाले भी हैं। ये ही एकमात्र सबके पालक हैं। इनकी उपेक्षा करके, इनसे द्वेष करके कोई किसी भी प्रकार सुख नहीं पा सकता; किंतु आप इस बात को न समझ सके। हाय, अन्त तक इसे समझ नहीं ही सके!' ये बेचारी नारियाँ, ये आयी थीं यवनिका के पीछे बैठकर मल्ल-क्रीड़ा देखने। किसे पता था कि यह सब देखना होगा।

ये तड़पती, क्रन्दन करती नारियाँ ! ये दीना अबलाएँ। इनका सम्मान, इनका आतङ्क—मथुरा में ये सम्राज्ञियाँ—एक मुहूर्त पूर्व की ये महारानियाँ—कोई आश्वासन तक देनेवाला नहीं आज इन्हें। कोई यह कहनेवाला तक नहीं कि अब शोक मत करो ! किंतु जिसका कोई नहीं होता, उसी का तो यह कन्हैया होता है। यह निराश्रयों का आश्रय—और कुछ भी हो, शत्रुता तो कंस के साथ समाप्त हो गयी, ये तो उसकी कुछ होती हैं न।

कमल-से लोचन करुणा से भर आये हैं। यह संकुचित-सा, अपराधी-सा बना कृष्णचन्द्र—यह आश्वासन देने आया है इन्हें बढ़कर। यह श्याम—यह तो जैसे क्षमा माँग रहा है। 'जीवन और मृत्यु दोनों पूर्व-निश्चित होते हैं ! एक दिन तो यह शरीर जाता ही, इसके लिये शोक करना उचित नहीं है ! मुझे आप सब क्षमा करें ! अब आज्ञा दें कि मैं क्या करूँ ?

कन्हैया आश्वासन दे और शोक न दूर हो ! पर ये शव--मथुरा के परम प्रतापी नरेश का यह शव है और आज इसे कोई उठानेवाला तक नहीं। नगर के लोग घृणा, उपेक्षा से मुख फेर रहे हैं। भय और स्वार्थ से कल तक चाटुकारी करने वाले लोग·····पर क्या होगा ? ये पतियों के शव सम्मुख पड़े हैं, कैसे शोक दूर हो नारियों का। मोहन व्यस्त हो गया है। बाबा, गोप—अब श्याम चाहता है कि तत्काल इनकी अन्त्येष्टि का प्रबन्ध हो। अन्त्येष्टि तो होगी और धूमधाम से होगी। कृष्णचन्द्र, बलराम, श्रीनन्दराय--जब ये अग्रणी हो गये हैं, तब अन्त्येष्टि तो पूरे राजोचित ढंग से ही होगी। अब कौन है मथुरा में, जो इसमें सम्मिलित होने स्वयं न दौड़ पड़े।

पितृ-दर्शन

"सर्वार्थसम्भवो देहो जनितः पोषितो यतः।
न तयोर्याति निर्वेशं पित्रोर्मर्त्यः शतायुषा॥"

—भागवत १०।४५।५

कंस मारा गया, यदुकुल का संकट समाप्त हो गया, देवता पुष्प-वर्षा कर रहे हैं! पुरजन आनन्द मना रहे हैं, जयघोष कर रहे हैं! कंस के सेवक—उसके अनुचर—जब कंस ही नहीं रहा तो उसका अनुचर कौन? बहुत-से भाग गये और जो हैं, वे क्या अब कस के अनुचर हैं? सब हुआ, सब हो रहा है; पर इस महा-समारोह के प्रणेता इन राम-श्याम को जिन्होंने विश्व को भेंट किया वे—वे भुवनवन्द्य वसुदेवजी और चिर-दुःखिनी माता देवकी? ये उनके राम-श्याम आये, ये कुटिल कंस के षड्यन्त्र से बुलाये गये—समाचार पाकर उनके हृदय पर जो बीती···। 'भगवान् नारायण रक्षा करें!' कितनी स्नेहभरी आकुलता—

उन्मत्त गज कुवलयापीड़, चाणूर और मुष्टिक-से महामल्ल—और ये कुसुम-कलेवर बालक! इन्होंने मल्लों में—विश्व के विख्यात मल्लों को खेल-खेल में मार दिया!

कंस—नृशंस कंस इन भोले शिशुओं की मज्जु-क्रीड़ा भी नहीं देख सकता था। वह चिल्लाने लगा!' पता नहीं क्या हो? संवाद सुनने की स्थिरता भी कहाँ है! लौह-शृङ्खलाओं से बँधे पैर और हाथ, घेर कर खड़े सशस्त्र प्रहरी—इतनी भी शक्ति नहीं कि उठकर दौड़ें और अङ्क में छिपा लें अपनी हृदय-निधि को! रुदन—अश्रुधारा और वह भी नीरव! हिचकियाँ लेने की भी स्वाधीनता नहीं। इतनी विवशता, इतनी पीड़ा—कितनी बार मूर्छा आयी, कौन था वहाँ गिननेवाला!

'यह जयघोष! यह उल्लास! क्या हुआ! ये प्रहरी, ये कंस के अनुचर क्यों इस प्रकार आदर, विनय और आतुरतापूर्वक शृङ्खलाएँ छिन्न करने लगे हैं? कंस मारा गया! श्याम ने उसे मार दिया! मारे गये उसके सब भाई राम के हाथों! कोई—कोई अब उसके पक्ष में चूँ तक करने-वाला नहीं रहा!' कौन कह रहा है? कौन सुना रहा है यह सुधा-संवाद!

'दौड़ें! दौड़कर हृदय से लगा लें इन दोनों परम प्राणों को!' शृङ्खलाएँ टूट चुकीं, विश्व के आर्तप्राणों के अनादि बन्धन को जो सदा से खण्ड-खण्ड करता आया है, उसकी उपस्थिति में कब तक रह सकती थीं ये जड शृङ्खलाएँ। वे तो टूट गयीं—टूट गयीं और टूट तो जाती हैं उसकी, जो इन भग्न शृङ्खलाओं का स्मरणभर कर लेता है। प्रहरी तो अब दूर मस्तक झुकाये, अञ्जलि बाँधे, थर-थर काँपते दीन-भाव से खड़े हैं। ये बिचारे प्रहरी—इन्हें तो अब अनुग्रह की एक दृष्टि की अपेक्षा है! सब हुआ, पर कौन दौड़ जाय? कैसे दौड़ जाय? हुआ करें बंदी-गृह के उन्मुक्त द्वार। 'कृष्ण-चन्द्र विजयी हुए!' आनन्द का जो अकूल पारावार उमड़ पड़ा है, शरीर तो जड हो गया उसके आवेग में। ये वसुदेवजी, ये माता देवकी—ये तो मूर्ति की भाँति बैठे हैं दोनों। नेत्रों से अविरल प्रवाह, रोम-रोम मस्तक उठाये—इतना आनन्द, इतना असीम आनन्द! कैसे सम्हाला जाय एक साथ।

× × × ×

'ये आये! ये आ रहे हैं राम-श्याम! ये चले आ रहे हैं, देवता पुष्प-वर्षा कर रहे हैं! गगन और धरा गूँज रहे हैं जयघोष से! सुरगण स्तुति कर रहे हैं! सुरगण भी स्तुति कर रहे हैं इनकी! ये देवताओं के भी प्रणम्य—सुरासुरविजयी कंस को मार दिया इन्होंने एक क्षण में! पर्वताकार

मल्ल इनके इस सुमन-मृदुल श्रीअङ्ग से पिसे पड़े हैं वे भूमि पर ! सहस्र गजों की शक्ति रखने-वाले कुवलयापीड़ को इन्होंने हाथों से मार दिया !' धनुर्भङ्ग, अघासुर, बकासुर, केशी, अरिष्ट, धेनुक, पूतना आदि सबके वध की स्मृतियाँ आयीं फिर तो ! 'महानाग कालिय को ह्रद में से बलात् निकाल दिया ! सात दिनों तो हाथ पर गोवर्धन उठाये रहे !' कैसे कोई मान ले कि राम-श्याम सामान्य बालक हैं। कोई देवता भी इतनी शक्ति कहाँ पा सकता है।

'ये आदिपुरुष साक्षात् नारायण ! विश्व के ये परम प्रभु !' बंदी-गृह के उस प्रसूतिकक्ष को सायुध, साभरण ज्योतिर्मय चतुर्भुज मूर्ति को क्या भूला जा सकता है ? माता देवकी के अनुरोध पर ही तो वे परम पुरुष शिशु बन गये थे।

'विश्व के परित्राण के लिये, भूभार के हरणार्थ अपनी ही करुणा से पधारे ये पुरुषोत्तम ! इनका कौन पिता और कौन माता ! इन समदर्शी का कौन शत्रु और कौन मित्र ! कंस अधम था, नृशंस था—उसे मार दिया इन्होंने ! इनमें क्या माया, मोह, ममता हो सकती है ? हम इनके पिता हैं, माता हैं—कैसी उपहासास्पद बात है यह !' हृदय मानता नहीं है। द्वन्द्व चल रहा है अन्तर में। 'यह सुकुमार स्वरूप, ये भोले चन्द्रमुख ! ये अपने—अपने ही शिशु; किंतु यह स्तोत्र, यह पराक्रम और यह अद्भुत माहात्म्य !' कुछ निश्चय नहीं हो पा रहा है !

× × × ×

'भगवान् वासुदेव की जय !' वासुदेव—वासुदेव ही तो ! लोग तो पता नहीं क्या कहते हैं ! 'वासुदेव—भगवान् वासुदेव—भगवान्···।' ये राम-श्याम—ये आये दोनों भाई। इनके पीछे ये व्रजराज श्रीनन्दराय, ये गोपगण, ये नगरवासी। ये सब लोग आज कितने उल्लास में हैं। 'वसु-देवजी की जय !' ठिकाना है इस गगनघोषी जयध्वनि का। वसुदेवजी, माता देवकी—ये राम-श्याम दौड़कर चरणों में पड़े हैं और ये तो उठाते ही नहीं। 'भगवान् वासुदेव—भगवान् !' ये तो पीछे हट गये हैं ! ठिठके-से खड़े हैं ! नेत्रों से अश्रुधारा—यह अञ्जलि बाँधने का उपक्रम—ये किसे प्रणाम करेंगे ? यह श्रीकृष्णजी, यह दाऊ, पड़े हैं ये दोनों चरणों में और ये उठाते नहीं ! हृदय से नहीं लगाते !

'पिता ! माँ' श्रीकृष्ण पुकार रहा है। कितना सुधा-स्निग्ध है यह स्वर।

'पिता—इन जगदात्मा का पिता !' वसुदेवजी का अन्तर्द्वन्द्व सीमापर पहुँच गया है।

'माँ—जो समस्त भुवनों को अपने भीतर लेकर अनन्तशायी हो जाता है, मैं उसकी माँ !' माता देवकी पति के समीप ठिठकी खड़ी हैं।

"पिता, क्षमा कर दो हमको ! माँ, तू क्षमा नहीं करेगी ?' श्यामसुन्दर तो भाव-विभोर प्रार्थना करने लगा है—'दैव विपरीत था, हम आपके समीप नहीं रह सके ! हमारे शैशव, पौगण्ड और कैशोर का आनन्द नित्य-उत्कण्ठित होने पर भी नहीं मिल सका आपको और नहीं मिला हमें आपका स्नेह ! नहीं मिला वह मोदभरा लालन ! सम्पूर्ण पुरुषार्थों के देनेवाला यह देह जिनसे प्राप्त होता है, जो इसका लालन और पोषण करते हैं, उनके ऋण से सौ वर्षों की पूर्ण आयु में भी कैसे उऋण हुआ जा सकता है। पिता, माँ—जो समर्थ होकर भी अपने शरीर और सम्पत्ति से माता-पिता की सेवा नहीं करता, मरने पर उसे अपना ही माँस-भक्षण करना पड़ता है ! वह तो श्वास लेते हुए भी मरा ही हुआ है जो वृद्ध माता-पिता, साध्वी स्त्री, शिशु-पुत्र, गुरु, ब्राह्मण और शरणागत की रक्षा नहीं करता ! लेकिन हम कहाँ समर्थ थे ! इस दुष्ट कंस के भय से नित्य उद्विग्न-चित्त रहकर हमारे ये इतने वर्ष व्यर्थ चले गये ! हम कोई सेवा नहीं कर सके आप की ! इस कुटिल कंस के भय से त्रस्त, विवश हुए हम आपकी शुश्रूषा करने में असमर्थ रहे, क्षमा कर दें आप हमें !" हाथ जोड़े, मस्तक झुकाये अपराधी-सा खड़ा यह मयूरमुकुटी, यह नेत्रों में अश्रु लिये दाऊ—योग-माया आकुल हो गयी हैं। भगवद्भाव—वसुदेव-देवकी में यह जो भगवद्भाव आ गया है राम-श्याम के प्रति—यदि यह बना रहे—हो चुकी लीला ! महामाया प्रमाद नहीं कर सकतीं।

'मेरे लाल !' ओह--कब से खड़े हैं ये ! ये सुकुमार हृदयघन--कितने दिनों पर मिले हैं ये। वसुदेवजी--माता देवकी--हाँ, दोनों--दोनों ने साथ ही भुजाएं फैला दीं और राम-श्याम को दबा लिया हृदय से।

पुलक-पूरित शरीर, नेत्रों से बरसती वारिधारा--दाऊ और श्रीकृष्ण की अलकें आर्द्र होती जा रही हैं ! स्नान करते जा रहे हैं दोनों। नेत्रों का यह परम-पावन प्रवाह—यही तो इनका चिरकांक्षित महाभिषेक है ! नेत्र झर रहे हैं, शरीर निश्चल निष्पन्द ! यह स्पर्श, यह सुख--चेतना तदाकार हो चुकी है और ये राम-श्याम--ये दोनों भी तो पिता के, माता के वक्ष को नेत्रों के जल से शीतल करते--वहाँ के वर्षों के ताप को शमित करते निष्पन्दन हो गये हैं।

दूर—व्रजेश्वर कुछ दूर ही तो ठिठककर रुक गये हैं गोपों के साथ। भला, पुरजन कैसे व्रजराज से आगे बढ़ने का साहस कर सकते हैं आज। राम-श्याम का यह मिलन--श्रीवसुदेवजी, देवकीजी--इनके इस आनन्द में व्याघात नहीं करना चाहिये। ये चिर-दुखिया—इनके हृदय का बाँध उन्मुक्त हुआ है आज ! आज इसमें दूसरे को बाधा नहीं देना चाहिये। यह मिलन—बालकों का वसुदेवजी से यह मिलन--बाबा के नेत्र तो अपलक हो रहे हैं। ये तो यहीं से गद्‌गद हो रहे हैं, शिथिल हो रहे हैं ! इनके नेत्रों से भी वही अजस्र प्रवाह चल रहा है।

'भगवान् वासुदेव की जय !' 'श्रीवसुदेवजी की जय !' 'व्रजराज श्रीनन्दराय की जय !' जय ध्वनि तो गूँजती ही जा रही है।

'श्रीनन्दराय !' वसुदेवजी जैसे सोते-से जगे हों ! 'इस निधि के परम संरक्षक वे विपत्ति के दयामय बन्धु !' दोनों भुजाएँ फैलाकर विह्वल, आतुर दौड़े वसुदेवजी और यह दौड़े व्रजराज बाहु पसारे अपने परमबन्धु से मिलने ! यह उमड़ता सौहार्द-सिन्धु.....

'श्री वसुदेवजी की जय !' 'व्रजराज श्रीनन्दराय की जय !' जय ! जय !! जय !!!

—❀○❀○❀—

यादव महाराज उग्रसेन

"त्वत्पादुके अविरतं परि ये चरन्ति ध्यायन्त्यभद्रनशने शुचयो गृणन्ति ।
विन्दन्ति ते कमलनाभ भवापवर्गमाशासते यदि त आशिष ईश नान्ये ॥"

—भागवत १०।७२।४

'कंस बड़ा क्रूर, बड़ा निर्दय, बड़ा नृशंस निकला ! ऐसे पुत्र का पिता हुआ मैं—धिक्कार है मुझे ।' महाराज उग्रसेन बंदी हुए और वह भी अपने ही पुत्र द्वारा। राज्य गया, सम्मान गया, सुख गया—यह बंदी-गृह; किंतु कहाँ इन्हें अपने अपमान का खेद है।

'भोग का काल व्यतीत ही हो चुका था ! राज्य तो कंस का था ही। वह युवराज था—उसे सिंहासन देकर वन में चला जाता और नारायण का भजन करता !' महाराज कहाँ आसक्त थे राजकार्य में। वैसे भी तो सारे अधिकार कंस को उन्होंने ही दे रक्खे थे। 'दयामय श्रीहरि—उन अपार करुणासागर की दया का कहीं पार है। मैं कंस को राज्य देता—वह क्रूरकर्मा—प्रभु ने मुझे उसके अपराधों में निमित्त बनने से बचा लिया।' जो इस बंदी बनने में भी आराध्य के अनुग्रह का साक्षात्कार करता है, कहाँ शक्ति है शोक में कि उसके हृदय का स्पर्श कर सके। महाराज तो इस बंदी-गृह में भी महाराज ही हैं। यह निश्चिन्तता, यह निर्भयता—कंस का कहाँ साहस है कि वह पिता के सम्मुख भी आये। भगवान् ने एकान्त का सुअवसर दिया है। महाराज अपने भजन-पूजन में उसका पूरा उपयोग कर लेना चाहते हैं।

'कंस ने देवकी का पुत्र मार दिया !' यह स्वार्थी पिशुन कंस—यह कोई न कोई अत्याचार करता ही रहता है। 'प्रभो ! दयामय ! इस मूर्तिमान् पाप से पृथ्वी का परित्राण करो !' महाराज की प्रार्थना उनके हृदय से निकलती है। 'कंस पुत्र है, पुत्र के कर्मों में पिता का भी भाग होता है !' कितनी व्यथा होती है महाराज को ! इस शिशुघाती कंस से कब यदुवंश का त्राण होगा ! यह पवित्र भोजवंश का कलङ्क—महाराज ने कितनी बार अपने को धिक्कारा है। कितनी बार वे व्याकुल हुए हैं यह सोचकर कि कंस उनका पुत्र है। 'अवश्य मैं ही पापी हूँ ! मुझ में पाप न होता—यह क्या इतना दुर्जन हो जाता !'

'यदुवंश उत्पीड़ित हो रहा है ! लोग भाग रहे हैं ! कंस के अनुचर ऋषि-मुनियों के आश्रमों को ध्वस्त कर रहे हैं !' महाराज हृदय को वज्र बनाकर सुनते इन संवादों को ! प्राणों के समान जिन यदुवंशियों का पालन किया उन्होंने—निर्वासित हो रहे हैं, घर-द्वार छोड़कर जीवन के भय से भागने को विवश हो रहे हैं वे ! परमाराध्य, भुवनवन्द्य विप्रों पर अत्याचार—जिनकी सेवा में शरीर अर्पण करना भी वे अपना सौभाग्य समझते थे—उनका पुत्र उन्हीं परमपावन ऋषि-आश्रमों को ध्वस्त कर रहा है !' लज्जा, शोक, क्रोध,—पिञ्जरबद्ध केसरी और करे भी क्या ?

'देवकी के अष्टम पुत्र के बदले कन्या हुई ! वह भगवती कह गयी है—कंस का मारनेवाला कहीं उत्पन्न हो चुका !' महाराज को परम प्रसन्नता हुई उस दिन यह सुनकर। इस नृशंस से पृथ्वी की रक्षा तो हो !'

'साक्षात् नारायण ने अवतार धारण किया वसुदेवजी के यहाँ ! वे किसी प्रकार गोकुल पहुँच गये ! पूतना, बकासुर-अघासुर—कंस के प्रधान-प्रधान अनुचर खेल-खेल में मार दिये उन्होंने !' पता नहीं कैसे समाचार हैं ये—'आराध्य अवतीर्ण हुए—इस अधम पर भी दया करेंगे ! कहाँ ऐसा सौभाग्य हो सकता है। धरा पावन हो ! ये असुर नष्ट हों !' महाराज को इतने में ही संतोष है।

'अरिष्ट को मसल दिया उन्होंने ! केशी यमलोक पहुँच गया ! अब कंस ने मथुरा बुलाया है उन्हें !' समाचार तो पहुँच ही जाते हैं और उन सर्वेश के समाचार—जिसके प्राण उसी में लगे हैं, जिसके कर्ण उसकी लीला-सुधा के चिर-पिपासु हैं, उससे कैसे छिपे रहते हैं उसके चरित !

'प्रभु पधारे मथुरा ! धन्य है यह भूमि !' महाराज के हृदय में तुच्छ कंस का भय आतङ्क नहीं उत्पन्न कर सकता। 'अब अवश्य यह अन्याय, अधर्म मिटकर रहेगा !' उनमें एक जीवन आ गया है इस विश्वास से।

'भगवान् वासुदेव की जय !' यह गूँजता गगनभेदी-घोष।

'भगवान् वासुदेव की जय !' पूरे उच्च स्वर से अपने एकाकी बंदी-कक्ष में महाराज ने जयघोष किया। कंस कैसे उन्हें मल्ल-रङ्ग में उपस्थित होने देता। वृद्ध महाराज को देखकर कहीं प्रजा में कुछ उत्तेजना हो.....।

'कंस मारा गया ! श्रीकृष्ण ने मार दिया उसे ! उसके सभी भाई मारे गये !' महाराज के सभी पुत्र मार दिये गये—यह बात जैसे उनके हृदय को स्पर्श ही नहीं करती। 'सच, कंस मारा गया ? उसके सभी क्रूरकर्मा भाई मारे गये ? भगवान् वासुदेव की जय !' ये तो इतने उल्लास से जयनाद कर रहे हैं, जैसे यह वध चिर-अभीष्ट रहा हो इनका।

'कंस मारा गया ! यदुवंश का कलङ्क दूर हो गया !' एक घोर चिन्ता, तिल-तिल, क्षण-क्षण दबाये रहनेवाला शोक दूर हो गया। प्रभु—वे वासुदेव मथुरा में ही हैं ! वे करुणा-वरुणालय—मैं अधम सही, पापी सही, उनकी दया के वरदान की भी कोई इयत्ता है ! एकबार उन श्रीचरणों को देख पाता ! एक बार उस भुवन-मोहन-झाँकी को इन नेत्रों से देख लेता !' प्राणों में यह जो प्यास तड़पने लगी है—बढ़ती जाती है—बढ़ती ही जाती है यह। महाराज एक झाँकी की प्रतीक्षा लिये आकुल हो रहे हैं। वे ही दया करें तो—प्रार्थना करने का भी तो अधिकार नहीं है !

× × × ×

'महाराज उग्रसेन की जय !'

'यादव महाराज उग्रसेन की जय !'

'महाराज उग्रसेन और महाराज ? कौन हैं वे लोग ? क्यों यह जयघोष इस कारागार की ओर बढ़ता आ रहा है ? क्यों अब इस दुर्बल, कलङ्कित, शक्तिहीन को इस प्रकार लज्जित किया जा रहा है ?' महाराज चञ्चल हो उठे हैं। यह जयघोष—उच्च-से-उच्चतर होता जा रहा है यह !

'यह खुला द्वार ! कौन ? कौन ?' यह पीताम्बरधारी, मयूरमुकुटी, इन्दीवर-दल-नील वनमाली—इसका भी क्या परिचय अपेक्षित होता है। यह इसके साथ स्वर्ण-गौर, नीलाम्बरधारी ! महाराज तो जैसे मूर्ति बन गये हैं। पलकें गिरनी बंद, नेत्रों से वारिधारा, शरीर निष्पन्द !

'यादव महाराज उग्रसेन की जय !' यह घन-गम्भीर घोष ! यह श्रीकृष्णचन्द्र स्वयं जय-नाद करता आ रहा है।

'प्रभो ! करुणामय ! भक्तवत्सल ! इस अधम पर आपका इतना अनुग्रह !' महाराज को बहुत कुछ कहना था—वहाँ, कुछ भी तो स्मरण नहीं आता ! जो थोड़े शब्द हैं—गद्गद कण्ठ उन्हें प्रकट करने में समर्थ कहाँ है। यदि वे कुछ कहें भी—उनकी प्रार्थना के शब्द क्या सुने जा सकेंगे ? यह श्यामसुन्दर—यह तो बार-बार जयनाद कर रहा है—'महाराज उग्रसेन की जय !'

महाराज की प्रार्थना के शब्द—केवल प्रार्थना के शब्द ही इस जयघोष में डूब गये हों—डूब तो गये प्रार्थना के भाव भी ! यह कन्हाई मुस्कराया ! इसका हास्य ही तो मोहिनी माया है और यह कह रहा है—'नानाजी, क्षमा करें अपने इन अपराधी बच्चों को !' यह प्रणाम कर रहा है।

'बच्चे—बच्चे ही तो ! यह गौर-श्याम मूर्ति, यह सौन्दर्यघन श्रीविग्रह ! यह सुकुमार वय ! ये अपने ही तो बच्चे हैं !' उग्रसेनजी तो वात्सल्य-विभोर हुए, दोनों को वक्ष से लगाये अपने अश्रुओं से इनकी कुटिल अलकों को आर्द्र करने लगे हैं।

× × × ×

'महाराज, सिंहासन को भूषित करें !' यह कैसा अनुरोध है। कंस की अन्त्येष्टि कितनी धूमधाम से करायी इन्होंने--दुष्ट, क्रूर, शिशुघाती कंस की अन्त्येष्टि ! उसने इनके ही सात अग्रजों का जन्मते ही बध कर दिया और ये—ये दयामय उसकी अन्त्येष्टि में कितने व्यस्त रहे हैं; पर क्या मथुरा का राजसिंहासन इनके श्रीचरणों से पवित्र न होगा ? महाराज उग्रसेन इस समय कुछ भी बोलने में असमर्थ हैं। उनका कण्ठ भर आया है।

'मैं वृद्ध, असमर्थ—जो बंदी रह चुका हो, उसका शौर्य तो अस्त हो चुका ! मैं क्या शासन करूँगा ! कहाँ इस प्रलोभन में डालते हैं आप ! महाराज कुछ कहें या न कहें, उनके नेत्र तो सब कुछ कहे ही दे रहे हैं।

'महाराज, हम सब आपकी प्रजा हैं ! हम बड़ी आशा से इस आयोजन में एकत्र हुए हैं ! आप जानते ही हैं कि ययाति के शाप के कारण हम यदुवंशी राजसिंहासन पर नहीं बैठ सकते ! आप कृपा करें ! आचार्य प्रतीक्षा कर रहे हैं !' ये श्रीकृष्णचन्द्र तो आज समस्त सभासदों की ओर से बोल रहे हैं। ये प्रजा हैं--ये त्रिभुवनपति सर्वेश—ये इस क्षुद्र की प्रजा ! पर अपने भाव-स्निग्ध भक्तों के ये क्या नहीं बनते !

ययाति का शाप ! अन्ततः उग्रसेनजी भी तो यदुवंशी ही तो हैं। उनके लिये भी तो वैसा ही, वही शाप है। भोजकुल ने अपने पूर्वजों के उस शाप की उपेक्षा कर दी और वृष्णिवंश सदा से मर्यादा की रक्षा करता आ रहा है। स्वयं उग्रसेनजी जब एक बार सिंहासन स्वीकार कर चुके हैं—कैसे कहें कि वह शाप तो मुझ पर भी वैसा ही है। वृष्णिवंश धन्य है ! अपने पूर्वज के शाप—उसके वचन की मर्यादा का कभी भङ्ग नहीं किया उसने और आज श्रीकृष्णचन्द्र उसी गौरव को क्यों प्रोज्ज्वल न करें।

"महाराज, आप शङ्का न करें ! सिंहासन पर आसीन हों और हम प्रजाजनों को आदेश दें ! मैं आपका भृत्य हूँ--मैं आपकी आज्ञापालन में उपस्थित हूँ ! किसी का साहस नहीं कि आपके आदेश का अतिक्रमण कर सके ! आपके चरणों में श्रद्धाञ्जलि से अपने उपहार अर्पित करने में महेन्द्र, वरुण, कुबेरादि समस्त देवता तक अपना सौभाग्य मानेंगे, सामान्य नरेशों की तो चर्चा ही क्या !" त्रिभुवनाधीश जिसके पार्श्व में खड़ा होगा, महेन्द्रादि उसके पदों में प्रणत होने में अपने को धन्य मानेंगे ही।

ये श्रीकृष्णचन्द्र आग्रह कर रहे हैं ! ये तृण को भी आदेश दे दें तो वह महेन्द्र के वैभव का अधिकारी हो जाय ! ये जिसे गौरव दें, वही तो विश्ववन्द्य है। किस में साहस है इनकी इच्छा का प्रत्याख्यान करने का। ये चाहते हैं—इनका आदेश—इनकी आज्ञा के पालन में ही तो प्राणी का परम मङ्गल है और अब तो ये हाथ पकड़कर उठा रहे हैं। ये तो भ्रूसंकेत से किसी को अमरावती तो क्या, ब्रह्मलोक के अधीश्वर का आसन दे सकते हैं और अब ये हाथ पकड़कर जब बैठा रहे हैं राज्यासन पर उग्रसेनजी को—

'यादव महाराज उग्रसेन की जय !'

श्यामसुन्दर के जयघोष में ही समस्त मङ्गल-कृत्यों की पूर्णता हो चुकी ! आचार्य गर्ग अब अभिषेक करेंगे, मङ्गल-पाठ होगा.....होगी ही यह सब विधि तो। जहाँ मङ्गलों का स्वयं अधिष्ठाता अग्रणी है, वहाँ विधियों को भी तो धन्य होना है।

दोनों अञ्जलि फैलाकर अपने रत्नोपहार भेंट किये श्रीकृष्णचन्द्र ने और अभिवादन किया ! कृतार्थ हो गया मथुरा का राजसिंहासन। दाऊ ने अपने उपहार देकर प्रणिपात कर लिया और अब तो इस पुण्यपर्व में, इस भुवनवन्द्य तीर्थ में अपनी श्रद्धा आवेदित करके पवित्र होना है सबको। जहाँ श्यामसुन्दर का मयूर-मुकुट नत हुआ है—उससे परम-पावन तीर्थ किसे कहाँ मिलना है। व्रजराज ने उपहार दिये अपने और ये नम्रता, सरलता की मूर्ति--महाराज ने सिंहासन से उठकर भुजाओं में भर लिया उन्हें। मथुरा के सिंहासन को प्रथम उपहार व्रजपति के द्वारा दिये जाने का पुरातन नियम सार्थक हो गया।

'व्रजेश, कंगाल है उग्रसेन ! आपकी अनुकम्पा ने इसे यहाँ बैठा दिया।' महाराज के प्रेम की सीमा नहीं है और सीमा नहीं है व्रजपति के प्रेम की !

बाबा ने उपहार दे दिया ! व्रजराज का उपहार—सिंहासन के पूर्णाधिकार की तो स्वीकृति हो गयी इस सम्मान से ही। औरों को तो अब अपने को सार्थक करना है। अनुगतों की पंक्ति में आना है।

× × × ×

'कौन-कौन चले गये हैं ? कहाँ चले गये हैं ?' श्रीकृष्णचन्द्र व्यस्त हो उठे हैं। कंस के भय से यदु, वृष्णि, अन्धक, मधु, दाशार्ह, कुकुर आदि के वंशज यादव-गण, उनके परिजन, सुहृद्, सम्बन्धी—बेचारे स्वगृह, स्वदेश, त्यागकर पता नहीं कहाँ चले गये। कितना कष्ट, कितनी यातना सहनी पड़ी उन्हें। अब नित्य मथुरा से चर जाते हैं पता लगाने। नित्य सहस्र-सहस्र रथ जाते हैं—सबको लाना है, सम्मानपूर्वक ले आना है ! जन्म-भूमि उनका स्वागत करने को समुत्सुक है।

'कंस मारा गया ! महाराज उग्रसेन पुनः सिंहासनासीन हुए !' कितना मङ्गल-समाचार है ! लोग स्वतः गृहों को लौट पड़े हैं। दूसरे राज्यों में सम्मान, सम्पत्ति—सब सही, पर क्या वहाँ जन्म-भूमि सा अपनत्व मिलेगा ?

'सब के गृह राजकोष से बनवा दिये जायँ ! पूर्वापेक्षा विस्तृत, सुसज्जित बनवा दिये जायँ !' आदेश हो चुका है। भवनों की श्रेणियाँ प्रस्तुत हो गयी हैं ! 'आप अपने गृहों में सुख से निवास करें ! आप की ही कृपा से तो मथुरा की श्री है !' श्रीकृष्णचन्द्र तो तुच्छतम व्यक्ति को भी महत्ता देने लगे हैं। प्रत्येक का आदर, प्रत्येक का सत्कार और यह अपार धन-राशि—कंसकी की हुई हानि कितनी तुच्छ हो गयी है इसके सम्मुख। धन, रत्न, वस्त्र, गौ, वाहन, सेवक—सभी तो गृहों में राज्य-सेवक पहुँचा गये हैं। मथुरा का यह वैभव, राम-श्याम का यह अनुग्रह, अमरावती का अधीश्वर भी ईर्ष्या करे इससे। उत्कण्ठा हो देवराज के भी मनमें—यदि कंस ने उन्हें भी निर्वासित कर दिया होता ! यदि वे भी मथुरा में आ पाते—इतना सौभाग्य कहाँ उनका।

—❀⊂❀⊂❀—

बाबा की बिदाई

"रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातं भास्वानुदेष्यति हसिष्यति पङ्कजश्रीः।
इत्थं विचिन्तयति कोशगते द्विरेफे हा हन्त हन्त नलिनीं गज उज्जहार॥"

कंस मारा गया। असुरों के उत्पात समाप्त हो गये। रहे-सहे कंस के अनुचर दिशाओं में भाग गये। महाराज उग्रसेन ने पुनः सिंहासन प्राप्त किया। देश-देशान्तरों में भागे यदुवंशी इतने दिनों के कष्ट के पश्चात् स्वदेश लौट रहे हैं। उनका सत्कार हो रहा है। यह सब हुआ श्रीकृष्ण के द्वारा! श्रीकृष्ण—श्याम, व्रज के युवराज—इसी कन्हैया ने ही तो इस विपत्ति से पूरे राज्य का उद्धार किया है। बाबा, गोप-गणों के आनन्द की कोई सीमा नहीं है। मथुरा में उनका गौरव सदा प्रथम कोटि का रहा है और अब—अब तो सभी उन्हें परम श्रद्धा, परमादर से प्रणाम करते हैं।

महाराज उग्रसेन ने चाहा था कि व्रजराज का आतिथ्य वे सिंहासन की ओर से कर सकें; लेकिन श्रीवसुदेवजी की श्रद्धा, उनका सौहार्द—बाबा मथुरा में हों और अन्यत्र कहीं किसी के अतिथि बनें—यह तो उन दुर्दिनों में भी शक्य नहीं था और आज—आज तो वसुदेवजी का भवन ही तो वास्तविक राज-सदन है। वे अपने इन भाई का सत्कार करने में आज कहाँ तृप्त हो पाते हैं।

श्रीवसुदेवजी का स्नेह, उनका आग्रह—दिन बीतते जा रहे हैं! व्रज में जाना है, नित्य वहाँ से संवाद आते हैं, नित्यचर यहाँ से जाते हैं—नित्य प्रस्थान का उपक्रम होता है, और—श्रीवसुदेवजी के प्रेमानुरोध को तोड़ कैसे दिया जाय। श्याम अपने अग्रज के साथ देवकीजी के भवन में ही रात्रि-विश्राम करता है। अपने बड़े भाई से पृथक् रह भी तो नहीं पाता वह। आज-कल बहुत व्यस्त रहता है। महाराज उग्रसेन तो बिना उससे पूछे कोई काम करना ही नहीं चाहते। कन्हैया बहुत चतुर, बहुत बुद्धिमान् है छोटेपन से। निर्वासित यदुवंशी प्रायः नित्य आते हैं और वह उनको गृह-सम्पत्ति, वाहनादि दिलाकर उनकी व्यवस्था करता है। वही नगर की, सेना की, सभासदों की सम्पूर्ण व्यवस्था का संचालक हो रहा है आज। श्याम बहुत व्यस्त रहता है; बहुत व्यस्त रहता है और तब भी दिन में बार-बार आता है। पता नहीं क्या-क्या—कितनी अद्भुत बातें कहता है। किस प्रकार बाबा को समझाने का प्रयत्न करता है। कितनी बार आता है नित्य और कितना कार्य-व्यस्त है आज-कल। व्रज का यह युवराज—यह तो मथुरा का स्वतः-सिद्ध संचालक बन गया है। महाराज उग्रसेन का कितना स्नेह है इसपर। कंस ने मथुरा की समस्त व्यवस्था ही अस्त-व्यस्त कर दी थी। कन्हैया सबको सँवारने में लगा है। उसे इसमें प्रसन्नता है। कुछ दिन ऐसा ही सही, अपने-आप दो-चार दिन में उत्साह शिथिल हो जायगा इसका और अभी मथुरा को भी तो उसके इन कार्यों की आवश्यकता है। प्रेमवश सब उसकी बात शीघ्र मान लेते हैं।

तपोवन पुनः वेदध्वनि से गगन को पवित्र करने लगे हैं। द्विजों की सविधि आहुतियों से उठा धूम्र दिशाओं को पावन करने लगा है। भगवान् नारायण के मन्दिरों से गूँजती शङ्ख-ध्वनि—घण्टा-निनाद मानव के कलुष को ध्वस्त-स्रस्त करता है अब। मथुरा सम्पत्ति, सुख, मङ्गल का आकर हो गयी है। 'यह सब श्रीकृष्णचन्द्र का अनुग्रह है!' समस्त पुरजन, सभी नर-नारी यही तो कहते हैं। श्रीकृष्ण का अनुग्रह—पर श्रीकृष्ण को अब घर भी तो चलना चाहिये। गोपियाँ, गायें, बछड़े, व्रज की भूमि का अणु-अणु, पत्र-पत्र उसकी आकुल प्रतीक्षा कर रहा है।

'कनूँ तो अब पूरा ही बदल गया !' सखाओं का मन इस मथुरा में कैसे लगे। यह महा-नगर, यह राज-सदन, ये ठाट-बाट और यह श्याम अब दिनभर सेवकों से घिरा आदेश देने में ही व्यस्त रहता है। यह लोगों के स्वागत-सम्मान में ही थका जाता है। आता है, मिलता है, हँसता है; पर वह वृन्दावन, वह उन्मुक्त कानन, वह स्वच्छन्द-क्रीड़ा। कहीं उपवन में स्वच्छन्द विचरण करनेवाला पक्षी पिंजरे में प्रसन्न हो सकता है। लौह-पिञ्जर न सही, यह स्वर्ण और रत्न का पिंजड़ा! कन्हैया इसमें स्वयं कितना दुबला हुआ जा रहा है। बालक तो व्यग्र हो गये हैं। श्याम चलता नहीं—वह चले तो ये भाग जायँ, छकड़ों की प्रतीक्षा भी न करें, भाग जायँ अपने व्रज में।

× × × ×

'अभी क्या शीघ्रता है !' श्रीवसुदेवजी बराबर व्रजेश को व्रज लौटने से रोकते जा रहे हैं। बराबर वे इस प्रश्न को टालते जा रहे हैं। कितना प्रेम है उनका अपने बन्धु से।

'कन्हैया को अब यहाँ भेज दें !' गोपों का आग्रह उचित ही तो है। बाबा कितने समुत्सुक हैं। कब तक इस प्रकार मथुरा में वे निवास करें।

'श्रीकृष्ण तो है ही आपका ! अब दो दिन तो वह रह ले !' वसुदेवजी विह्वल हो जाते हैं। उनकी वह स्नेह-थकित दशा—बाबा का अनुरोध भी मूक बन जाता है।

'वासुदेव ! भगवान् वासुदेव ! वासुदेव श्रीकृष्ण !' ये मथुरावासी पता नहीं क्या कहते हैं। उस दिन कंस के मरने पर इन लोगों ने 'भगवान् वासुदेव' की जयध्वनि से गगन गुञ्जित कर दिया। गोपों को बड़ा अद्भुत लगा, उनके भोले, सरल, चपल कन्हाई को ये नगरवासी पता नहीं क्या-क्या बना देना चाहते हैं; किंतु—अब तो आशङ्का होने लगी है—'वासुदेव श्रीकृष्ण !' तो ये कृष्णचन्द्र को वसुदेवपुत्र बनाकर ले लेना चाहते हैं ? कन्हैया को ही ले लेना चाहते हैं ?

'वसुदेवजी श्रीकृष्ण को भेजने में बराबर आनाकानी करते जा रहे हैं। वे टालते जा रहे हैं। सुना है श्याम देवकीजी को 'माँ' कहता है। वह तो सभी को स्नेह करता है। उसपर सभी का अनुराग रहा है सदा से; पर यह जो नगर में चर्चा है ! ये नगरवासी जो श्याम को वासुदेव कहने लगे हैं !' गोपों का हृदय शङ्कित होने लगा है। वे चिन्तित हो उठे हैं।

'हम सब यहाँ मर मिटेंगे ! हम संग्राम करेंगे और इन नागरिकों को भी पता लगेगा कि गोपों की भुजाओं में कितनी शक्ति है ! कन्हैया को लिये बिना कौन व्रज जायगा ! हमारा युवराज और उसे ये यादव छल से छीन रहे हैं !' कितनी आशा, कितने उल्लास, कितने प्रेम का आधार है यह व्रजयुवराज ! कितनी तपस्या से व्रज ने पाया है इसे। व्रज के इस जीवन-धन को खोकर व्रज कैसे जीवित रहेगा। गोपों में उत्तेजना आये, वे मरने-मारने पर उद्यत हो जायँ—क्या अस्वाभाविक है इसमें।

'श्यामसुन्दर को आज चुपचाप भगा देना है ! व्रजेश्वर और एक सबल यूथ साथ जायगा ! हम लोग यहाँ शस्त्र-सज्ज सावधान रहेंगे ! देख लेंगे मथुरा की शक्ति को ! एक दिन सभी को मरना है ! कोई अमर होकर यहाँ नहीं आया है ! हमारे कन्हैया को हमारे रहते कोई छीन लेगा हमसे !' उत्तेजना सीमापर पहुँच चुकी। जब वृद्धों के चिन्ताशील मस्तक झुक जाते हैं, जब उनकी अनुभव-पक्व मेधा कोई मार्ग नहीं पाती, तभी तो तरुणों के सबल रक्त की उत्तेजना प्रज्वलित अङ्गार-सी फुंकारती पथ बना देती है। उसी समय तो युवकों के आवेश निराशा के अन्धकार में ज्योतिः दीप्त करते हैं।

'श्रीवसुदेवजी मेरे भाई हैं। वे हमारे परम सुहृद्—उनसे कलह की जाय !' व्रजपति का हृदय व्यथा से चीत्कार कर उठा है। वसुदेवजी से संघर्ष—यह भी क्या सोचने की बात है ? 'मुझे एक अवसर दें आप सब ! मैं आज ही सब बातें पूछ देखता हूँ ! जिसने सत्य की रक्षा के लिये अपने नवजात शिशु क्रूर कंस के हाथों सौंप दिये, वह झूठ तो नहीं ही बोलेगा !' बाबा ने निश्चय कर लिया। मथुरा के लोग कुछ कहें, पर उन्हें अपने बन्धु पर पूरा भरोसा है। गोप भी तो अविश्वास का कोई कारण नहीं देखते।

× × × ×

'मैं किस मुख से कहूँ कि श्रीकृष्ण मेरा है ! वह देवकी की गोद में आया ! अँधेरी अर्ध-रात्रि में उसे उठाकर मैं रख आया व्रजरानी के अङ्क में। और आज मैं उसे अपना कहूँ !' ये वसुदेवजी क्या कह रहे हैं ? इनके ये अश्रु, यह भाव-विह्वल दशा, यह थकित वाणी—असत्य तो नहीं कहते हैं ये।

'कृष्ण !' हाय--ओह ! हृदय पर ही जैसे वज्र पड़ा हो ! 'कन्हैया मेरा नहीं है ! नहीं है श्याम मेरा !' बाबा के नेत्र तो फटे, उन्मत्त-से हुए वे और संज्ञाहीन हो गये। यह विवर्ण--हे प्रभो ! योगमाया—योगमाया भी आतुर हो उठी हैं अन्तरिक्ष में। व्रजेश का वात्सल्य--बाबा के प्राण—पर वे योगमाया के आराध्य की निधि हैं। उनके सम्बन्ध में प्रमोद नहीं किया जा सकता।

'वह बालिका—मैं उसे आपके यहाँ से चोर की भाँति उठा लाया ! उठा लाया यहाँ ! मुझ अधम ने अपने पुत्र की रक्षा के लिये अपने ही भाई की एकमात्र कन्या की बलि दे दी !' वसुदेवजी ही कहाँ संज्ञा में हैं। वे भी तो प्रलाप कर रहे हैं। कौन सुने अब उनका यह प्रलाप ! कोई सुने या न सुने, वे तो कहते जा रहे हैं—'तुमने श्रीकृष्ण को पाला, अपने प्राणों के समान रक्षा की उसकी ! उसके लिये क्रूर कंस के कोप-भाजन बने ! असुरों के उत्पात सहे और मैं कृतघ्न—यह विश्वासघाती नीच--तुम मुझे धिक्कारो ! तिरस्कार करो मेरा ! आज तक मैं तुमसे कपट करता रहा ! अपने स्वार्थ के लिये मैंने तुम्हें धोखा दिया।'

'भाई !' ये व्रजराज तो संज्ञा पाते ही उन्मत्त-से आलिङ्गन करने लगे हैं वसुदेवजी को, योगमाया--क्लान्त शान्त योगमाया—उन्हें ही जैसे जीवन का वरदान मिला है। व्रजराज का वात्सल्य—वे सर्वेश शक्ति न दें, इन वात्सल्य-कातर प्राणों को टिकाने में कहाँ समर्थ हो सकती हैं वे। 'भाई ! श्याम तुम्हारा ही है। आचार्य गर्ग ने संकेत किया था, कहाँ समझ सका मैं उस समय ! तुम्हारा ही है कृष्ण ! ये तो इस प्रकार हृदय से लगा रहे हैं वसुदेवजी को, जैसे श्रीकृष्ण ही को भेंट रहे हों। अन्ततः वसुदेवजी कन्हैया के पिता हैं न !

'कृष्णचन्द्र अपना नहीं है ! नहीं है व्रज का कोई युवराज !' गोपों में से अधिकांश मूर्छित हो गये। सब के नेत्र जैसे सूख गये शोक के वेग में। मुख पीले हो गये एक क्षण--ये सब तो जैसे वर्षों के रोग-पीड़ित हों। शरीर में न तेज, न श्री, न शक्ति !

'कनूँ अपना नहीं है ? ये सरल बालक--ये नवनीत-सुकुमार हृदय ! अब यह कृष्णचन्द्र आकर स्वयं एक-एक को उठा रहा है ! नाम लेकर पुकारकर, मुख पोंछकर, पटुके से अङ्ग पोंछता चेतना में ला रहा है और ये उठते हैं, नेत्र फाड़-फाड़कर देखते हैं उसकी ओर—नहीं, कनूँ उन्हीं का है। उन्हीं का--सदा से, सदा के लिये उन्हीं का ! कौन कहता है कि वह उनका नहीं है ! यह आशा न हो—उनके नन्हे सुकुमार-प्राण क्या एक पल टिक सकते हैं।

× × × ×

'बाबा, आप इतने व्याकुल क्यों होते हैं !' यह कन्हैया, यह दाऊ--ये दोनों व्रजराज के अङ्क में आ बैठे हैं। बाबा तो इन्हें हृदय से लगाये एक टक इनके कमल-मुख को देख रहे हैं। अश्रु-धारा चल रही है। हिचकियाँ बँध गयी हैं। श्याम अपने पटुके से बाबा के नेत्र बार-बार पोंछता जा रहा है।

'बाबा, आपने पिता से भी अधिक स्नेह से हमारा लालन-पालन किया ! अपने प्राणों से भी अधिक हमें माना !' कन्हैया का भी कण्ठ गद्गद हो गया है और यह दाऊ—दाऊ तो नहीं बोल सकेगा। इसने तो बाबा के अङ्क में मुख छिपा लिया है और कदाचित् अश्रु बहा रहा है।

'कौन कहता है कि मैं आपका पुत्र नहीं हूँ !' श्याम का यह स्वर—यही स्वर तो व्रज के जीवन का आशा-सूत्र है। 'कुछ भी कहें लोग, वही तो पिता है, वही तो वास्तविक माता है, जो असमर्थ माता-पिता द्वारा त्यक्त शिशुओं का पोषण अपने पुत्र के समान करते हैं। बाबा, मैं आपका ही पुत्र हूँ !'

'आप सब व्रज को पधारें ! यहाँ के सुहृदों के सुख की व्यवस्था करके हम दोनों भी स्नेह-कातर व्रज-बन्धुओं, अपने समस्त जाति-बान्धवों से मिलने शीघ्र ही आयेंगे !' श्यामसुन्दर ने एक-एक गोप, एक-एक गोप-बालक के अश्रु पोंछे पीतपट से। राम-श्याम सबसे मिले। सबको आश्वस्त करने का पूरा प्रयत्न किया।

'ये हमारी प्रसन्नता के लिये····!' ये बहुमूल्य वस्त्र, दिव्य रत्नाभरण, दुर्लभतम रसों के स्वर्ण-घट--इनकी यह विशाल राशि--गोपों को क्या यह सुरासुर-दुर्लभ सम्पत्ति आकर्षित कर सकती है ! जब उनका यह इन्द्रनील-मणि ही मथुरा में रहा जाता है—क्या काम आयेंगे ये वस्त्र, क्या होंगे ये आभरण ! किस उपयोग के हैं ये रस। कन्हैया जब अपने धूलि-धूसर अङ्गों से अङ्क में कूदते आ बैठने को समीप नहीं--वस्त्रों की कोमलता, सुन्दरता किस काम की है ? इन आभूषणों में किसकी झाँकी देखी जायगी अब ! कौन इन रसों का आस्वादन करके कृतार्थ करेगा इन्हें ? किंतु ये राम-श्याम के उपहार हैं, कन्हैया अपने करों से इन्हें पहना रहा है, सजा रहा है छकड़ों में। 'यह मैया के लिये, यह महर्षि शाण्डिल्य के लिये, यह····।' इसे तो एक गौ, एक वृषभ, एक बछड़ा, एक शुक-सारिका तक स्मरण है। गोपियों, गोपों, नन्हे शिशुओं, विप्रों, सेवकों और गायों, बछड़ों, वृषभों, गृहके—गोप गृहों के पालित पशु-पक्षियों तक के लिये नाम ले-लेकर उपहार रखता जा रहा है यह। सबके लिये वस्त्र, आभूषण या उत्तम भोज्य रसादि--इन दोनों भाइयों के ये अपार उपहार कोई कैसे इन्हें अस्वीकार कर देगा ! ये ही स्मृति-चिह्न तो जीवन के आश्वासन-सूत्र हैं।

महाराज उग्रसेन, श्रीवसुदेवजी, मथुरा के ये मुख्यतम लोग--पूरी मथुरा ही तो व्रजराज को विदा करने एकत्र हो गयी है। महाराज ने अपने उपहार सीधे व्रज भेज दिये हैं। मार्ग में समस्त सुविधाओं की व्यवस्था हो चुकी है। अब तो सबके नेत्र निर्झर बने हैं। वाणी रुद्ध है। सब विह्वल हो रहे हैं। यह क्या पूरी मथुरा ही व्रज को जायगी आज ? छकड़े तो खाली ही जा रहे हैं। यह नीरव—प्रेमाकुल समाज—यह क्या पैदल ही व्रज तक चला जायगा।

'आज सब लौटें अब !' कन्हैया ने ही अनुरोध करके नगर-वासियों को लौटाया। जैसे वह तो अग्रज के साथ व्रज ही जा रहा है। नगरवासी—कितने आतुर, कितने विह्वल-से ये रुक गये हैं। कौन लौटेगा अभी। ये यहाँ खड़े हो गये हैं, यहीं से एकटक देख रहे हैं।

'महाराज पधारें अब !' बाबा ने किसी प्रकार अनुरोध किया। महाराज उग्रसेन--उन्हें तो लगता है कि अभी कुछ ही पद तो आये हैं। क्या किया जाय, अधिक अनुरोध से व्रजेश को कष्ट होगा। वे संकोच के कारण रथ पर भी बैठ नहीं रहे हैं। महाराज को विवश हो रुकना ही है।

'आपको भी लौटना चाहिये अब ! कृष्ण बड़ा संकोची है, इसे कष्ट न हो !' बाबा को पता नहीं क्या-क्या कहना है, पर कण्ठ कहाँ कहने देता है। अश्रु—हृदय की व्याकुलता--भुजा फैलाकर मिले वे वसुदेवजी से। वसुदेवजी की ही वाणी कहाँ व्यक्त हो पाती है ! कहाँ कह पाते हैं वे--'मेरे विपत्ति के परम सहायक, मेरे प्राणप्रिय बन्धु ! यह कृष्ण तो तुम्हारा ही है ! तुम्हीं आकर इसकी खोज-खबर लेते रहना !' पर नहीं—वे आज बोल नहीं पा रहे हैं। गोपों से, बालकों तक से बारी-बारी, बार-बार मिलते हैं। व्रजेश बार-बार लौटने का अनुरोध करते हैं ! अब रुकना ही चाहिये उन्हें ! व पुनः बढ़ चलते हैं—पद स्वयं चलने लगते हैं आगे और फिर वही मिलन, वही अनुरोध—वही व्याकुलता।

'राम-श्याम—इस कन्हैया को, दाऊ को भी विदा करना है !' प्राण हाहाकार करते हैं। कहाँ विदा करना है इन्हें ! ये साथ न हों--एक पद आगे बढ़ा जा सकेगा ?' बैल चल सकेंगे ? छकड़े ही घूमेंगे ! मथुरा के लोग वसुदेवजी के साथ इन्हें लौटता देखते हैं तो देखें,—श्यामसुन्दर—कन्हैया और यह दाऊ--यह क्या दोनों बाबा के साथ बैठे हैं छकड़ों पर। व्रज-सीमा दूर ही कितनी है। यह नन्दनन्दन--यह क्या मथुरा से आया है ? मथुरा से पहुँचाने वाले ही तो लौट सकते हैं। बाबा आ रहे हैं।' यह तो जैसे व्रज से ही आगे बढ़ आया है !

—❀—❀—❀—

माता रोहिणी मथुरा को

"यथा प्रयान्ति संयान्ति स्रोतोवेगेन वालुकाः।
संयुज्यन्ते वियुज्यन्ते तथा कालेन देहिनः॥"

—भागवत ६। १५। ३

'मोहन आयेगा ! बहुत दिन हो गये श्याम को मथुरा गये ! पता नहीं गोप वहाँ क्या करने लगे ! व्रजराज यदि नहीं आ सकते तो कन्हाई को भेज क्यों नहीं देते ? वसुदेवजी राम को अब नहीं आने देंगे ! कृष्णचन्द्र भी बड़े भाई के साथ होगा ! नगर की धूम-धाम—पर बड़ा संकोची है वह ! कौन मनुहारें करके उसे कलेऊ कराता होगा ! वह भला, कैसे भोजन करता होगा ! दूसरे क्या उसे भली प्रकार रख सकते हैं ! संकोच के मारे वहाँ किसी से कुछ कह भी तो नहीं सकता !' मैया की चिन्ताओं का कोई अन्त नहीं है। पल उसे युग-से व्यतीत होते हैं। किसी का शब्द—किसी की पद-ध्वनि—ओह, वह दौड़ पड़ती है द्वार की ओर—'कोई आया तो नहीं मथुरा से !'

'प्रभात होने ही वाला है ! नीलमणि उठते ही नवनीत माँगेगा ! अभी पद्मगन्धा का दूध तो आया ही नहीं !' मैया भूल ही जाती है कि उसकी दधिमन्थन की शीघ्रता, दूध के लिये आकुलता का कोई अर्थ नहीं रहा है। वह तो स्नान के लिये जल मँगाती है कन्हाई के, उसके वस्त्र, आभरण, माल्य सजाती है और उसे कलेऊ कराने के लिये व्यग्र होती है। वह तो पगली-सी हो गयी है। माता रोहिणी उसे बार-बार सम्हालती है। सम्हालती तो हैं; पर उनका हृदय—वहीं क्या कम व्यथा के महावाडव का प्रदाह है।

'वह बजी मुरलिका ! वह दीखती है आकाश में गोरज !' मैया ही क्या अकेली पगली हुई है ? श्याम के स्वरूप की माधुरी—उस कृष्ण के आकर्षण ने तो पूरे व्रज को पागल बना दिया है। ये बालिकाएँ शृङ्गार करती हैं आतुरतापूर्वक और गोधूलि से पूर्व ही इनके रत्नथाल पुष्प, चन्दन, दूर्वाङ्कुर, लाजा, अक्षत आदि से सज जाते हैं। गवाक्षों पर नेत्र लगाये ये प्रतीक्षा करने लगती हैं। 'गायों को आगे करके, सखाओं से घिरा, अधरों पर मुरली रक्खे, धूलि-धूसर अलकें लहराता, नेत्रों में मादकता की वृष्टि करता मोहन आता होगा ! आता ही होगा !' ये तो बिचारी भोली बालिकाएँ हैं—प्रतीक्षा तो करती हैं वृद्धाएँ। काँपते करों में नीराजन के मङ्गल-दीप सजाये ये गृह-द्वारों से बाहर वनपथ की ओर दृष्टि लगाये किसी की प्रतीक्षा ही तो करती हैं !

कन्हैया की प्रतीक्षा—श्याम की प्रतीक्षा जब आकुल प्राणों में सत्य हो उठती है, कौन कहेगा कि वह असफल हो सकती है। गायें हुंकार करती हैं, बछड़े गोदोहन के समय मुख ही लगाना नहीं चाहते माता के स्तनों से और पशु भागकर एकत्र हो जाते हैं छूटते ही नन्दद्वार पर। 'हुम्मा ! हुम्मा ! बाँ ! बाँ !' यह कामदा, कपिला, धर्म्म, गौरव—श्रुतियों की साङ्गस्तुतियाँ चाहे असफल हो जायँ, तपःपूत मुनिजनों के गद्गद कण्ठ भले न सुने जायँ, पर क्या कनूँ इस पुकार की उपेक्षा कर सकेगा। गायें पुकारें और गोपाल उत्तर न दे !

श्याम कलेऊ न करे—मैया के मुख में क्या जल भी जा सकता है ? मोहन को रत्न-पलने पर निश्चन्त सुलाये बिना मैया को निद्रा आयेगी ? ये बालिकाएँ—उस त्रिभुवन-सुन्दर की एक झाँकी प्रातः गोचारण को जाते और सायं वन से लौटते भी न मिल सके—इनके सुकुमार प्राण इन देहों में आबद्ध रहेंगे ? कन्हैया पुचकारे नहीं, बलात् थनों से न लगाये—बछड़े क्या दूध पीने

चले हैं और गायें ही क्या दूध दे देंगी ? गोपाल यदि चराने न जाय—कौन पशु तृणों की ओर देखेगा ? कौन नन्दभवन के द्वार से हटनेवाला है ?

मैया अपने नीलमणि के मञ्जुचरित गुन-गुन गाती इधर से उधर लगी रहती है ! गोपियों के कलकण्ठ गूँजते रहते हैं। पशु भरपूर दूध देते हैं, वन को जाते हैं। 'कहैया मथुरा से अब तक नहीं लौटा ! कृष्ण—श्यामसुन्दर !' जैसे शरीर में प्राण ही न हों ! रक्त की एक-एक बूँद अन्तर के ताप से सूख गयी हो। हिमश्वेत मुख, कोटर-गत फटे-फटे नेत्र, पाषाण-सा निश्चल शरीर—एक क्षण में पता नहीं क्या हो जाता है सबको। 'यह मयूरपिच्छ, यह मन्दस्मित, ये दीर्घ लोचन, यह वनमाल !' एक क्षण—एक ही क्षण में वही उमंग, वही आनन्द, वही उल्लास, वही कलगीत। 'कहाँ गया है कनूँ ! वह जा सकता है !' जैसे कुछ हुआ ही नहीं। अद्भुत है—रहस्यमय है यह व्रज ! विचित्र हैं यहाँ के लोग। यहाँ तो वन के तरु, लता तक एक क्षण में सूख जाते हैं। पत्ता-पत्ता पीला होकर झड़ जाता है और दूसरे ही क्षण किसलय, पत्र, पुष्प, फल—शाखा-शाखा झूमने लगती है ! कौन समझ सकता है इस व्रज-भूमि को। कैसे समझे कोई—यह प्रेमधारा कहाँ किसी की बुद्धि इनके अपार माहात्म्य का स्पर्श कर पाती है।

× × × ×

'श्याम प्रसन्न है ! राम-श्याम बड़े आनन्द में हैं !' मथुरा से संदेश आते हैं। 'कन्हाई प्रसन्न है !' व्रज के लिये, गोपियों के लिये, मैया के लिये इतना ही संदेश क्या कम है। 'कनूँ प्रसन्न है !' मैया को विश्वास नहीं होता। उसका नीलसुन्दर बहुत संकोची है। वह भला, क्या प्रसन्न होगा वहाँ। व्रजेश ने आश्वासन देने के लिये ही यह कहलाया होगा ! पर ये संदेश—प्राणों की पिपासा के लिये ये संदेश भी सुधा-सीकर हैं।

'कंस मारा गया ! महाराज उग्रसेन पुनः मथुरा के सिंहासन पर आसीन हुए !' कितने मङ्गल-संवाद हैं ये। 'व्रजराज कब आयेंगे ? श्याम कब आ रहा है ?' हृदय तो यही आवृत्ति करता रहता है दिन-रात।

और जब व्रजराज आये—रात्रि के अन्धकार में, शान्त, शृङ्गनाद की हर्षध्वनि से रहित छकड़ों ने जब प्रवेश किया नन्दग्राम में ! वृषभों के गले की स्वर्ण-घंटियों ने ही सूचना दी और जैसे विद्युत् ने स्पर्श कर दिया हो सबको ! हाय—आरती के रत्नथाल झंकार करते हाथों से छूट गिरे, गवाक्षों पर मूर्छिता बालिकाओं को कोई सम्हालनेवाला भी नहीं था। गायों ने हुंकार की और फिर उनकी हुंकृति ही क्रन्दन बन गयी।

दिवस के प्रकाश में साहस नहीं हुआ था ग्राम में आने का। बाबा, गोप-गण—वे अपने गण—वे अपने आपे में थे कहाँ। उन्हें कहाँ पता था कि कहाँ जा रहे हैं वे। वृषभ उन्हें लिये जा रहे थे ! छकड़े में जुते मूक प्राणी—उन्हें भी साहस नहीं हुआ प्रकाश में ग्राम में आने का। मुड़कर पीछे देखते, रुकते, क्रन्दन करते वे अन्ततः कालिन्दी के कछार में प्रतीक्षा करते रहे ! कौन शृङ्ग बजाता ? किसके कण्ठ उत्तर देते ? गोपियाँ दौड़ीं और मूर्छित हो गयीं। गायों ने रज्जुबन्धन तोड़ लिये, गोष्ठों से कूदीं, भागीं, छकड़ों के समीप आयीं और बस—जैसे वे काष्ठ की प्रतिमाएँ हों। वृषभ चलते जा रहे थे—पता नहीं कैसे चलते जा रहे थे। नन्द-द्वार पर ही उन्हें रुकना था। 'कन्हाई नहीं है ! नीलमणि नहीं आया मथुरा से !' कोई उत्तर देनेवाला भी नहीं। वह दौड़ने का उल्लास—'छकड़े आये !' वह विह्वल उत्कण्ठा और यह वज्रपात ! मैया खड़ी ही गिर गयी भूमि में। आज कोई किसी को उठाने, सम्हालने वाला नहीं ! पछाड़, मूर्छा !—व्रज में अब और क्या रहा है। चेतना—आनन्दजीवन—कहाँ आया वह ! वह तो आया ही नहीं मथुरा से !

× × × ×

मथुरा से रथ आया है। श्रीवसुदेवजी ने माता रोहिणी को बुलाया है ! वे पति-वियोगिनी—यदुकुल का वह संकट-काल गया, वह मथुरा का अभिशाप—मर गया वह कंस तो। अब तो महा-

राज उग्रसेन मथुरा के सिंहासन पर हैं और श्रीवसुदेवजी—उनके ऐश्वर्य, सम्मान का कोई क्या वर्णन करेगा। मथुरा के हृदयों पर तो उनके राम-श्याम का ही एकाधिपत्य है। कंस के अत्याचार—कब के समाप्त हो गये वे तो। उस समय के निर्वासित, पलायित यदुवंशी दूर-दूर देशों, दुरूह गिर-काननों से चले आ रहें हैं। श्रीकृष्णचन्द्र ने उन्हें गृह, सम्पत्ति, वाहन—सभी ऐश्वर्य से पूर्णतः तुष्ट कर दिया है। मथुरा के दिन लौटे—ऐसे लौटे हैं कि इस वैभव, इस ऐश्वर्य की कल्पना ही शक्य नहीं। श्रीवसुदेवजी की गिरि-गुहाओं में गुप्तरूप से छिपी पत्नियाँ—उनके सभी बन्धु बान्धव—सब तो आ गये मथुरा में। श्यामसुन्दर ने रथ भेज भजकर बुलवाया सबको। अब वसुदेवजीने माता रोहिणी को बुलावाया है। सम्भवतः व्रजराज मथुरा में थे, इसीलिये अब तक उन्हें बुलाया नहीं गया है!

माता रोहिणी—व्रज सौभाग्य की वे मूर्तिमती अधिदेवता, उनके पतिदेव ने बुलाया है तो उन्हें जाना ही चाहिये। पुरजन, गोपियाँ—कोई भी और क्या कहे। हृदय—हृदय हाहाकार कर रहा है। माता रोहिणी—नन्दभवन की वे ही तो अधीश्वरी रही हैं। उनकी व्यवस्था, उनके स्नेहो-पहार, उनके आदेश और उनकी वे मृदुल सूचनाएँ—समस्त समारोह, सारी व्यवस्था की वे सहज संचालिका-व्रज का वह प्राणधन नहीं रहा और अब ये अधिदेवी भी जायँगी!

'श्रीरोहिणीजी जायँगी—जाना ही चाहिये उन्हें!' व्रजेश तो जैसे पूरे सूने हो गये हैं। 'श्रीरोहिणीजी जायँगी—वे कभी जायँगी भी व्रज से—कितना सत्य; पर प्राणों ने एक क्षण को भी इसे कभी स्मरण किया हो—वे व्रज-सौभाग्य की मूर्ति और अब जायगी? छकड़े सज्जित होने लगे हैं। उपहार एकत्र हो रहे हैं राशि-राशि, तरुण गोपों को आदेश दे दिया गया है सशस्त्र, साव-धान रथ के साथ जाने का। व्रज अपने अधिदेवता को उसके अनुरूप सम्मान ही से तो भेजेगा!

'पतिदेव ने बुलाया है!' माता रोहिणी को जाना चाहिये, उल्लास होना चाहिये उन्हें। उनके वियोग के दिन समाप्त हुए; पर कहाँ जाना है उन्हें? इस व्रज से, इन गोपियों से, इन दुखिया व्रजेश्वरी से दूर? व्रज—वह आपत्ति, वह कंस का भय और यह व्रज—शरण, छिः! व्रज में शरण देने या लेने की बात ही कहाँ है! श्रीव्रजराज—उदार, सरल, विनयी व्रजराज—सदा ही आदेश की प्रतीक्षा में रहे वे और व्रजरानी—ये अपनी सहोदरा, अनुजा-सी व्रजरानी—आज इस विपत्ति में इन्हें कैसे छोड़ दिया जाय! कौन देखेगा इस नन्द-भवन को? कौन सम्हालेगा इस उन्मादिनी-सी प्रेममयी व्रजेश्वरी को? ना कहीं नहीं जाना है उन्हें!

'राम-श्याम—कन्हाई—वह नीलसुन्दर नहीं है। हृदय तड़पता है उनके लिये। नेत्र आतुर हैं उसे देखने के लिये! यह सौभाग्य—यह सुख, यह तो जिनके साथ सदा मिला है, उन्हीं के साथ मिलना हो तो मिले! गोपियाँ तड़पती रहें, व्रजरानी उन्मादिनी बनी रहें और अपने नेत्र तृप्त किये जायँ—नहीं ऐसा नहीं होगा। क्यों ये गोप छकड़े जोतने में लगे हैं? क्यों ये व्रजराज कोष के सभी अमूल्य रत्न मथुरा भेजने का आयोजन कर रहे हैं? क्यों ये व्रजरानी उन्हें वस्त्राभूषणों से सजाने में अपनी व्यथा भूलकर जुटी हैं? कहाँ जाना है उन्हें। इस व्रज से, इस नन्द-भवन से, इन व्रजेश्वरी के समीप से कहाँ जाना है उन्हें? वे कहीं नहीं जायँगी! कहीं नहीं जाना है उन्हें!'

× × × ×

'दीदी, दया रखना हम पर!' ये देवरानियाँ—ये व्रजेश्वर के बन्धुओं की स्त्रियाँ—इनके ये भरे दृग, काँपते कण्ठ!

'महरानी जू! .....' ओह, गोपियों के कण्ठ तो करुणा से आगे असमर्थ ही हो गये हैं।

'माँ!' ओह, ये भोली बालिकाएँ! ये सुमन-कलिकाएँ माता के अङ्क में ही आकर मूर्छित हो गयी हैं।

'पगली, कहाँ जा रही हूँ मैं!' माता रोहिणी अञ्चल से इनके पीताभ मुखों के अश्रु भले पोंछ लें, उनके अपने नेत्र जो धाराएँ चला रहे हैं। ये बालिकाएँ—इनकी वेदना—क्या छिपा है, अब माता या मैया से—क्या उपाय है। माता के चरणों में मस्तक रखकर जब ये हिचकियाँ लेते-

लेते मूर्छित हो जाती हैं, आश्वासन का एक यह आश्रय था और आज वह भी छिना जा रहा है। मथुरा से रथ—फिर रथ आया है और वह माता रोहिणी को ले जायगा अब। बेचारी बालिकाएँ—इनके नन्हे प्राण.....माता व्यग्र, व्याकुल हो उठी हैं। इनको छोड़कर—इन सबों को छोड़कर—ना, इन्हें छोड़कर कहीं नहीं जाना है उन्हें!

'माँ!' यह भद्र—यह दाऊ की दूसरी मूर्ति और आज यह इसको रूखा, म्लान विवर्ण कमलमुख, यह आज माता के अङ्क में भी नहीं आ पाया। यह तो उनके चरणों से लिपटकर ही रह गया। रुदन—अब इन दीर्घ लोचनों में अश्रु कहाँ हैं कि यह रुदन करे। यह तो फटी-फटी आँखों से मैया को, माता रोहिणी को इस प्रकार देख रहा है, जैसे चेतना ही नहीं। जैसे अपरिचित देश में अज्ञात वस्तुओं को देख रहा हो।

भद्र! भद्र! मेरे लाल!' माता रोहिणी अङ्क में लेकर, हिलाकर पुचकारकर इसे संज्ञा में लाने के प्रयत्न में हैं। वे व्याकुल हो उठी हैं। माता किसे-किसे संज्ञा में लायें। किसे-किसे, कैसे आश्वस्त करें! यह पड़ा है मैया के अङ्क में तोक! वही नवघन-श्याम छटा, वही पीतपट, वही चन्द्रमुख—कन्हाई की मनुहारों का परम प्रिय यह उसका छोटा भाई—यह व्रजस्नेह की सुकोमल मूर्ति—आज यह इस प्रकार विपन्न-सा पड़ा है। यह सुबल, यह श्रीदाम, यह हास्य-मूर्ति मधुमङ्गल—माता इन बालकों को कैसे आश्वस्त करें! कैसे इन्हें समझायें। स्वयं उनकी ही अन्तर व्यथा असीम हो रही है और यह रथ आया है उन्हें लेने!

× × × ×

'मैं अभागिनी हूँ! देवकी माता सही, पर अपने पुत्र के संकोची स्वभाव को क्या जाने वह। उसे क्या पता कन्हाई की रुचि का। मेरा नीलसुन्दर बहुत कष्ट पाता होगा! कौन कौन उसे मनुहारें करके माखन खिलायेगा, कौन उसे दूध पिलायेगा! वह तो अपने से अभी ठीक मुख भी नहीं धो पाता! उसकी सुविधा कौन समझेगा वहाँ। किसी से वह खुलकर वहाँ कुछ माँग भी नहीं सकता! तुम मेरी ओर देखो, बहिन! मेरा लाल—तुम वहाँ रहो तो उसकी ठीक रुचि की व्यवस्था कर सकोगी! उसके स्वभाव को तुम मुझसे अधिक ही जानती हो! तुम उसे देख सकोगी—मेरे प्राणों को संतोष होगा! तुम उसे सम्हाल लोगी—इस आशा पर मैं जीती रह सकूँगी! दीदी, तुम मेरे लिये, कन्हैया के लिये पधारो मथुरा!" ये व्रजेश्वरी कातर कण्ठ से अनुरोध करने लगी हैं। माता रोहिणी के अश्रु अपने अञ्चल से पोंछती ये अनुरोध कर रही हैं। सच ही तो कहती है ये, इनके प्राण, इनके नेत्र—कहाँ भिन्न हैं ये माता रोहिणी से।

"मोहन को मथुरा में अवश्य संकोच होता होगा! किससे वह कहेगा अपनी रुचि की बात। कौन उसकी सुविधा से परिचित है वहाँ!' ये गोपियाँ, ये बालिकाएँ, वे बालक—सभी तो अनुनय करते हैं कि माता मथुरा पधारें। 'उनके कनूँ को कष्ट होता होगा! माता के वहाँ जाने से उसे सुख मिलेगा! उनकी उचित सुविधा की व्यवस्था माता रोहिणी अवश्य कर सकती हैं!' उसे सुख मिले, वह प्रसन्न रहे, प्राणों की यही तो एकमात्र अभीप्सा है यहाँ। ये सब बड़ी दीनता से, बड़ी कातरता से अनुरोध कर रहे हैं—'माता इन सब पर अनुग्रह करें! मथुरा पधारें वे!'

'कन्हाई को कष्ट होता होगा! सच ही उसे कष्ट होता होगा! देवकी को पता भी क्या कि नीलसुन्दर कब क्या चाहता है! कैसे वस्त्र, कैसे आभरण, कैसे अङ्गराग, कैसे व्यञ्जन प्रिय हैं उसे! वह संकोच—वह एक बार भी किसी से कुछ कहेगा नहीं! बड़ा कष्ट पाता होगा वह!' माता रोहिणी का हृदय भी व्यथा से मसल उठा है। 'कनूँ कष्ट पाता होगा! जाना चाहिये—जाना ही चाहिये तब उन्हें!' यह व्रज, ये व्रजेश्वरी, ये गोपियाँ, ये बालिकाएँ और ये बालक—कितना दुखद, कितना व्यथापूर्ण है यहाँ से जाने का विचार—पर जाना है—जाना ही चाहिये! मोहन की सुविधा.....।

रथ प्रतीक्षा कर रहा है ! गोप शस्त्र-सज्जित सन्नद्ध हो चुके हैं और ये मङ्गल विधान--ये स्वस्तिपाठ—रुदन को बलात् दबाकर ये अद्भुत आयोजन—कहाँ तक कोई अपने को रोके रहे। यह हिचकियाँ जो बार-बार फूट पड़ती हैं ! ये उपहार—इन उपहार देनेवालों के लोचनों के ये कातर-भाव और ये मस्तक झुकाये, म्लान वदन, परम विनीत व्रजराज—ये नम्रता की मूर्ति—आज ये और उनका यह मूक अभिवादन--माता रोहिणी को अब कहाँ अपने शरीर का बोध है ? यह व्यथा, यह संताप—मैया सम्हाले है आज उन्हें। यह उन्मादिनी-सी मैया—माता ने सदा जिसे सम्हाला आज वह सम्हाले है उन्हें।

गोपियाँ चरण-वन्दन करती हैं ! बालिकएँ अङ्क में मुख छिपाकर सिसक उठती हैं और बालक—आज किसकी व्याकुलता का पार है। दास, दासियाँ—पशु तक क्रन्दन कर रहे हैं। उपनन्द पत्नी माता रोहिणी को किसी प्रकार रथ तक लायी हैं। ये मस्तक झुकाये वृद्ध, तरुण, युवा गोप—इनके नीरव नेत्रों से टपकते बिन्दु--माता क्या इसे देख पाती हैं। व्रजरानी के कण्ठ से लिपटी वेसुधप्राय माता रोहिणी; किंतु कन्हैया को मथुरा में कष्ट होता होगा ! उसको सुख मिलेगा माता के वहाँ रहने से ! व्रज आज अपनी अधिष्ठाता को इसीलिये तो विदा कर रहा है ! विदा ! माता रोहिणी व्रज से विदा हो रही हैं ! कौन जाने--वे व्रज से कभी विदा भी होती हैं !

—❀⊂❀⊂❀—

उपनयन

"सर्वज्ञत्वे च मौग्ध्ये च सार्वभौममिदं महः।
निर्विशन्नयनं हन्त निर्वाणपदमश्नुते॥"

—श्रीलीलाशुक

श्रीकृष्णचन्द्र की आयु का यह बारहवाँ वर्ष है। श्रीबलराम को एक वर्ष और अधिक हो चुके। दोनों भाइयों का यज्ञोपवीत संस्कार पहिले ही हो जाना चाहिये था। उपनयन का मुख्य काल; किंतु वे संकट के दिन—क्रूर कंस के वे नृशंस अत्याचार—उस समय तो जीवन की सुरक्षा ही चिन्तनीय थी। मथुरा के वे दिन बीत चुके। विदेशों में प्राण भय से भागे उत्पीड़ित यदुवंशी पुनः अपने गृहों में आ गये। मथुरा की श्री, मथुरा का ऐश्वर्य—अब तो अमरावती भी तुच्छ हो गयी है इस यादव राजधानी के सम्मुख। शान्ति हुई, निर्वासित—पलायित बन्धु-बान्धव आये—अब तो बालकों का द्विजाति-संस्कार हो जाना चाहिये। वसुदेवजी कितनी उमंग से लगे हैं! माता देवकी कितनी प्रसन्न हैं! राम-श्याम का उपनयन होगा! महर्षि गर्गाचार्य ने यह ग्रीष्मऋतु ही निश्चय की है इस संस्कार के लिये।

राम-श्याम का उपनयन होगा! महाराज उग्रसेन के लिये इससे बड़े महोत्सव का दिन और क्या होगा। 'श्रीकृष्णचन्द्र अपने अग्रज के साथ ब्रह्मचारी वेश में भिक्षाटन करेंगे!' मथुरा के नर-नारी कितनी बहुमूल्य सामग्रियाँ एकत्र करने लगे हैं! 'क्या देंगे वे? क्या देंगे वे?' जैसे कुछ देने योग्य है ही नहीं। सचमुच कहाँ है? क्या है उसे देने योग्य? वह त्रिभुवन का स्वामी, देह-मन-प्राण-हृदय का अधीश्वर—वह वासुदेव जब अपनी भिक्षा की झोली फैलायेगा—क्या है उसे देने योग्य?

× × × ×

आज उपनयन होना है। माता देवकी ने पुत्रों के साथ मङ्गल स्नान कर लिया है। कितना अनुरोध किया उन्होंने माता रोहिणी से—राम के उपनयन में वे मातृ-पद का भाग लें! माता रोहिणी—पता नहीं क्यों वे महोत्सवों के अवसर पर थकित, विषण्ण हो जाती हैं। 'व्रजेश्वरी के साथ—श्री व्रजरानी के साथ जब संस्कार में बैठी थीं!' व्रज का वह स्नेह, वह सत्कार, वह अपार प्रेम और आज क्या होगा व्रज का? कैसी होंगी व्रजरानी?' माता रोहिणी के भीतर जो स्मृतियों का महावाड़व जाग उठा है—उनमें कहाँ उत्साह रहा है! वे क्या किसी कार्य में योग देने की स्थिति में हैं!

'राम भी तो तुम्हारा ही है!' माता ने धीरे से अवकाश ले लिया है। श्याम व्रजेश्वरी का नहीं है—व्रजरानी केवल पालिका हैं उसकी—तब राम की भी वे केवल पालिका हो तो हैं। व्रजेश्वरी से अधिक वे कैसे स्वीकार कर लें। श्याम व्रजरानी का नहीं—राम तब उनका कहाँ है? देवकी के—दोनों देवकी के ही तो पुत्र हैं। 'माता का गौरव—हाय, व्रजेश्वरी—तुम्हें जब वह गौरव नहीं मिल सका....।' माता रोहिणी तो सूनी-सूनी-सी दर्शिका भर बनकर रह गयी हैं आज।

× × × ×

माता देवकी ने मङ्गल स्नान कर लिया राम-श्याम के साथ। आचार्य ने पञ्चदेवताओं का आह्वान, पूजन समाप्त कर दिया। पूर्वाभिमुख बैठकर बड़े भाई के साथ श्रीकृष्णचन्द्र ने स्वर्ण-राशि का दान कर दिया है तिल से भरे रत्न-पात्रों के साथ। श्रीवसुदेवजी पञ्चभूसंस्कार करने लगे हैं

और तब तीन ब्राह्मणों को भोजन कराने का संकल्प—तीन ही ब्राह्मण, शास्त्रीय विधि तो विधि ही है। ब्राह्मण तो तीन सहस्र भोजन कर लें--करेंगे ही, संकल्प तो तीन का ही होगा न। अब यह आचार्य-पूजन—महर्षि गर्ग का सम्पूर्ण शरीर पुलकित हो रहा है। उनके मन्त्रपाठ गद्गद कण्ठ से स्पष्ट नहीं हो पा रहे हैं। वे आचार्य होंगे--श्रीवसुदेवजी उनका पूजन कर रहे हैं और आज वे आचार्य हो जायँगे राम-श्याम के! 'ये परम पुरुष—ये चिन्मय आनन्दघन निखिल भुवनैकवन्द्य और इनका आचार्य !' महर्षि के आनन्द की कोई सीमा नहीं है। सुरगुरु बृहस्पति, विद्या एवं ज्ञान की अधिष्ठात्री भगवती शारदा—क्या चर्चा इनकी। भगवती सावित्री--वे भगवती सावित्री जिनकी दीक्षा देकर महर्षि आज आचार्य होंगे--महर्षि का सौभाग्य, महर्षि की महिमा--आज वह उन भगवती सावित्री के लिये भी स्पर्धा से परे है। आज वे श्रीकृष्णचन्द्र के आचार्य होंगे ! त्रिभुवन का वह परमाधीश जिसके पदों में प्रणत होगा--किसका मस्तक उसके पादपद्मों में प्रणति से परिपूत होने की कामना न करेगा !

× × × ×

आज ये दिगम्बर राम-श्याम ! विधि—कितनी निष्ठुर होती है विधि। वे घुँघराली काली अलकें, वे स्नेहस्निग्ध—भुवन-मोहन चिकुर जाल और..... .नापित के कर बार-बार काँपे हैं। कैसे वह अपना काम कर सका—स्वयं वह भी नहीं जानता ! इतना कठोर कर्म—और कोई दण्ड, और कोई प्रतिकार स्रष्टा को नहीं मिला उसके कर्मों का। क्या करे वह—श्रीवसुदेवजी का आदेश—ये राम-श्याम अनुरोध ही करने लगे उससे। वह क्षुद्र नापित—श्रीकृष्णचन्द्र उसके सम्मुख आ बैठें--आग्रह करें--इनका आग्रह टाल देने की शक्ति तो सम्भवतः स्रष्टा में भी न होगी ! क्या करे वह—प्राण उन्मत्त हुए जाते, अपना पता नहीं ! कैसे सम्पन्न हुआ उसका कार्य--कौन कह सकता है ! अब तो वह अपने एक-एक शस्त्र को पाषाण से तोड़ रहा है, छिन्न कर रहा है। ये शस्त्र--इन्हें क्या वह फिर स्पर्श करेगा ! उसके कर--जिन करों से उसने राम-श्याम के उत्तमाङ्ग छुये हैं, ये कर अब और किसी की सेवा करेंगे ? क्या आवश्यकता है इसकी। क्या अभाव है उसके समीप। आज उसे जो निछावर मिली है, सुरेश भी चकित रह जाय यह सम्पदा देखकर ! नापित--नापित कहाँ देखता है इस सम्पत्ति को ! उसे जो निछावर मिली है--छिः ! इन चमकते दमकते राशि-राशि पत्थरों की बात कहाँ है, उसे निछावर मिला है--उसके अन्तर में इन राम श्याम ने जो अनन्त अपार चिन्मय आनन्द की राशि उड़ेल दी है--कल्प-कल्प की तपस्या, युग-युग के साधन--महर्षियों के मानस इसकी स्पर्धा भी कहाँ कर पाते हैं। नापित--गद्गद कण्ठ, पुलकित तन, वाष्प नयन, उन्मत्तप्राय नापित--अब नापित कहाँ रहा वह। किस परमहंस को यह सहज स्थिति—यह आनन्दोन्माद उपलब्ध होता है।

× × × ×

केशर-पीत मुण्डित मस्तक के मध्य गोखुर दीर्घ शिखा, दिगम्बर वेश, यह श्याम अपने अग्रज की ओर देखकर तनिक-तनिक मुस्करा रहा है। आचार्य के दाहिने, अग्नि को सम्मुख करके पूर्वाभिमुख ये अब आ बैठे हैं। वाद्यों के उच्चतर नाद, विप्रों के मन्त्रपाठ, नारियों का मङ्गलगान, गगन से झरती अपार पुष्पराशि और सुस्वर सुरवाद्यों के साथ अमरों के स्तवन, अप्सराओं के नृत्य, गन्धर्वों के गायन—एक साथ, एक क्षण में रुक गये हैं सभी। भुवनघोषी मङ्गल कोलाहल और यह शान्ति—पुष्प के विकसित होने का स्पन्दन भी सुनायी पड़ जाय। 'महर्षि अब अपने शिष्य रूप में वरण करेंगे राम-श्याम को। यजमानों की कुलपरम्परा में प्राप्त महर्षि के ये शिष्य—आचार्य गर्ग, ये परम वीतराग और यह पुरोहिती—आज की आशा पर ही तो यदुकुल का पौरोहित्य स्वीकार किया था उन्होंने। 'किसी दिन परम-पुरुष मेरे यजमान होंगे !' यदि यह आशा न होती--आचार्य किसी नगर में आने वाले थे। आज सफल हुई आशा ! आज वे राम-श्याम का यजमान रूप में वरण कर रहे हैं। महर्षि के गद्गद कण्ठ का सङ्कल्प पाठ—इन स्वरों से अपने को परिपूत करने के लिये ही तो समस्त श्रवण समुत्सुक हो उठे हैं।

ब्रह्मा का वरण, ब्रह्मोपवेशन, अग्नि में स्रुवा से महर्षि की यह दीर्घ स्तम्भाकार आज्याहुति और—'ब्रह्मचर्यमागः !' अब उनके ये आदेश-वाक्य ! कितनी श्रद्धा, कितनी नम्रता से राम श्याम इन्हें स्वीकार करते, दुहराते जा रहे हैं। अब तो कौपीन वस्त्र दिया है महर्षि ने इनके करों में। यह मौंजी मेखला—इन सुकुमार कटियों में यह मेखला—महर्षि के कर भी कम्पित हो रहे हैं ये दिगम्बर बन्धु अब कौपीनधारी हुए हैं ! गौर-श्याम अङ्गों की यह छटा, यह कटियों में तीन वेष्टन से घुमाकर प्रवरग्रन्थि युक्त मेखला और उसमें बँधी ये पीत कौपीनें ! आज आचार्य ने अपने हाथों प्रणवपूर्वक गायत्री से शिखायें बाँध दी हैं इनकी।

स्वर्ण-कलश में स्थापित यज्ञोपवीत का अभिमन्त्रण, प्रक्षालन और दश बार गायत्री जप से उसका स्थापन। अब तो सर्वदेवमय यज्ञोपवीत में देवावाहन पूजन चल रहा है। प्रणव, अग्नि, सर्प, सोम, मित्र, पञ्चपितर, प्रजापति, वायु, यम विश्वेदेव और ग्रन्थिदेवता भगवान् ब्रह्मा, अनन्त-शायी विष्णु, भगवान् रुद्र—सांग, सविधि पूजन कराया आचार्य ने।

"ॐ यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्।
आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्चशुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजाः ॥"

आचार्य ने कलश से अपने कर सम्पुट में लिये यज्ञोपवीत, अभिमन्त्रित किये, भगवान् भास्कर को दिखाये और पहना दिये। ये पीत कौशेय, हरिद्रा रञ्जित यज्ञोपवीत—राम-श्याम के श्री-अंगों पर इनकी यह अपूर्व छटा। अब यह नीरव—मौन ऐणेयाजिन परिधान, वाज्यजिन ग्रहण, और यह आया आचार्य के करों से पलाश-दण्ड करों में। दण्ड उछालना—इतनी देर में यही तो एक रुचि की बात हुई है। कृष्णचन्द्र ने जिस उल्लास से दण्डोच्छ्रय किया—सभी तो हँस पड़े हैं इस कौतुक से। आचार्य ने अपनी अञ्जलि में जल लेकर राम-श्याम की अञ्जलियाँ पूरित कर दीं और सूर्य-दर्शन के पश्चात् दक्षिण स्कन्ध पर हाथ रखकर हृदयका आलभन समाप्त कर दिया। प्रजापतियों को, पञ्चमहाभूतों को रक्षा का भार दिया। जो विश्व के भार को दूर करने आया है, जो त्रिभुवन का परम रक्षक है, उसकी रक्षा का भार ये पञ्चभूताधिदेवता वहन करेंगे ? अन्ततः इन्हें भी कृतार्थ होना है। श्रुति की परम्परा में जब यह श्रुतिका चरम अन्वेष्य अपने को आवेष्टित करने की मञ्जु लीला करने आया है—यही तो आता है ! यही तो सदा समस्त विधियों का गौरव देता है।

× × × ×

कदली-स्तम्भ शोभित, कौशेय वितान, रत्नों की झिलमिल करती झालरें। दिग्पालों की लहराती पताकाएँ। गगन में, धरा पर, चारों ओर ही तो स्तवन, गान, नृत्य, मङ्गलवाद्य-ध्वनि और मन्त्रपाठ चल रहा है।

दिशाओं में दीप-सज्जित सुपूजित मङ्गल कलश, रंग-विरंगी वेदियों पर देवताओं ने प्रत्यक्ष आसन ग्रहण करके पूजा स्वीकार कर ली। अब तो राम-श्याम आचार्य के वाम भाग में बैठकर भगवान् हव्यवाह के आवाहन का आयोजन करने लगे हैं। ब्रह्मा का वरण, कुश-कण्डिका और अब करों में स्रुवा उठाये ये द्विधा रूपों में—काञ्चन गौर एवं नीलकान्त सुन्दर—जैसे साक्षात् यज्ञ-पुरुष ही यजन करने आ बैठे हों। आचार्य को केवल मन्त्र बोलने हैं। ये राम-श्याम—ये दोनों बन्धु—ये तो जैसे नित्य के अभ्यस्त हैं। यह स्फूर्ति, यह मञ्जु सावधान क्रियाशीलता—कौन याययूक इतना कुशल हो सकता है। भगवान हव्यवाह—कहाँ वहन करना है आज उन्हें हवि। ये मूर्तिमान् देवता कब से आतुर हैं—कब से प्रतीक्षा कर रहे हैं—इन करों से हविर्भाग मिले, आह्वान की अपेक्षा हो सकती है किसी को। हवन, प्रतिष्ठा पूजन, प्रायश्चित्तात्मक हवन, पूर्णपात्र-दान, स्वस्तिपाठ, प्रोक्षण और बर्हिहवन, आचार्य को केवल संकेत करना है। मन्त्रपाठ करना है उन्हें। उनके यजमान—जिनकी निःश्वास श्रुतियों का उद्गम है, उनको क्या विधिनिर्देश की आवश्यकता हो सकती है।

'ब्रह्मचारी ! तुम लोग ब्रह्मचारी हुए आज से ! प्रमादहीन होकर नियमों का पालन करना ! दिन में शयन मत करना ! वाणी को नियन्त्रित रखना ! नित्य समिधायें लाना—पवित्र समिधायें !' महर्षि गर्ग कुमारों को अनुशासित कर रहे हैं। होंगे ये परात्पर पुरुष, होंगी श्रुतियाँ

इनका निःश्वास, आचार्य--जब आचार्य का गौरव दिया है इन्होंने, विधि तो पूर्ण ही होनी चाहिये। बद्धाञ्जलि, नतमस्तक कितनी श्रद्धा से ग्रहण कर रहे हैं दोनों बन्धु आचार्य का यह अनुशासन।

लग्नदान और आचार्य अब गुरुदेव हो गये हैं। राम-श्याम ने गुरुरूप में वरण किया है उन्हें। कितनी श्रद्धा, कितनी उमंग से पूजन कर रहे हैं दोनों भाई। जो ज्ञानघन लोक स्रष्टा के भी परम गुरु हैं, जिनके पावन पदों की आराधना भगवान् इन्दुमौलि अपने हृदय कमल में एकाग्र मानस करते थकते नहीं, उनके गुरु--उनके द्वारा यह अर्चा--महर्षि गर्ग का सम्पूर्ण शरीर जैसे निर्झर हो गया है! यह अनुग्रह--यह गौरवदान--महर्षि के अन्तर का अपार रस-सागर जैसे रोम-रोम से बह चला है। महर्षि गुरु हो गये हैं राम-श्याम के! वाद्यों के घन घोष, तुमुल जयध्वनि और महर्षि ने दोनों यजमानों के दक्षिण कर्णों के समीप मुख करके तीन-तीन बार गायत्री का उच्चारण कर दिया है। वे गुरु हो गये हैं, भूमि में लेटकर राम-कृष्ण प्रणिपात कर रहे हैं उनके श्रीचरणों में, पुष्प और फलों से भरी अञ्जलि आचार्य के चरणों में चढ़ाकर यह मस्तक रखा है उन्होंने। आशीर्वाद--आज ही तो आशीर्वाद की परा वाणी नाभि से उठकर कृतार्थ हुई है!

सावित्री-दान और गुरुदक्षिणा--रत्नों की यह अपार राशि! ये लक्ष-लक्ष गायें, ये वस्त्र, आभरण, तिल, स्वर्ण--कौन गिने इन्हें। वसुदेवजी के हृदय में जो उमङ्ग है--कितना अल्प, कितना नगण्य दान है यह! कुबेर का कोष--राम-श्याम के उपनयन की दक्षिणा दे सके, कहाँ है इतनी सम्पत्ति वहाँ। कुबेर के लिये तो यही सम्पत्ति स्पर्धा से परे है।

पञ्चायतन-दीक्षा और अब यज्ञोपवीत हुआ तो मध्याह्न-सन्ध्या भी तो करनी ही चाहिये। मध्याह्न सन्ध्या हुई और अग्नि समिन्धन। ब्रह्मचारी तो समित्-हवन ही करते हैं। जल से अग्नि को आवेष्टन करके एक समित् ली, कान से लगायी और आहुति दे दी। समिधा की केवल तीन आहुतियाँ। मौन होकर हवनीय अग्नि से कमलदलारुण कर तनिक उष्ण किये गये, मुख का मार्जन करना जो है। सात बार यह मुख प्रोञ्छन। विशाल भाल पर भस्म की यह भव्य छटा और यदि अग्निदेव आज्ञा पाते--अपने कोमल कान पकड़कर ये राम-श्याम का भूमि में मस्तक रखकर तीन-तीन बार बन्दना करें उनकी--कहाँ किसका प्रसाद प्राप्त करना है इन्हें। अग्निदेव इनकी कृपा के प्रसाद-लेश से ही धन्य हैं आज। पर ये लीलामय, ये अपने ही नियमों का यह आदर्श स्थापन करने ही तो आये हैं धरा पर।

× × × ×

"सौम्य, भिक्षा ले आओ! वृथालाप में समय नष्ट मत करना!" आचार्य को तो विधि के आदेश देने ही हैं।

गौर-श्याम अङ्ग, मुण्डित मस्तक पर बँधी हुई बड़ी-सी शिखा, विशाल भाल पर भस्म-त्रिपुण्ड्र, उत्तरीय के स्थान पर वाम स्कन्ध-वक्ष-पृष्ठ को घेरता बंध ऐणेयाजिन, वाम कक्ष में अश्वाजिन, वाम कर में पलाश-दण्ड, दक्षिण स्कन्ध पर झोली पीत-कौशेय वस्त्र की, कटि में तीन बार लपेटी मौञ्जी मेखला, पीत कौपीन और ये राम-श्याम भिक्षा लेने चले हैं। ये भिक्षा माँगने चले हैं--'भिक्षां भवति देहि मातः!'

माता देवकी--उनके ये उपनीत राम-श्याम--इनकी ये झोलियाँ--अन्नपूर्णा कहाँ यह सौभाग्य पाती हैं! माता किन रत्नों से भरें इन झोलियों को! 'यह रत्न थाल--बहुत तुच्छ रत्न हैं इनके!' माता देखती रह गयीं एक क्षण अपने इन नूतन ब्रह्मचारियों का मुख और कब उनके करों ने झोली पूर्ण कर दी, कहाँ पता है इसका उन्हें! वे तो देख रही हैं, एकटक देख रही हैं इस अद्भुत छटा को।

राम-श्याम की ये छोटी झोलियाँ, इनके सुकुमार स्कन्ध--कितना आयेगा इनमें? आज किसे इस सौभाग्य से वञ्चित किया जाय? माताओं को, महाराज उग्रसेन को, नगरजनों को, राज्य के सम्मान्य आगतों को--सभी को तो यह सुअवसर प्राप्त करना है? सभी ने तो अन्तर की विशुद्ध अभीप्सा लेकर अपने उपहार प्रस्तुत किये हैं। अनन्त की झोली में कितना स्थान है--कौन कह

सकता है। श्रद्धा के कितने उपहार वह स्वीकार कर लेगा—वह अस्वीकार करना भी जानता है क्या ?

गुरुदेव—महर्षि गर्ग—उनके सम्मुख उनके इन नूतन शिष्यों ने अपनी झोलियाँ धर दी हैं। बद्धाञ्जलि महालक्ष्मी जिनके भ्रूभङ्ग के संकेत की प्रतीक्षा करती हैं, निखिल लोकों का समस्त ऐश्वर्य जिसकी मन्दस्मित की एक भंगी पर निछावर होता रहता है, वह—उसीने आज भिक्षा माँगी है! भिक्षा माँगी है उसने और अपनी झोलियाँ गुरुदेव के सम्मुख रखकर हाथ जोड़े, मस्तक झुकाये बड़े भाई के साथ खड़ा है—'गुरुदेव कृपा करें! इस तुच्छ भिक्षा को स्वीकार कर लें!'

गुरुदेव—गुरुदेव कहाँ देखते हैं इस भिक्षा की झोलियों की ओर। उन्होंने तो झोलियाँ हाथ बढ़ा कर लीं और स्नेह से रख दी। क्या है इनमें ? क्या आवश्यकता है यह देखने की। क्या नहीं है ? यह सम्पत्ति--ये रत्न—महर्षि ने कब इन पत्थरों कोई महत्त्व दिया है; पर नहीं--ये राम-श्याम के उपहार—इनकी महत्ता--इनका एक कण पाने के लिये तो अमरावती के अधीश्वर भी भिक्षुक बन जायँगे। महर्षि--किंतु महर्षि ने तो अपने इन शिष्यों को ही पाया है न! उनके सम्मुख ये पद्मपरागपीत और इन्दीवर-सुन्दर जो दो ब्रह्मचारी हाथ जोड़े खड़े हैं क्या पाना रह गया है अब ?

ये हाथ जोड़े खड़े हैं! ये नवीन ब्रह्मचारी--इन्हें इनके आचार का उपदेश देना है। आचार्य ही तो सिखावेंगे इनका आचार इन्हें --'सौम्य, अब से तुम लोग भूमि पर मृगचर्म डाल कर शयन करोगे! मन लगाकर अध्ययन करना गुरुकुल में! दण्ड को सदा साथ रखना! अपने और गुरु के लिये नित्य पवित्र समिधायें लाना! प्रमाद हीन होकर नित्य समय पर अग्निदेव की आराधना करना!' आचार्य उपदेश दे रहे हैं। पता नहीं छोटे बड़े कितने नियम बताये जा रहे हैं! सभी नियम सावधानी से ही तो समझा देने हैं उन्हें।

× × × ×

राम-श्याम का उपनयन हुआ है आज। महर्षि ने उन्हें मङ्गल आशीर्वाद दिया है। विप्रों की वाणी थकती ही नहीं है आशीश देने में। वसुदेवजी के आनन्द-उल्लास की क्या सीमा हो सकती है आज। महर्षि कहाँ तक यह अपार दक्षिणा स्वीकार करने चलें। ये कौशेय-वस्त्राच्छादित, रत्नाभरण-भूषित सवत्सा गायों के लक्ष-लक्ष यूथ; ये अश्व, गज, वृषभ; ये अपार रत्न-राशियाँ—महर्षि क्या करें इनका। उनके एकान्त शान्त आश्रम में कहाँ स्थान है इनके लिये। क्या उपयोग इनका। कोई लेने वाला भी तो नहीं है। वसुदेवजी ने किसे इस योग्य रहने दिया है कि वह इनमें से कुछ किसी भी प्रकार स्वीकार कर ले! विप्रवर्ग, बन्दीजन, मागध, सूत--सब को ही तो इतनी भेंट दे दी है इन्होंने कि वे स्वयं ही देख रहे है--'कोई कुछ ले ले!' महाराज उग्रसेन के आग्रह की भी रक्षा करनी है सब को और ये वसुदेवजी--'ये गायें मैंने श्रीकृष्ण के जन्म के समय संकल्प की थीं! कंस ने मुझे बन्दी कर दिया। मेरी सम्पत्ति का हरण कर लिया उसने! मेरा संकल्प श्रीचरणों में सफल न हो सका! मुझ पर अनुग्रह करें! मुझे असत् संकल्प होने से बचा लें!' इन्होंने पता नहीं कितनी सहस्र गायें, अश्व, रथ, गज, रत्न का कब-कब संकल्प किया है। जन्म के समय ही तक तो बात नहीं है। 'अब षष्ठी हुई होती! अब नामकरण होता! अब होता चूड़ाकरण!' उस बन्दीगृह में अपने नीलसुन्दर को स्मरण करने के अतिरिक्त और क्या करते ये। स्मरण और संकल्प--आज ही तो अवसर मिला है उन संकल्पों को सत्य होने का। वसुदेवजी आज सबको स्मरण कर लेना चाहते हैं! महर्षि अपने यजमान के संकल्प को कैसे सत्य होने से वारित कर दें!

राम-श्याम उपनीत हो गये हैं। आज व्रत है--व्रत का दिन है सबका। ये अब गुरुगृह जायँगे। आज का मङ्गल अवसर--अश्रु नहीं आना चाहिये! नहीं आना चाहिये अश्रु! ये दूर जायँगे इन नेत्रों से—दूर जायँगे! मातायें क्या करें ? कैसे रोकें अपने हृदय को! पर ये राम-श्याम—ये उपनीत हुए! इनका यह ब्रह्मचारी वेष....।

—❀⊂❀⊂❀—

गुरुकुल में

"यस्य च्छन्दोमयं ब्रह्म देह आवपनं विभो।
श्रेयसां तस्य गुरुषु वासोऽत्यन्तविडम्बनम्॥"

—भागवत १०।८०।४८

भगवान् विश्वनाथ की पुरी, उनके त्रिशूल पर स्थापित उनकी मोक्षदा पुरी काशी--उन निखिल ज्ञानगुरु के धाम को छोड़ भगवती वीणापाणि और कहाँ निवास बनायें अपना। काशी--अध्ययन के लिये उत्सुक अन्तेवासियों का वह चिरपावन धाम; किंतु काशिराज पौण्ड्रक के मित्र हैं। कंस से ही सौहार्द था उनका। महाराज उग्रसेन से उनकी अनबन ही रही और जब कंस मारा गया--अब काशी कैसे जाना हो सकता है राम-श्याम का। उनकी ही राजधानी में ये उनके सखा कंस को ठिकाने लगाने वाले राम-श्याम जायँ--पता नहीं क्या हो! कौन इस आशङ्का को प्रश्रय दे!

काशी के सर्वश्रेष्ठ, सर्वमान्य सर्वशास्त्र पारंगत परमतापस महर्षि सान्दीपनि--जब महर्षि ही काशी में नहीं तो काशी जाकर कोई करे भी क्या। महर्षि काशी कैसे रहते--परम शैव महर्षि; किंतु काशिराज को जो भगवान् नारायण का नाम ही सह्य नहीं--कोई भी आराधक इस द्वेष के ऊमस भरे वातावरण में अपनी उज्ज्वल श्रद्धाञ्जलि कैसे निर्बाध अर्पित करें। द्वेष, हिंसा, उत्पीड़न--महर्षि ने इस कुत्सित स्पर्धा के संग से दूर कर लिया अपने को, यह स्वाभाविक ही तो हुआ। भगवान् विश्वनाथ--वही तो महाकाल रूप में आसीन हैं उज्जयिनी में। महर्षि का आगमन—अवन्तिका विद्या-बुभुक्षु ब्रह्मचारियों की आराध्य हो गयी है।

अवन्तिका—महर्षि सान्दीपनि की लोकोत्तर ज्ञान ख्याति और भगवान् महाकाल का सान्निध्य। मथुरा और अवन्तिका का स्नेह सम्बन्ध भी तो है। राम-श्याम अवन्तिका में अध्ययन करेंगे। वसुदेवजी का ध्यान यदि अवन्तिका की ओर प्रथम जाय--स्वाभाविक है। उनकी बहिन राजाधिदेवी ही राजमाता हैं वहाँ की। राम-श्याम बुआ की--स्नेहमयी बुआ की राजधानी के समीप निवास करेंगे। महर्षि सान्दीपनि के आश्रम में वे सुरक्षित रहेंगे!

× × × ×

"मैं यादव वार्ष्णेय वसुदेव-पुत्र कृष्ण श्रीचरणों में प्रणिपात करता हूँ!" हाथों में सूखी पवित्र समिधायें लिये बड़े भाई से तनिक पीछे ही कृष्णचन्द्र ने साष्टाङ्ग प्रणिपात किया गुरुदेव के सम्मुख! रथ कैसे आ सकता था आश्रम सीमा में और ब्रह्मचारी तो एकाकी ही आता है सदा गुरु चरणों में। ब्रह्मचारी--ब्रह्मचारी में क्या दरिद्र और क्या राजकुमार। भगवती शारदा के श्रीचरणों में सबको एक ही भूमि से तो अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करनी पड़ती है। महर्षि सान्दीपनि अपने नियमों के प्रमादहीन पालन के लिये प्रख्यात हैं। वे महाकाल के परमोपासक--उन तपोधन के यहाँ किसी नियम की तनिक भी अवज्ञा चल नहीं सकती। उपनयन में जो भिक्षाटन कर चुका--गुरु का आशीर्वाद प्राप्त करने से पूर्व वह राजकुमार कहाँ है। वसुदेवजी पहुँचाने नहीं आ सके। नहीं आ सके महाराज उग्रसेन। महर्षि कोई धूमधाम क्षमा नहीं करेंगे। उनके चरणों में निवास पा जाना सौभाग्य की, श्रद्धा की ही बात है। अधिकारी छात्र ही आश्रय पाता है वहाँ। मार्ग में सुरक्षा--पर सुरक्षा कैसी, किसकी सुरक्षा! गुरु गृह जाते ब्रह्मचारी पर आक्रमण करे, ऐसा नीच कोई असुर भी नहीं हो सकता! असुर भी उसे क्षमा न करेंगे। गुरुदेव के पावन चरणों में ब्रह्मचारी

को एकाकी ही पहुँचना चाहिये। भिक्षा की झोली, पलाशदण्ड, ऐणेयाजिन, जलपात्र और कौपीन—वह अध्ययन करने आया है। गुरु-सेवा--तपस्या और कठोर व्रत से ही तो वे प्रतिभा की अधीश्वरी प्रसन्न होती हैं। उपकरणों की आवश्यकता कहाँ है उसे। सूत रथ लेकर अवन्तिका में अवस्थान करेगा! मथुरा से अवन्तिका--राम-श्याम क्या रथ भी स्वीकार करते, यदि यह इतनी स्थल दूरी न होती। आश्रम सीमा से ही रथ छोड़ दिया उन्होंने और ब्रह्मचारी के पास गुरुदेव के श्रीचरणों में उपस्थित होने के लिये समित् ही तो पावन उपहार है। समित्--उस व्रती के पास और हो भी क्या सकता है। गुरुदेव--वे निखिल ज्ञानके प्रकाश धाम, वीतराग, तपोमूर्ति--वे और कोई उपहार स्वीकार ही कहाँ कर सकते हैं। एक विद्याकामी ब्रह्मचारी आवेगा--उससे उपहार--कौन लेगा उससे उपहार! राम-श्याम ने उसी तपोवन से स्वतः समिधायें एकत्र कर ली हैं और अब तो वे महर्षि को प्रणिपात करते भूमि में पड़े हैं।

'यह जलद-गम्भीर सुधास्निग्ध स्वर! यह भुवन-मोहन रूप!' महर्षि अपनी वेदिका के मृगचर्म के आसन से आतुरतापूर्वक उठ खड़े हुए। उत्तरीय का ऐणेयाजिन खिसक गया भूमि पर! दोनों वलीपलित, रजतरोम भुजाओं ने राम-श्याम को उठा लिया और हृदय से लगा लिया।

'आयुष्मान् भव...!' गद्गद कण्ठ, अश्रुधारा से सिञ्चित होते श्मश्रु--भगवान् हव्यवाह हवनीय कुण्ड में अपनी लाल-लाल लपटों से हर्षोद्दीप्त हो उठे है! आहुतियों के हविष्य का सुरभित धूम्र जैसे दिशाओं को अपन उन्मद नृत्य से पूरित कर देगा! ये तरु, ये लतायें--सब झूम उठे हैं। ये आश्रम-धेनु--अभी प्रातः इन्हें दुहा गया है और अब इनके स्तनों की उज्ज्वल अखण्ड धारा भूमि का अभिषेक करने लगी हैं। बछड़े, मृग--आश्रम पशु एकत्र हो आये हैं। ये सूँघ लेना चाहते हैं राम-श्याम को। ये पक्षी--पर कौन देखे इन सबकी ओर! महर्षि शान्त, निष्कम्प दोनों भाइयों को हृदय से लगाये खड़े हैं! रोम-रोम उत्थित हो गया है उनका। गद्गद कंठ का आशीर्वाद अपनी अपूर्णता में भी साङ्ग पूर्ण हो गया।

'ये सौन्दर्यघन—ये अध्ययन करेंगे! हमारे साथ पढ़ेंगे ये!' आश्रम के अन्तेवासी—अपलक लोचन ये अभी तो देख रहे हैं। लोचन स्थिर हो गये हैं और स्थिर हो गया है मन भी। ये कुछ अभी सोचें—कभी क्या सोचने की स्थिति है।

'आज ही बहुत शुभ मुहूर्त है!' महर्षि ने आश्वस्त होते ही संकेत किया छात्रों को। मुहूर्त तो शुभ है ही। भला, ज्योतिर्विद्या के परमाचार्य महर्षि गर्ग का शोधित मुहूर्त—इससे शुभ मुहूर्त किसे मिल सकता है! जब कृष्णचन्द्र आया है, यह राम आया है पढ़ने—मुहूर्त नहीं आवेगा! श्याम का आगमन—इससे मङ्गल मुहूर्त और कब होगा और ऐसे छात्र मिलें—महर्षि क्यों विलम्ब करने लगे अध्यापन में। आज ये राम-श्याम आये हैं, आश्रम का अनध्याय तो अतिथि के आने से होता है। ये तो अन्तेवासी हैं—आज इनका वेदाध्ययन प्रारम्भ होगा! सभी व्यस्त हो गये हैं। पूरा आश्रम गोमय से उपलिप्त होगा, पुष्प-फल-दल, समित्, कुश, सभी एकत्र करना है! हविष्य-माल्य-ग्रन्थन, वेदियों पर देवताओं के मण्डल-निर्माण--नित्य अभ्यस्त कुशल कर लग गये हैं और कितनी देर होनी है इस सब में। राम-श्याम को स्नान करना है और तब सन्ध्या, तर्पण, देवार्चन, हवन। विधिवत् हवन के पश्चात् ही तो गुरुदेव इनका वेदाध्ययन प्रारम्भ करावेंगे। ये आज ही आये हैं, अपरिचित हैं स्थान से। सभी प्रयत्न में हैं, इनको प्रसन्न कर लें। मित्रता कर लें इनसे दूसरों से पहिले ही। इनको उचित कार्य समझाने हैं, आवश्यक सामग्रियाँ देनी हैं, स्थानों का परिचय कराना है! आज तो गुरुदेव ही स्वयं व्यस्त हैं। वे स्वयं ही इनकी समस्त सुविधाओं के आयोजन में लगे हैं। कहाँ स्नान करना है, कहाँ तर्पण होगा, कौन से पुष्प किस कार्य में आवेंगे—गुरुदेव स्वयं ही सब बता देना चाहते हैं। यह स्नेह, यह वात्सल्य जो उमड़ पड़ा है उनके अन्तर में।

× × × ×

राम और कृष्ण—कैसे छात्र हैं ये! यह निष्ठा, यह एकाग्रता, यह मेधा—गुरुदेव अपने इन शिष्यों के भुवनमोहन रूप, सौकुमार्य और शीलपर मुग्ध हुए थे एक ही दृष्टि में और अब—

यह नित्य नूतन आकर्षण--इनकी प्रतिभा का कोई पार ही नहीं है। प्रथम दिन देवार्चन, हवन और उस विस्तृत विधि से श्रान्त इन सुकुमार बालकों को केवल वेदारम्भ की विधि ही तो करा देनी थी! प्रथम दिन--अल्पारम्भाः क्षेमकराः--वह भी क्या अध्यापन का दिन होता है। गुरुदेव ने दो मन्त्र सस्वर बोले, आश्रम के अन्तेवासियों ने ऋग्वेद की ऋचाओं का पाठ कर दिया—बस! मध्याह्नोत्तर तो धनुर्वेद का समय है। क्षत्रिय-कुमार अस्त्र-शस्त्र-चालन सीखते हैं। प्रथम दिन धनुष का विवरण--ज्या आदि का सैद्धान्तिक पाठ भी कहाँ चल पाता है। ब्रह्मचारी धनुष पर ज्या चढ़ाये--इतना क्या कम है प्रथम दिन के लिये।

'गुरुदेव, हम कल का पाठ सुना दें!' दूसरे दिन श्यामसुन्दर ने अनुमति माँगी। "कल का पाठ—भला, कल का पाठ ही क्या। एक बार--केवल एक बार मन्त्र बोले गये! कोई अंश स्मरण कर लिया होगा। कुछ चपल है यह कृष्णचन्द्र!" सहपाठियों ने सहास्य-नयन एक दूसरे की ओर देखा। महर्षि के अधरों पर स्मित आया। अनुमति दे दी उन्होंने।

'यह स्पष्ट उच्चारण! यह निष्कम्प स्वर! ये निर्दोष मुद्राएँ! यह अद्भुत कर-चालन!' ब्रह्मचारियों के आश्चर्य का पार नहीं! महर्षि अपलक देख रहे हैं श्रीकृष्ण की ओर! 'यह श्रीकृष्ण—यह तो अपनी धुन में है! यह ऋग्वेद की ऋचाओं का सस्वर पाठ कर रहा है--करता ही जा रहा है प्रारम्भ से! एक बार--केवल एक बार सुनकर इसने पूरा ऋग्वेद सस्वर स्मरण कर लिया!'

'गुरुदेव, मैंने मथुरा में आचार्य और विप्रवर्ग को इन ऋचाओं को कई प्रकार पाठ करते सुना है!' अब यह चलने लगा घन, जटा, माला, शिखा, रेखा आदि पाठ-क्रम। सारे स्वर, सारी शैलियाँ इस नीलसुन्दर के कण्ठ में ही निवास करती हैं क्या?

'वत्स! कृष्णचन्द्र!' ये उठे महर्षि, इन्होंने दोनों बाहु फैलाकर अङ्क में दबा लिया श्याम को! 'यह श्रीकृष्ण--यह शिष्य है उनका!' महर्षि के नेत्रों से आनन्दाश्रु का प्रवाह चलने लगा है।

'गुरुदेव, मैं भी सुना सकता हूँ यह सब! इतना तो मुझे भी स्मरण हो गया है!' कौन अविश्वास कर सकता है इस पर। छोटे भाई ने जब सुना दिया है--बड़ा सुना देगा--क्या आश्चर्य की बात है।

'वत्स, निश्चय तुम सुना सकते हो!' महर्षि को अब क्या आवश्यकता रह गयी है कि राम से भी मन्त्र-पाठ सुनें वे। 'अब तुम लोग पढ़ो! मैं पाठ दे रहा हूँ!' कौन पढ़ा सकता है इनको--महर्षि क्या इसे समझते नहीं हैं--पर ये पढ़ने आये हैं उनके यहाँ! महर्षि के ज्ञान को धन्य करने आये हैं ये। ऐसे श्रुतधर छात्र मिले हैं—महर्षिके उत्साह की सी सीमा है आज।

'गुरुदेव क्या कर रहे हैं?' आश्रम के अन्तेवासी ब्रह्मचारी तो स्तब्ध हो रहे हैं। उनके गुरुदेव क्या कर रहे हैं आज। वे अध्यापन कर रहे हैं या स्वयं पाठ सुना रहे हैं! वे तो मन्त्र-संहिता, उनके ब्राह्मण, आरण्यक, कल्पसूत्र, शुल्वसूत्र, धर्मसूत्र, गृह्यसूत्र, सब धारा-प्रवाह बोलते जा रहे हैं। न भाष्य, न व्याख्या--वे तो जैसे स्वयं परीक्षा दे रहे हों और ये राम-श्याम--ये दोनों कितने एकाग्र बैठे हैं। गुरुदेव के मुखपर स्थिर दृष्टि किये ये तो इस प्रकार सुन रहे हैं, जैसे सब समझते जा रहे हैं। सब पहले से ही स्मरण है इन्हें।

× × × ×

कितना वात्सल्य, कितना स्नेह, कितना अनुराग है गुरुदेव का राम-श्याम पर! वृद्ध महर्षि—त्रिकाल संध्या, हवन, देवार्चन और उसपर यह श्रम! प्रातः भगवान् हव्यवाह को आहुतियाँ देने के पश्चात् उनके विशाल भाल का स्वेद अध्यापन-वेदिका पर भगवती वीणा-पाणि ही पोंछती हैं। मध्याह्न-संध्या से पूर्वतक उनकी अविराम वाणी श्रुति, स्मृति, पुराण, दर्शन, सूत्र-ग्रन्थ—पता नहीं कितनी विद्याओं का पारायण कर जाती है और उनके ये अद्भुत शिष्य--ये राम श्याम तो मानों कर्ण में ही स्मरण की शक्ति लिये आये हैं। श्रवण—एक बार श्रवण ही तो! मूल सूत्रों, मन्त्रों का श्रवण—कृष्णचन्द्र के लिये इतना तो बहुत अधिक हैं।

'वत्स, कृष्ण ! तुम अपने सहपाठियों को सूत्र का मर्म तो बता दो !' गुरुदेव आजकल अन्य विद्यार्थियों को कहाँ पाठ देते हैं। विद्यार्थी—श्याम कितनी सरल रीति से, कितने विस्तृतरूप में समझाता है। भाष्य, रहस्य—कोई भी भाष्य श्रीकृष्ण की इस व्याख्या से अधिक पूर्ण कहाँ हो सकता है। कौन-सा ऐसा रहस्य है जो यह नील-सुन्दर अपनी सहज वाणी में छोड़ गया हो।

मध्याह्नकृत्य समाप्त हुए और गुरुदेव ने पुकारा—'राम ! अपने अनुज के साथ चल तो वत्स ! आओ, तुम लोगों को धनुर्वेद का नूतन पाठ देना है न !' गुरुदेव भोजन के उपरान्त पूरा विश्राम भी नहीं करते हैं। राम-श्याम उनके चरण दबाते हैं और तब भी उनका अध्यापन चलता रहता है। धनुर्वेद के अङ्गोपाङ्गों की सैद्धान्तिक शिक्षा चलती रहती है। श्यामसुन्दर का आग्रह—आचार्य तनिक विश्राम कर लें ! गुरुदेव तो जैसे स्वयं समुत्सुक रहते हैं शिक्षा देने को ! राम-श्याम—सुकुमार बालक, इन दोनों के विश्रामका विचार न आये—गुरुदेव सम्भवतः भोजन के पश्चात् सीधे प्रयोग-भूमि पर उपस्थित हो जायँ। धनुर्वेद प्रयोग करके ही तो प्राप्त करने का विषय है। सैद्धान्तिक शिक्षा यदि प्रयोगभूमि में अभ्यस्त न हो—किस काम की है वह !

राम—यह राम जब धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ाकर प्रयोग-भूमि में खड़ा होता है—मूर्तिमान् धनुर्वेद क्या इससे शौर्यशाली हो सकता है। राम और कृष्ण—ये दोनों भाई तो जैसे शिक्षाका नाम करने आये हैं यहाँ। गुरुदेव के जीर्ण-शीर्ण करों को कष्ट क्यों दिया जाय। उन तपोधन ने जो अस्त्र-शस्त्रों के सैद्धान्तिक प्रयोग बताये हैं--प्रयोग-भूमि में उन प्रयोगों के ये सक्रिय भाष्य--राम-श्याम की यह स्फूर्ति, यह हस्त-लाघव और यह प्रयोग की विविध भङ्गी--सहपाठी क्षत्रिय कुमार आश्चर्य से देखते रह जाते हैं और आचार्य--आचार्य जब उमंग में स्वयं धनुष लेकर दिव्यास्त्रों के प्रयोग देना प्रारम्भ करते हैं--राम-श्याम—भला, इनसे उत्तम अधिकारी कहाँ प्राप्त हो सकता है आचार्य को।

आग्नेयास्त्र, वारुणास्त्र, वायव्यास्त्र, सम्मोहनास्त्र, पार्वत्य, पाशुपत—पता नहीं कितने दिव्यास्त्र हैं। आचार्य तो इन्हें नारायणास्त्र और ब्रह्मास्त्र तक देने में एक क्षण नहीं हिचके। ये राम-श्याम—मूर्तिमान् धनुर्वेद सम्भवतः इनके चरणों में शिक्षा ही ग्रहण करने का अधिकारी है। लोग कहते हैं--वितस्ति-बाण संधान कर सकें--विश्व में दो-चार ही शूर हो सकते हैं ऐसे और उस दिन जब गुरुदेव ने वे नन्हे-नन्हे बाण दिये--कृष्णचन्द्र जैसे सदा से इनसे खेलने का अभ्यस्त हो। इसने तो हाथ में लेते ही केवल ज्या के सहारे उनकी पूरी वर्षा प्रारम्भ कर दी।

आनन्द—आशङ्का--आश्चर्य और कुतूहल का तृतीय प्रहर जब समाप्त होता है--सायं-संध्या तनिक विश्राम ही देती है ! गुरुदेव अब कलाओं की शिक्षा देंगे--त्रिभुवन-मोहन मुरलिका के छिद्रों पर अभ्यस्त पतली, कोमल, अरुण अङ्गुलियाँ और कालिय के फणों पर चित्र ताण्डव के अभ्यासी चरण—श्यामसुन्दर को क्या कला की शिक्षा प्राप्त करनी है ? अग्रज के साथ वह रात्रि के प्रथम प्रहर में कला सीखने को समुद्यत होता है—कलाओं को भी उसके सुकुमार स्पर्श से सार्थक हो जाना चाहिये। दिनभर के श्रम से थके गुरुदेव, उत्कण्ठित सहपाठी, आतुर-से आश्रम के पशु-पक्षी तक—सबके प्राणों में रस-सिञ्चन का यही तो समय है। खग नीड़ों से निकलकर प्रतीक्षा करते हैं, पशु कान उठाये निष्पन्द स्थित हो जाते हैं और मलय-मारुत मन्द-मन्द झूमने लगता है। नृत्य, गीत, वाद्य, चित्र, मूर्ति--पता नहीं श्रीकृष्ण ने कब सीखा होगा इन्हें। भाई के साथ महर्षि के निर्देशों को जब यह साङ्ग मूर्ति देने लगता है--प्रकृति जैसे निष्पन्द-मुग्ध-थकित हो रहती है। श्याम का स्पर्श स्वतः जैसे कला है ! इसके कर जिस सहज भाव से चलते हैं—तुम्बरु की वीणा, गन्धर्वों के वाद्य--कौन स्पर्धा कर सकता है ! श्रीकृष्ण की कला—यह श्यामसुन्दर सीखता है--प्रत्येक क्षेत्र में, प्रत्येक अङ्ग में यह नित्य मौलिकताओं की जो श्रेणीबद्ध परम्परा स्थापित करता चलता है—यह शिक्षा है इसकी ? यह तो जैसे प्रत्येक कला को अभिनव वरदान देने को ही प्रवृत्त हुआ है।

× × × ×

"कृष्णचन्द्र--सुकुमार, सरल, कृष्णचन्द्र कितना गुरुसेवी, कितना श्रमशील, तत्पर और मेधावी है !' गुरुदेव दोनों भाइयों की प्रशंसा करते थकते ही नहीं। दोनों ब्राह्म-मुहूर्त के प्रारम्भ में ही उठ जाते हैं, गुरुदेव के उठने से पूर्व तो स्नान भी हो रहता है उनका। महर्षि के लिये जल, दन्तधावन--छोटी-बड़ी समस्त सेवा जैसे ये दोनों स्वयं ही कर लेना चाहते हैं।

'आप बहुत श्रान्त कर देते हैं दोनों बालकों को !' गुरुपत्नी का कितना अगाध स्नेह है राम-श्याम पर। दोनों कितने तत्पर रहते हैं उनकी सेवा में, सुमधुर कन्द, मधुच्छत्रक, पक्व फल, मीठे अङ्कुर, मनोहर पुष्प—दोनों पता नहीं कितनी वस्तुएँ नित्य उनकी सेवा में उपस्थित करते रहते हैं। पता नहीं कब कहाँ से एकत्र कर पाते हैं इन सामग्रियों को। कुश और समिधा लेने कितने अल्पकाल को जाते हैं दोनों कानन में ! महर्षि कहते हैं कि उनके लिये पूरी समिधाएँ, पूरा कुश, पुष्प, दल—पूजा के सभी उपकरण येही दोनों संचय करते हैं। आजकल और ये जो राशि-राशि कन्द, फल, पुष्प--इतने मधुर, इतने पक्व, इतने सुरङ्ग फलादि क्या इसी तपः-कानन में हैं ? इतनी प्रचुर मात्रा में हैं ? अनेक वार कहने पर भी तो कभी कोई ब्रह्मचारी ऐसे फल नहीं ला सका ! कहाँ पा जाते हैं ये दोनों !

'तुमने इन्हें सामान्य राजकुमार ही मान लिया है ? कुल पचास दिनों में इन्होंने साङ्ग, सरहस्य सम्पूर्ण धनुर्वेद की शिक्षा समाप्त कर दी है और अब मध्याह्नोत्तर में गज-विद्या एवं अश्व-विद्या के सूत्र सुनाने लगा हूँ। बारह दिन लगने हैं और पूरा ज्ञान इस विषय का प्राप्त कर लेंगे ये। तुम तो सायंशिक्षा स्वयं देखती हो। एक कला अपने समस्त भेदोपभेदों के साथ दोनों भाई नित्य अवगत कर लेते हैं और कृष्णचन्द्र उसमें नित्य आमूल जो नवीन शैली, नवीन चेतना देता जाता है—मैं इन्हें शिक्षित कर रहा हूँ ? इन्हें शिक्षा दे सकें, ऐसा हो कौन सकता है ! यह मेधा—यह ज्ञान किसी लोकपाल में भी सम्भव है—मेरी बुद्धि इसे मानती नहीं ! मुझे गौरव दिया है इन्होंने और मैं जितनी मुझमें शक्ति है, जितनी योग्यता है, उससे सेवा करने का प्रयत्न करता हूँ।' आचार्य पता नहीं क्या-क्या कह चलते हैं। राम-श्याम की चर्चा करते ही उनके नेत्र झरने लगते हैं। कण्ठ भर आता है। अपने इन दोनों छात्रों की चर्चा, इनका अध्यापन—जैसे दो ही कार्य रह गये हैं उनके लिये।

'राम-श्याम जब से आये, आश्रम के तरु फलभार सम्हाल नहीं पाते। लतिकाओं में पत्रों से अधिक पुष्प ही दिखायी दिया करते हैं। गायों के स्तनों से दुग्ध की धारा चला करती है। दिन भर वे उटज के द्वारपर हुंकार ही करती रहती हैं—उन्हें दुह लिया जाय। उनके स्तनों का दूध—कितना दुह सकता है कोई। मृग, केसरी, शशक, कपि, मयूर, हंस, शुक—ये सब वन-पशु और पक्षी दिन भर आश्रम में ही एकत्र रहते हैं और इतने शान्त, इतने संयत—ऐसे तो कभी नहीं थे ये। कोई मृग नीवारों को सूँघता तक नहीं। कोई कपि आश्रम-तरुओं के एक फल नहीं छूता ! उछलना तक नहीं डालियों पर। पता नहीं सब क्या आहार करते हैं। दिन भर यहीं घेरे रहेंगे और इतने स्वस्थ, इतने प्रसन्न—आश्रम में आनन्द की बाढ़ आ गयी है। ये राम-श्याम—ये जब से आये हैं, कपियों, भल्लूकों, वनगजों के उपहार कहाँ तक सम्हालें गुरुपत्नी ! ये वनपशु—उटज-प्राङ्गण इनके लाये फलों, कन्दों, पुष्पों से भरा रहता है। कितने अद्भुत, कितने सुस्वादु उपहार लाते हैं सब ! राम-श्याम के लाये उपहार ही कहाँ समाप्त हो पाते हैं कि इनका उपयाग हो। राम-श्याम—आश्रम के छात्र कहते हैं कि दोनों भाई मध्याह्न के पूर्व, वेदाध्ययन करके जब झोली कंधे पर धरे भिक्षाटन को निकलते हैं—कहाँ गये हैं दोनों किसी गृह में किसी दिन। वन-पशुओं में होड़ लगती है—कौन कितने उपहार अर्पित करेगा इनकी झोलियों में ! किसके फल या कन्द कितने नूतन—कितने सुस्वादु होंगे ! पशुओं तक ही बात कहाँ है, ये तो तरुओं से भिक्षा लेते हैं। लाल-लाल पद्मपाणि फैला और पक्व फल चू पड़ा, जैसे वृक्ष प्रतीक्षा ही करते रहते हों ! छात्र क्यों अत्युक्ति करेंगे ! ये दोनों भाई जब से आये—सभी छात्रों का भिक्षाटन बंद ही तो है उसी दिन से ! इनकी झोलियाँ—मध्याह्न में महर्षि के श्रीचरणों में जब ये अपनी झोलियाँ उपस्थित कर देते हैं—कितना आग्रह करते हैं महर्षि कि ये अपने लिये फल ले लें ! ये तो छाँटने लगेंगे आज्ञा पाते ही गुरुपत्नी के लिये, आचार्य के लिये, सहपाठियों के लिये, धेनुओं के लिये, कपियों और मृगों के लिये--पता नहीं कितने प्राणियों

को तृप्त करना रहता है इन्हें ! गुरुपत्नी यदि स्वयं आग्रहपूर्वक न खिला दें—इन दोनों को अपने भोजन का स्मरण आना ही नहीं है !' पता नहीं कितनी बातें आती हैं मन में। महर्षि कहते हैं—ये सामान्य राजकुमार नहीं—कोई देवता भी ऐसे नहीं हो सकते; किंतु इनके विषय में जब मन सोचने लगता है—वह तो इन्हीं के सम्बन्ध में सोचता ही है अब और कहाँ-से-कहाँ चिन्तनधारा जा रहती है—क्या ठिकाना रहता है।

'राम-श्याम—गुरुसेवा की मूर्ति ये सुकुमार बालक ! गुरुदेव के स्नान की, हवन की, पूजन की सम्पूर्ण सेवा, मध्याह्न और रात्रि में आचार्य के चरण दबाना और गुरुपत्नी की सभी सुविधाओं की व्यवस्था—ये दोनों तो और किसी को कुछ करने ही नहीं देते हैं। जल ये लायेंगे, फल-मूल-पुष्प इन्हें ही लाना है, काष्ठ दूसरे को लाने देने से रहे ये और गो-सेवा—भला, इसे कैसे कोई इनके रहते दूसरा कर पाये। उटज और आश्रम—प्रातः-संध्या से पूर्व सबको स्वच्छ कर देंगे, गोमय से उपलिप्त कर देंगे और तब आचार्य के चरणों में ऐसे उपस्थित होंगे, जैसे कुछ किया नहीं इन्होंने—कोई सेवा इन्हें भी चाहिये। कितने सरल हैं दोनों !' गुरु-पत्नी बड़े आग्रह से कुछ फल खिला पाती है। प्रातः चरण-वन्दन करके राम-श्याम लग जायँगे अपने कार्यों में और जैसे इन दोनों को देखते रहने के अतिरिक्त कोई कार्य रह ही नहीं गया है। क्या कार्य रह गया है ? महर्षि सदा के परम तापस—आजकल तो उनके लिये नीवार-रन्धन भी करना नहीं रहता। राम-श्याम के लाये फलों से आश्रम के पशु-पक्षी तक तृप्त हो जाते हैं और फिर इन अद्भुत स्वादिष्ठ फलों के रहते कौन कामना करेगा किसी और पदार्थ की। 'कोई सेवा, मातः ?' दोनों मस्तक झुकाये, भूमि में दृष्टि किये पता नहीं कितनी बार पूछ जाते हैं। गुरुपत्नी क्या कहें, कहने का कहाँ कभी अवकाश मिलता है उन्हें। एक पल और कोई-न-कोई कार्य स्वयं ढूँढ़ लेंगे दोनों—उसे करने में व्यस्त हो उठेंगे ! घुँघराली अलकें रूक्ष पड़ी हैं, सुमन-सुकुमार शरीर—पर ब्रह्मचारी हैं न दोनों ! गुरुपत्नी का वात्सल्य—वात्सल्य हृदय में उमड़ता है—नियम, आश्रम - मुख खुलते-खुलते रह जाता है ! कर बढ़ते-बढ़ते थकित हो जाते हैं। वे देखती रह जाती हैं एकटक—स्थिर—अपलक !

× × × ×

'राम-श्याम हमारे साथ पढ़ेंगे ! हमारे सहपाठी होंगे ये !' कितनी उमंग उठी थी अन्तर में उस प्रथम दिन ही। किस उल्लास से आश्रम के ब्रह्मचारियों ने स्वागत किया इनका।

'यह कृष्णचन्द्र—इन भाइयों की यह लोकोत्तर प्रतिभा !' दूसरे दिन आश्चर्य ने स्तब्ध कर दिया। आचार्य उचित ही तो अनुराग करते हैं इनका।

'सुकुमार श्याम—कोमल अरुण कर—यह क्या सेवा के लिये हैं !' विद्यार्थी कितना चाहते हैं कि दोनों भाई आश्रम का कोई काम न करें। कितना प्रयत्न करते हैं वे। आश्रम स्वच्छ—गोमय से लिपा-पुता स्वच्छ। गोशाला पहले ही किसी ने स्वच्छ कर दी ! गुरुपत्नी कहती हैं—गृह-मार्जन हो चुका, जल तो राम रख गया बहुत पहले और पुष्प तथा फल भी। समित्, कुश, दूर्वा-अङ्कुर—कृष्णचन्द्र ने हवनीय वेदिका के समीप गुरुदेव के स्रुवादि के साथ छात्रों के आसन तक सजा दिये ! कब हो जाता है यह सब ? कब कर लेते हैं दोनों भाई—पता नहीं कब हो जाता है सब; पर जिस काम के लिये देखो, जहाँ जाओ—राम-श्याम ने कर दिया है ! पहले से सब कर दिया है ! गुरुगृह की, गुरुदेव की, गायों की ही नहीं—उन छात्रों की स्वयं की सेवा भी कर चुकते हैं ये दोनों। उनके आसन यथास्थान बिछ चुके, हवन की उनकी समिधाएँ आ गयीं; सुमन पत्र-पुटकों में सजा दिये गये, सूखे वल्कल यथास्थान रख दिये—कितनी सावधानी, कितनी चेष्टा कर ली सब ने; पर कृष्ण कब कर लेता है पहले ही—पता ही नहीं लगता।

'तुम दिन भर पढ़ते हो ! आश्रम की सेवा तो हम पर रहने दो !' कितने स्नेह से बार-बार आग्रह किया सब ने—'गुरुदेव की सेवा का सौभाग्य हमें भी तो कुछ मिले ! ब्रह्मचारी दूसरे से सेवा ले—यह तो अपराध है न, भाई !' राम हँसकर टाल देता है और श्याम—श्याम ही सारे कार्य कर लेता है और कहने पर हँसने लगता है।

'आप सब श्रेष्ठ हैं ! हम लोगों से पहले आये हैं ! आपकी सेवा से ही तो भगवती वीणापाणि प्रसन्न होंगी !' भगवती वीणापाणि—भगवती जिसकी सेवा में प्रत्यक्ष उपस्थित-सी दीखती हैं—पर कृष्णचन्द्र किसी का अनुरोध कहाँ सुनता है। 'मैं कहाँ कोई सेवा कर पाता हूँ ! कुछ भी तो नहीं कर पाता !' यह शील, यह सौहाद, यह प्रेम—ऐसा सहपाठी मिले—आजन्म गुरु-कुल में ही निवास करने को देवता भी आतुर हो उठेंगे।

सेवा, सम्मान-दान और प्रेम—श्रीकृष्ण—श्याम को जैसे अपने लिये सुविधा, मान, कुछ चाहिये ही नहीं। यह आनन्द और अनुराग की मूर्ति सबको तुष्ट करने, प्रसन्न करने, सत्कृत करने में ही लगा रहता है और जब इसकी प्रशंसा में कुछ कहो—मुख पर हाथ धर देगा ! ऐसा संकुचित होगा—कहने की बात नहीं। यह नम्रता—और आजकल यही सबका वास्तविक अध्यापक है। गुरुदेव ने सबकी शिक्षा छोड़ दी है इस पर। इसकी व्याख्या, इसका समझाना—ज्ञान की मूर्ति हृदय में अङ्कित करता बोलता है और तब भी कहेगा—'मैं छोटा हूँ न ! आपकी सेवा ही से तो भगवती भारती की कृपा-कोर मिल सकती है !'

राम-श्याम की सेवा—इनकी सेवा छात्रों तक ही कहाँ सीमित है। आश्रमधनुएँ हुंकार करती हैं इनके लिये ! इनके करों के कोमल तृणों के बिना मृगशावक और बछड़े तक तृण छूना नहीं चाहते। दूध इन्हें ही दुहना है और बछड़ों का सत्कार ये दूसरे पर छोड़ने से रहे। पशु-पक्षी—सभी तो इन्हें घेरे रहते हैं। सबकी सेवा—जैसे संसार को स्नेह-दान के लिये ही यह श्याम आया है। तरु-लताओं का सिञ्चन, उनके आलवालों की भूमि की निराई—कैसे इतना समय मिल जाता है इन्हें। गुरुदेव बराबर पढ़ाते रहते हैं—रात्रि के प्रथम प्रहर में भी इनका अध्ययन चलता है और उस अध्ययन का मनन—आवृत्ति—क्या आवश्यकता है इसकी। कहाँ अवकाश है इसके लिये ! प्रमाद की क्या चर्चा ! नियमों में कहीं कोई शिथिलता कैसे सम्भव है और ये इतने कार्य—श्रीकृष्ण तो जब देखे, जो देखे—उसीके समीप, उसीकी सेवा में लगा रहता है ! उसे जैसे अवकाश-ही-अवकाश है ! किसी के कार्य, किसी सेवा के लिये समय न हो उसके पास—यह तो सोचा ही नहीं जा सकता।

× × × ×

'मातः, कोई सेवा ?' आज यह कृष्णचन्द्र गुरुपत्नी के सम्मुख सुदामा (श्रीदाम) के साथ आया है। विप्रकुमार श्रीदाम—यह ब्राह्मण-कुमार श्याम का प्रिय सखा हो गया है और अब तो ये दोनों संग ही रहा करते हैं।

'श्रीदाम, उटज में सूखा इन्धन नहीं हैं !' गुरुपत्नी जानती हैं कि कृष्णचन्द्र साथ ही जायगा। वह रोका नहीं जा सकता। आज दिन में मेघ नहीं रहे हैं। पावस में सूखा इन्धन समाप्त हो गया और प्रकाश है। यदि सायंकाल कहीं राम या कृष्ण को पता लगा कि इन्धन नहीं है तो वे उसी समय कानन में भाग जायँगे। इस वर्षाऋतु का क्या ठिकाना—अभी प्रकाश है, धूप है—अभी मेघ घिर आयें, वर्षा होने लगे। अभी ये काष्ठ ले आयें तो वर्षा में अँधेरे में इनके वन में जाने की आशङ्का न रहे।

'तुम और किसी को साथ ले लो ! बहुत दूर मत जाना ! जो भी थोड़ा बहुत काष्ठ मिले, लेकर शीघ्र लौट आना !' गुरुपत्नी ने स्पष्ट प्रकट कर दिया कि श्याम वन में न जाय तो अच्छा है।

'हम पर्याप्त काष्ठ ला सकेंगे !' कृष्णचन्द्र तो पहिले ही उटज से बाहर हो गया। वह क्या ऐसे अवसर पर कुछ और सुनने को रुका करता है।

'श्याम नहीं आया ! वह वन में चला गया !' गुरुपत्नी तो सम्भवतः दूसरे ही क्षण से प्रतीक्षा करने लगीं। अब ये मेघ घिरने लगे ! घटाएँ बढ़ने लगीं ! सूर्यास्त समीप आया। दिशाओं में अन्धकार छा रहा है ! 'कहाँ गये—कहाँ रह गये दोनों ! किस अशुभ मुहूर्त में मैंने आदेश दिया !' गुरुपत्नी व्याकुल हो उठी हैं ! वे उटज-द्वार पर दूर तक दृष्टि लगाये हैं। 'कृष्ण—कृष्ण वन में है !'

'श्यामसुन्दर वन में है !' महर्षि को समाचार दिये बिना और मार्ग नहीं। छात्र दूर तक देख आये ! कहीं पता नहीं है। कोई पुकार का उत्तर नहीं देता।

'यह मूसलाधार वर्षा ! श्रीचरण इस अन्धकार मयी रात्रि में कहाँ भटकेंगे ! प्रकाश जा नहीं सकता ! हमारी पुकार के स्वर इस वर्षा में सुनायी नहीं पड़ेंगे ! श्याम साथ है—श्रीदाम के लिये कोई आशङ्का की बात नहीं !' यह राम चरण पकड़ कर महर्षि को इस रात्रि में, इस वर्षा में वन में जाने से निषेध कर रहा है। 'श्रीदाम के लिये आशङ्का नहीं। श्याम साथ है !' अपने छोटे भाई पर इसका उचित विश्वास है, पर कृष्णचन्द्र वन में है ! वह इस अन्धकार में, इस महा वृष्टि में पता नहीं कहाँ होगा ! महर्षि के प्राण आतुर हैं।

'यह वर्षा ! यह प्रबल झञ्झावायु ! यह सूची-भेद्य अन्धकार !' महर्षि द्वारपर खड़े हैं उटज के। 'कृष्ण ! कृष्णचन्द्र ! श्यामसुन्दर !' गुरुदेव तो इस प्रकार पुकार रहे हैं, जैसे श्याम सम्मुख ही से उत्तर देगा ! 'ये बालक, यह राम—इन्हें रोका नहीं जा सकता ! इन्हें भी इस वर्षा, इस अन्धकार में ले नहीं जाया जा सकता !' महर्षि के चरण उठकर भी नहीं उठ पाते। उनके आतुर प्राण छटपटा रहे हैं।

राम--पर राम क्या करे ! ये वृद्ध गुरुदेव, ये ब्राह्मण-कुमार—इन्हें कैसे जाने दिया जा सकता है ! 'कृष्ण वन में है ! श्याम भीग रहा होगा !' राम को कौन-सी शक्ति यहाँ रोककर अब भी इस कठोर कर्तव्य में स्थिर किये है, यह वह स्वयं भी कहाँ समझ पाता है। कर्तव्य--गुरुदेव को किसी प्रकार रोके रहना ही कर्तव्य है इस समय उसका ! वह न हो, गुरुदेव पता नहीं कहाँ भटकेंगे--कितना कष्ट उठायेंगे इस महारात्रि में।

'वह चमका पीतपट ! वह आया श्याम ! कृष्णचन्द्र !' विद्युत् की चमक, पत्तों के शब्द--गुरुदेव, छात्र--सभी तो बार-बार चौंकते हैं। बार-बार पुकारते हैं। सबको ही तो अब श्याम ही दीखता है प्रत्येक आहट में आता हुआ !

'कृष्ण नहीं आया ! कृष्ण--मैंने उसे भेज दिया ! वह आया नहीं !' गुरुपत्नी तो चेतना में ही नहीं हैं। वे मूर्छित होती हैं, चौंकती हैं और चिल्ला उठती हैं।

'श्याम का कुछ नहीं बिगड़ेगा ! उसपर संकट आ नहीं सकता ! हम बड़े सबेरे ढूँढ़ लायेंगे उसे !' राम ही तो सबका आश्वासन बना है। यह द्वारपर न खड़ा हो द्वार रोके.....।

× × × ×

पावस के मास--वन में सूखे काष्ठ क्या सरलता से मिल सकते हैं ? ब्रह्मचारी को वृक्षपर चढ़ना नहीं चाहिये--यह तपोवन--यहाँ के ये हरित, पुष्पित, पल्लवित, फलभार से झूमते वृक्ष--यहाँ शुष्क काष्ठ कहाँ मिलते हैं। 'श्याम, बहुत वेग से वृष्टि होगी ! इन उमड़ते-घुमड़ते मेघों को देख तो !' श्रीदाम ठीक ही शङ्कित हुआ है। इतने दूर कानन में आ गये और अब वर्षा आ रही है।

'हम शीघ्र लौट चलें !' काष्ठ-चयन जितना हुआ, उसी पर संतोष करने के अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं है। वर्षा आ रही है। लौटना ही है अब !

'हम लोग मार्ग भूल गये !' श्रीदामा ने कृष्णचन्द्र की ओर देखा और फिर देखा गगन की ओर। अन्धकार बढ़ता आ रहा है ! मेघ तीव्रगति से ऊपर आ रहे हैं ! यह 'हर्र_हर्र' वर्षा आ रही है ! मार्ग ? मार्ग ? बड़ी-बड़ी बूँदें, तीव्र वर्षा, प्रबलतम मारुत।

भीगी अलकें, भीगे मृगचर्म, कक्ष में पलाश-दण्ड, थोड़े-सी समिधाएँ--मूसलाधार वर्षा, तीव्र झञ्झावायु, झूमते तरु, बार-बार गर्जन और मध्य में यह चपला का प्रकाश—अन्धकार बढ़ता जा रहा है ! बढ़ रहा है ! अस्त-व्यस्त, एक वृक्ष से दूसरे के नीचे परस्पर हाथ पकड़े भागते ये दो कुमार ! मार्ग ? मार्ग ? निखिल मार्गों का प्रेरक, सम्पूर्ण मार्गों का अन्वेष्य मार्ग चाहता है ! मार्ग—यह गहन कानन, यह बढ़ता अन्धकार, यह घोर वर्षा--मार्ग कहाँ मिले ! जो समस्त भव-भ्रान्तों का नित्य निष्कण्टक सरल मार्ग है--पर यह गुरु-सेवा ! आज यह श्यामसुन्दर गुरुदेव के लिये--उनकी सेवा के लिये इस महावर्षा में भटक गया है वन में।

अन्धकार--सूची-भेद्य अन्धकार! अपना हाथ भी नहीं दिखायी पड़ता! वर्षा के घटने का नाम नहीं! भगवान् भास्कर सम्भवतः अस्ताचल को चले गये! वर्षा—पवन--शरीर काँपने लगा है, रोम-रोम खड़े हो गये हैं, दन्तपंक्तियाँ शब्द करने लगी हैं! गिरते-गिरते अनेक बार बचे! अब नहीं--अब इस अन्धकार में कहीं नहीं जाया जा सकेगा। चरण शान्त हो गये! अन्धकार गाढ़ हो गया। तरु-मूल में एक दूसरे से सटकर, सिकुड़कर, किसी प्रकार बैठे रहना है! बैठे रहना ही पड़ेगा!

× × × ×

'कृष्ण! कृष्ण! कृष्णचन्द्र!' यह विह्वल, यह कातर स्वर! ये गुरुदेव पुकार रहे हैं! रात्रि व्यतीत हो गयी--सूर्योदय हुआ! मेघ दूर हुए! अब तो श्याम आश्रम में पहुँचने को ही चला है श्रीदामा के साथ! गुरुदेव पुकार रहे हैं! प्रभात का समय--पता नहीं कब से चले हैं गुरुदेव। कहाँ-कहाँ भटकते रहे हैं! गुरुदेव, राम—सभी तो पुकार रहे हैं! सभी तो आ रहे हैं।

'कृष्ण! कृष्णचन्द्र!' यह प्रातःकाल--भगवान् भास्कर को अर्घ्य, संध्या, पितरों को तर्पण, देवताओं को आहुतियाँ--ये अखण्ड नियमनिष्ठ आचार्य--आज किसे स्मरण हैं नियम! कौन उनकी बात सोचता है। 'कृष्ण! कृष्णचन्द्र!' आतुर, विह्वल कण्ठ गूँज रहे हैं।

'प्रभो, यह वासुदेव कृष्ण श्रीचरणों में प्रणत है! दौड़ा श्याम, कहाँ अवसर मिला उसे प्रणाम करने का। दोनों बाहु फैलाकर दौड़े ये वृद्ध महर्षि!

'कृष्णचन्द्र!' महर्षि की वाणी कण्ठ से बाहर कहाँ आ पाती है! यह नेत्रों से बहती धारा!

× × × ×

'श्यामसुन्दर, देह धारियों के लिये शरीर ही परम प्रिय हैं! तुम्हारा यह भुवन-मोहन सुकुमार शरीर--मेरे लिये तुम रात्रि भर घोर वर्षा में गहन कानन में पड़े रहे! मैं अकिञ्चन ब्राह्मण—आशीर्वाद ही तो दे सकता हूँ मैं! इस लोक और परलोक में भी समस्त वैदिक ज्ञान--सम्पूर्ण छान्दस तत्त्व तुम दोनों भाइयों को नित्य स्मरण रहें!' वन से मार्ग तक महर्षि कहाँ बोलने में समर्थ हुए! आश्रम में प्रातः कृत्य कैसे हुआ--कौन कह सकता है; पर यह कृष्णचन्द्र अग्रज के साथ प्रातः-हवन के पश्चात् गुरु-चरणों में प्रणाम कर रहा है! महर्षि ने दक्षिण हस्त फैलाया—उनका आशीर्वाद ही तो निखिल ज्ञान का मूल है। उनका आशीर्वाद--इस आशीर्वाद के पश्चात् अध्ययन अपूर्ण कहाँ रह जाता है।

गुरुपुत्रानयन

"ये स्युस्त्रैलोक्यगुरवः सर्वे लोकमहेश्वराः ।
वहन्ति दुर्लभं लब्ध्वा शिरसैवानुशासनम् ॥"

—भागवत १० । ७४ । २

गुरुदेव ने राम-श्याम को आशीर्वाद दे दिया है ! समावर्तन-संस्कार है आज तो इन दोनों भाइयों का । शिक्षा—शिक्षा तो इन्हें कौन दे सकता था । चारों वेद, उनके अङ्ग—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्यौतिष—उपनिषत् , आरण्यक, धर्मसूत्र, कल्पसूत्र, शुल्वसूत्र, स्मृतियाँ, पुराण, इतिहास, षड्दर्शन और षड्विध राजनीति—गुरुदेव प्रातःकालीन शिक्षाकाल में केवल एक बार इनके मूल सूत्र ही तो बोलते रहे हैं ! दोनों भाइयों ने उस श्रवणमात्र से जो धारणा प्राप्त की है, कृष्णचन्द्र जो अद्भुत व्याख्या कर देता है—यह क्या शिक्षा से शक्य है । अपराह्न की शिक्षा में धनुर्वेद को साङ्ग, सरहस्य समाप्त कर दिया इन्होंने केवल पचास दिनों में और बारह दिनों की अपराह्न-शिक्षा में पूरा अश्व एवं गजों का परीक्षण, चालन, शिक्षण एवं चिकित्सा का ज्ञान प्राप्त कर लिया । सायंकाल गुरुदेव एक-एक कला के शिक्षा-सूत्र ही तो बोलते थे—उन्हें मूर्ति देता, उनमें मौलिकता का नव-नव सृजन करता यह श्यामसुन्दर—चौंसठ दिन और चौंसठ कलायें—शिक्षा पूर्ण हो गयी ! आज तो इनका समावर्तन-संस्कार है ।

राम-श्याम का समावर्तन-संस्कार है ! धन्य हो गयी है अवन्तिका ! राजमाता राजाधिदेवी—आज उनके स्नेहमय भाई के ये दोनों पुत्र राजसदन आ सकेंगे ! इनका समावर्तन है । राजमाता—राम-श्याम की बुआ—'महर्षि ने आशीर्वाद दे दिया है' कितना आनन्द हुआ है उन्हें इस समाचार से । दोनों के समावर्तन में सम्मिलित होने का सौभाग्य अवन्तिका को प्राप्त हुआ ! नगर में साज-सज्जा, उमंग का पार नहीं है आज । राम श्याम के लिये वस्त्र, आभरण, उष्णीष, कञ्चुक, उपानह्, रत्नदण्ड—राजमाता तो स्वयं अपने करों से ही तैल, उद्वर्तन, उपलेपन, अङ्गराग, पुष्पमाल्य तक प्रस्तुत कर लेना चाहती हैं ! जैसे उन्हें किसी को भाग नहीं देना है—किसी पर भरोसा नहीं है—वे सुकुमार गौर-श्याम—कौन उनके योग्य पदार्थ प्रस्तुत कर सकता है । नगर में जो उमंग, जो उत्साह जन-जन में, प्रत्येक अन्तर में उमड़ पड़ा है.....।

उल्लास तो उमड़ चला है आज तपोनिरत प्रशान्त महर्षि सांदीपनि के आश्रम में । 'कृष्णचन्द्र भाई के साथ जायगा !' कितनी दुःखद कल्पना है यह ! श्याम का स्नेह, सौहार्द और सामीप्य—पर यह भुवनसुन्दर, सुमनमृदुल, यह क्या इस तपोवन के योग्य है ! इसके इन घनश्याम अङ्गों पर क्या ऐणेयाजिन शोभा देता है ? यह रत्नमेखला-मण्डित होने योग्य कटि—मौञ्जी मेखला कितनी कष्टकर है ! कितनी व्यथा होती है श्याम की कटि में यह रूक्ष मेखला देखकर ! आज दूर होगी यह मेखला ! महर्षि पूजन करायेंगे देवताओं का, हवन होगा और दोनों भाई सहस्र धाराओं से स्नान करके मन्त्र के साथ मेखला का विसर्जन कर देंगे ! व्रत समाप्त हो जायगा !

'गौर-श्याम अङ्गों पर जगमगाते नील-पीत सुकोमल वस्त्र ! कितनी भव्य मूर्ति होगी ! कितना आह्लाद होगा हमें !' ब्रह्मचारीगणों के सम्मुख अभी से दृश्य चल रहे हैं । सूर्योपस्थान करके दोनों भाई दन्तधावन करेंगे !' उदुम्बर की सुकोमल शाखा कब से ला रखी है उन्होंने । 'काली घुँघराली अलकें सुगन्धित कटु तैल से सिक्त होकर लहरा उठेंगी ! भला, ये अलकें इस प्रकार रूक्ष रहने और जटा बनने के लिये हैं ! हम इनमें सुमन गूँथ देंगे !' पता नहीं क्या-क्या सोच रहे

हैं वे। 'यवचूर्ण से उद्वर्तन, उष्णोदक-स्नान, मलयज-लेपन, हस्तोपलेप, प्राणायाम और तिलक' कितने ही सहपाठियों का उद्वर्तन-समारोह देखा है उन्होंने। अनेक बार भाग लिया है; पर आज—आज-जैसा उद्वर्तन क्या शक्य है—किसी की कल्पना में भी यह सौन्दर्य, यह उल्लास आ सकता है! 'गुरुदेव मन्त्र-पाठ करेंगे! हम सब सहायता करेंगे कर्मों में और महद्वास धारण करके, माला, उष्णीष, कञ्चुक, अलंकार, अञ्जन, उपानह्, रत्नदण्ड से शोभित राम-श्याम की भव्य-मूर्ति!' ब्रह्मचारी बालकों के शरीर पुलकित हो रहे हैं! उनके मानस-नेत्रों के सम्मुख समावर्तन की एक-एक भङ्गिमा जैसे आनन्दसिन्धु का अपार स्रोत उद्वेलित करती उठती है!

गुरुदेव आज व्यस्त हैं! ब्राह्ममुहूर्त से पूर्व ही उठ गये वे अपने आसन से। गुरुपत्नी—कहाँ रात्रि में विश्राम लिया है उन्होंने। विद्यार्थियों ने ही कहाँ पलकें बंद की हैं। पुष्पमाल्य, बन्दनवार, सुमन, अङ्कुर, दूर्वादल, पता नहीं क्या-क्या एकत्र किया है सबने। गोमयोपलिप्त, विविध मण्डलों-से मण्डित, कदली-किसलय, अङ्कुर, पुष्प, दल, फलों से सज्जित यह आश्रम-भूमि—यह शृङ्गार, यह शोभा—वनदेवी ने अपने करों से ही जैसे आज आश्रम को सजाया है। यह सात्त्विक सौन्दर्य—अमरावती का ऐश्वर्य रत्नों के कृत्रिम कुसुमों से बनाये गये पशु-पक्षियों की श्री से मण्डित हो सकता है, किंतु ये सहज विकच कुसुम-स्तबक, ये आनन्दोत्फुल्ल गुंजार करती अलि-अवलियाँ, ये थिरकते-कूजते पक्षी, ये कूदते—नृत्य करते पशु-यह शोभा साम्राज्यों का कोई भी ऐश्वर्य कहाँ पा सकता है और आज तो उन तपःपूत करों ने प्राणों के एकान्त स्नेह से इन्हें सजाया है, जिनके संकल्प से धरा पर अमरावती के वैभव का उपहास करनेवाला ऐश्वर्य चाहे—जब व्यक्त हो सकता है। वैभव और श्री के अधिष्ठाता जिनकी कृपा की आतुर प्रतीक्षा करते हैं, महर्षि सांदीपनि के उन भुवन-वन्दित ब्रह्मचारियों ने सजाया है आज आश्रम को। आज उनके सुहृद्-सखा राम-श्याम का उद्वर्तन-संस्कार है!

भगवान् महाकाल अखण्ड दुग्धाभिषेक से पूजित हो रहे हैं! गूँज रहा है आश्रम शङ्ख-नाद और सस्वर साम-गान से! गगन से होती पुष्पवृष्टि, सुरवाद्य, गन्धर्वों के मङ्गल-गान, अप्सराओं के नृत्य, जयनाद और धरा—धरा आज स्वर्ग से धन्य है! अवन्तिका की धरा—आज इस पुण्य-धरा की स्पर्धा कहाँ! नगर के जनों का सागर उमड़ता आ रहा है! 'ब्रह्मचारी गुरुदक्षिणा दिये बिना माता-पिता के दर्शन नहीं कर सकता!' मथुरा को संवाद भले न भेजा जाय—अवन्तिका में ही क्या कम उपहार हैं! राम-श्याम का उद्वर्तन-समारोह—किसे अपने मङ्गलउ-पहारों को सार्थक नहीं करना है! बहुमूल्य रत्न-थालों में सजाये ये उपहार—आज इनके साथ नेत्र, मन, प्राण—जीवन को भी तो कृतार्थ होना है!

× × × ×

'आचार्यचरण पूर्णकाम हैं; पर हम बालकों को भी कृतकृत्य होने का सौभाग्य मिलना चाहिये!' उद्वर्तन-संस्कार पूर्ण हुआ। नूतन नील-पीत वस्त्रों में रत्नाभरण-भूषित ये राम-श्याम, इनकी यह अरूप रूप राशि, यह नयनानन्दकर शोभा—दोनों भाइयों ने साष्टाङ्ग प्रणिपात किया महर्षि सांदीपनि के परम पावन पदों में और नासिकाग्र, भाल, भ्रूमण्डल रजो-भूषित हो गये। कितना गौरवमय है यह नम्रता, श्रद्धा का पावन अलंकार। अञ्जलि बाँधकर, मस्तक झुकाकर, घुटनों के बल बैठे दोनों भाई प्रार्थना कर रहे हैं—'श्रीचरणों के असीम अनुग्रह से उऋण होने की बात भी नहीं सोची जा सकती! कौन ज्ञान के उस परमोज्ज्वल प्रकाश का प्रतिदान देने में समर्थ है और वह जिस स्नेह, जिस अनुराग से हमें प्राप्त हुआ—जन्म-जन्म तक इन पावन पदों के हम अकिंचन किंकर ही रहेंगे! हम तो आदेश-पालन का गौरव चाहते हैं और यह धृष्टता—श्रीचरणों के स्नेह ने ही इसका साहस दिया है!'

'कृष्णचन्द्र! राम! वत्स...!' महर्षि ने आकुलतापूर्वक भुजाएँ फैलाकर उठा लिया, लगा लिया अङ्क में दोनों को। 'ये राम-श्याम, ये उनके शिष्य हुए! इन घनज्ञान-विग्रह बन्धुओं ने गौरव दिया, कृतार्थ किया जीवन को और अब ये गुरु-दक्षिणा देना चाहते हैं!' गुरु-दक्षिणा—

'जो सेवा, जो श्रद्धा, जो सम्मान दिया है इन्होंने—किस अमरावती का अधीश्वर, कौन-सा जन या तप का अधिष्ठता उसके लिये उसके अंशमात्र के लिये आतुर न होगा ! कहाँ तुलना है उसकी और ये गुरुदक्षिणा देंगे !' महर्षि की वाणी असमर्थ हो गयी है। शरीर पुलकित है। नेत्रों की वारिधारा राम-श्याम की अलकों का अभिषेक कर रही है !

'गुरुदेव, हम बालकों के बाल-हठ की रक्षा के लिये ! हम पर कृपा करने के लिये--' श्याम का कण्ठ भी आर्द्र हो रहा है। कितना नम्र, कितना सरल, कितना श्रद्धा-भरा है यह स्वर !

'कृष्णचन्द्र ! वत्स ! तुम दोनों भाई भगवान् भास्कर को अर्घ्य देना नियमपूर्वक ! नित्य हवन करना ! ब्राह्मणों, गौओं, अतिथियों की रक्षा करना ! उनका सत्कार करना !' महर्षि जैसे कुछ सुनते ही नहीं हैं। वे तो गद्गद कण्ठ से उपदेश देने लगे हैं। उपदेश—गुरु-दक्षिणा के पश्चात् स्वगृह जाते ब्रह्मचारी को उपदेश देने जेसा यह उपदेश !

'श्रीचरणों की कोई भी तुच्छ सेवा का हमें सौभाग्य प्राप्त हो !' यह राम का आग्रह है। कितना विनय-भरा है यह आग्रह।

'राम-श्याम आग्रह कर रहे हैं ! इनका आग्रह टाल दे ऐसी शक्ति किसमें हैं ! ये कुछ कह रहे हैं, कुछ चाहते हैं, कुछ देना चाहते हैं ! क्या ? क्या ?' जैसे गुरुदेव के चित्त में कोई अज्ञात कर क्रियाशील हो गया है। राम-श्याम गुरुदक्षिणा देना चाहते हैं ! दोनों का अनुनय-भरा आग्रह—उसे तो पूर्ण होना ही चाहिये।

'ये गुरुदक्षिणा के लिये आग्रह कर रहे हैं ! मथुरा जाना है अब इन्हें—जाना ही चाहिये ! ये मथुरा जायँगे—आश्रम से दूर मथुरा ! राम-कृष्ण जायँगे ! इस आश्रम से जायँगे अब ! क्या होगा ? क्या होगा आश्रम का ? ये पशु, ये पक्षी, ये गायें—राम-कृष्ण न होंगे तब क्या दशा होगी इनकी ! ये छात्र-वृन्द और वह मेरी ब्राह्मणी—बेचारी सरला, साध्वी ब्राह्मणी—वह इन्हें प्राणों से अधिक चाहती है ! कैसे जीवित रहेगी वह ! एक पुत्र था—आज यदि वह होता, आह जब वह समुद्र में डूब गया—कितना रोई, कितनी व्याकुल हुई वह। आज वह होता—तनिक आश्वासन मिलता उसे। किसी प्रकार जीवन-धारण कर लेती !' महर्षि का मन पता नहीं कहाँ से कहाँ चला गया है।

'श्रीचरण संकोच न करें ! इन पावन पदों के प्रसाद से त्रिभुवन में कुछ भी अप्राप्य रहे, यह शक्य नहीं है !' रामका स्वर स्थिर है ! आश्वासन, अनुरोध, विश्वास—सभी तो है उसमें।

"ये राम-श्याम; इनका यह लोकोत्तर प्रभाव ! त्रिभुवन में क्या अप्राप्य है इन्हें। ये आग्रह कर रहे हैं। ये सर्वसमर्थ—ब्राह्मणी के जीवन-धारण का उपाय यदि न हुआ—वह कैसे जीवित रहेगी !' महर्षि ने अपने को स्थिर किया। पत्नी से कुछ मन्त्रणा करने उठ गये वे उटज में ! पुत्र—किस माता के हृदय को पुत्रका वात्सल्य क्षुब्ध नहीं करता और इन राम-श्याम ने आचार्य-पत्नी के अन्तर में जो असीम वात्सल्य को स्रोत प्रवाहित कर दिया है यहां आकर। महर्षि जब पुनः लौटे—कुछ क्षणों में ही वे उटज से बाहर आये—स्वर स्पष्ट हो गया—'वत्स, तुम दोनों भाइयों के लिये त्रिभुवन में न कुछ अप्राप्य है और न अदेय ! हम सब ग्रहण-स्नान के लिये प्रभास गये थे ! मेरे पूर्वजों की आशा का आधार, मेरे पितरों को तृप्त करने वाला एक ही बालक था। अबोध बालक—समुद्र की उत्ताल तरङ्गें आयीं और अदृश्य हो गया वह उस जल-राशि में। मेरा गोत्र समाप्त हो रहा है ! ....'

'हम गुरुपुत्र को श्रीचरणों में उपस्थित कर देंगे !' श्याम ने बात पूरी होने से पूर्व ही मस्तक रखा गुरुदेव के पदों में ! 'सागर का इतना साहस !' राम ने छोटे भाई के साथ गुरुचरणों में मस्तक झुकाकर पीछे देखा ! उनका रथ—मथुरा से आया वह रथ अब तक अवन्तिका में ही तो प्रतीक्षा करता रहा है। सारथि प्रस्तुत है—'प्रभास !' आज्ञा से अधिक क्या चाहिये उसे।

× × × ×

ये महारथी, ये दुरन्त-विक्रम, वही गौर-श्याम श्रीअङ्ग, ये सागर के तट पर आये हैं। क्या हुआ जो धनुष नहीं है, नहीं है तापस वेष, नहीं है वल्कल, कपि-ऋक्ष-यूथ भी नहीं है साथ; इन्हें क्या किसी सहायक या अस्त्र की आवश्यकता हुआ करती है ? समुद्र त्रेता में ही बहुत सीख चुका है, अच्छी शिक्षा मिल चुकी है। श्रीराघव ने शर-संधान मात्र ही तो किया था, वे भ्रूमण्डल कुञ्चित हुए और जो महाज्वाला उठी थी उदधि के अन्तर में—वह महादाह और इस बार ये शौर्य-निधि स्वर्णगौर अग्रज हो आये हैं। उस बार श्रीरामानुज ने प्रारम्भ में ही शर-संधान का आग्रह किया था और आज आदेश दे सकते हैं ये ! ये नील-पीत पट, ये रत्नाभरण, यह महारथ और ये सागर-पुलिन पर उतरकर, बैठ गये हैं 'वेला' के समीप ! नहीं—समुद्र प्रमाद नहीं कर सकता ! ये दीर्घ लोचन, ये सघन भ्रूमण्डल—कितना भीषण है इन दृगों का रोष ! कितनी सुधास्निग्ध है इन लोचन-कोरों की कृपा ! जलनिधि उस कृपा का याचक बनेगा ! रोष की एक झाँकी त्रेता के अन्त में मिली और अब भी जैसे वही वाडवाग्नि के रूप में अन्तर का महादाह हो रही है। कृपा ही चाहिये इनकी !

अतल गम्भीर नीलवर्ण, तरङ्गोज्ज्वल-वसन, मौक्तिकाभरण महासागर मूर्त हुआ ! उत्ताल तरङ्गें और राम-श्याम के श्रीचरणों के समीप जैसे मस्तक रख दिया भूमि पर उन्होंने। अरुण अङ्गुष्ठाग्र तनिक आर्द्र हो गये। मुक्ताओं के उज्ज्वल उपहार पुलिन पर बिखर गये ! कहाँ, कहाँ देखते हैं ये दोनों बन्धु इस अर्चा को ! इनकी दृष्टि तो जल पर—असीम, अपार जल पर स्थिर है। क्षण—पुलिन पर एक क्षण बैठते-न-बैठते तो करों में रत्नोपहार लिये साकार समुद्र सम्मुख आ गया ! पृथ्वी पर मस्तक रखकर प्रणिपात किया सागर ने उपहार चरणों के सम्मुख रखकर !

'तुमने ग्रहण के समय स्नानार्थ आये हमारे गुरुदेव महर्षि सांदीपनि के बालक पुत्र का हरण कर लिया ! तुम्हारी भयंकर ऊर्मियों ने ग्रास बना लिया उस अबोध शिशु को ! चलो, झटपट ले आओ उसे !' यह जलद-गम्भीर स्वर--सागर का पूर्णिमा का क्षुब्ध गर्जन भी डूब जाय इसमें। कृष्णचन्द्र ने तो उपहार की ओर दृष्टि ही नहीं डाली ! यह स्वर—इसमें जो आदेश, प्रभुत्व, फटकार है—स्वर ही कहता है--'तुम्हें इसलिये इतना महान नहीं बनाया गया, इतनी शक्ति नहीं दी गयी कि तुम इतनी क्षुद्रता करो ! शिशु-हरण—लज्जा नहीं आती तुम्हें ! और मेरे सम्मुख आये हो ! जो हुआ, पारमाजन करो उसे और स्मरण रखो !' पता नहीं कितनी भर्त्सना लिये है यह स्वर ! श्याम—वह तो इस प्रकार बोल रहा है जैसे कोई महाराजाधिराज बहुत अनुग्रह करके तुच्छ अपराधी को सम्मुख आने का अवसर देकर झिड़क रहा हो और सिन्धु—सिन्धु की तो समस्त सरसता जैसे आज ही स्वेद बन जायगी ! अञ्जलि बाँधे, मस्तक झुकाये, कम्पितगात्र बेचारा सिन्धु !

'प्रभो ! दयामय ! देव' कम्पितकण्ठ सागर ने प्रार्थना की--'मैंने बालक का हरण नहीं किया ! मैं तो अपने भीतर आये पदार्थों को भी पुलिन पर डाल देता हूँ ! मुझसे यह अपराध नहीं हुआ ! मेरे जल में एक दैत्य रहता है पञ्चजन ! वह जल में भीतर ही घूमनेवाला शङ्खरूपधारी महादैत्य--मैं उससे कैसे पार पा सकता हूँ। अवश्य ही उसी असुर ने बालक का हरण किया ! मुझे तो पता भी नहीं.....!'

कहाँ श्याम को अवकाश है यह सब सुनने का। गुरुपुत्र को नीच असुर ले गया और वह समुद्र-जल में है—बस ! एक बार दृष्टि बड़े भाई की ओर गयी ! नेत्रों ने ही कह दिया--'भैया, अभी आया मै ! इस असुर को तनिक देख तो लूँ !' कूद पड़ा वह वैसे ही ! समुद्र को तो अनुगमन ही करना है ! वह यों ही अपराधी है, इन महा महिम के गुरुदेव के पुत्रका हरण करनेवाला उसके जल में आश्रय लिये है !

पञ्चजन—महाअसुर पञ्चजन को अवकाश ही नहीं मिला ! उसके शङ्खमुख का आवरण किन्हीं करों ने नोच फेंका ! भीतर से खींच लिया उसे ! 'शिशुघाती--गुरुद्रोही घृणित असुर !' जैसे नन्हा शिशु मुट्ठी में लेकर वर्षा के छत्ते को फाड़ फेंके—दैत्य के चिथड़े हो गये !

'भैया, यह रहा असुर के शरीर का आवरक महाशङ्ख ! गुरुपुत्र तो असुर के उदर में मिले नहीं !' दो क्षण में कृष्णचन्द्र जलसे बाहर आ गया। 'यमराज से ही पूछना होगा !' प्राण

पृथ्वी में जीवित न हो तो यमलोक ही तो जायगा ! दोनों भाई रथमें बैठ गये। 'संयमनी !' यादव-सम्राट् के इस दिव्य रथ को संयमनी जाने में बाधा क्या है। रथ जा रहा है—यमराज की उस परमप्रिय पुरी संयमनी की ओर--अन्तराल में ऊपर दक्षिण जा रहा है रथ। समुद्र ने भूमि पर मस्तक रखा। पड़े रहें उसके उपहार, खड़ा रहा है बद्धाञ्जलि वह--इन पावन पदों में उपस्थित होने का सौभाग्य मिला उसे, यही क्या कम सम्मान है उसका ? वह क्षुद्र सेवक—वह इतने से ही क्या कृतार्थ नहीं हो गया है ?

यह रही संयमनी—यह दण्डधर महिष-वाहन सूर्यपुत्र धर्मराज की न्याय-नगरी ! पञ्च-जन के शरीर से निकला महाशङ्ख—श्याम ने अधर से लगाया उसे ! दिशाएँ पाञ्चजन्य के मङ्गल-निनाद से गूँज उठीं। परम-पावन पाञ्चजन्य की ध्वनि--नरकों की महाज्वाला शान्त हो गयी, रुरु और महारुरु-जैसे क्रूर सत्त्व जैसे सदा से सौम्य ही हैं। यमदूतों ने दण्ड फेंक दिये ! यातना-ग्रस्त—हाहाकार करते प्राणी--कहाँ गये नरक ? कहाँ गये वे घोरतम दृश्य ? कहाँ गयी वेदना ? वे तो सब-के-सब किसी दिव्यलोक में पहुँच गये दूसरे ही पल।

'क्या हुआ ?' चित्रगुप्त ने धीरे से लेखनी रख दी ! उनके कर्म-संस्कारों के लेख स्वच्छ हो गए ! उनके साक्षी--कहाँ कोई साक्षी है उनके समीप ! क्या हुआ यह ! उन अनुभवी लेखक ने आश्चर्य से देखा !

'मेरे आराध्य ! मेरे दयामय स्वामी !' धर्मराज तो दौड़े जा रहे हैं ! वे परम भागवत--प्रभुका शङ्खनाद पहचानने में क्या भूल हो सकती है उनसे ?

'करुणासिन्धु ! दयासागर ! प्रभो !' धर्मराज का स्वर गद्गद हो गया है। उनकी वाणी स्पष्ट नहीं हो पा रही है। 'यह दण्ड लोक--यह क्रूर निवास और मेरा यह लोक-गर्हित कर्म ! पर प्रभु की कृपा का पारावार अनन्त है ! इस क्षुद्रपर आपने कृपा की ! मेरा यह लोक आज पवित्र हुआ !' ये भागवताचार्य, अर्घ्य, पाद्य, पुष्प--माल्यादि से विधिवत् अर्चन करके अब स्तवन करने लगे हैं ये ! अब इनकी स्तुति का, इनका भाव-विह्वलता का ओर-छोर कहाँ !

'महाराज, हमारे गुरुपुत्र को आप यहाँ ले आये हैं ! आपका कोई दोष नहीं, आप उसके कर्मों के अनुसार धरापर मानव-शरीर का प्रारब्ध समाप्त होने पर ही लाये हैं; किंतु मैं उसे पुनः ले जाना चाहता हूँ। मेरी आज्ञा है—वह जहाँ भी हो, उसे लाकर तत्काल मुझे दे दें !' श्रीकृष्ण को शीघ्रता है। गुरुदेव प्रतीक्षा करते होंगे ! गुरुपत्नी व्यग्र होंगी ! यह दिव्य लोक--यहाँ के क्षण भी धरा के मास होने लगते हैं। यहाँ विलम्ब उचित नहीं। श्यामसुन्दर ने धर्मराज को कुछ कहने का अवसर ही नहीं दिया !

'जो आज्ञा !' श्रुति जिसका निःश्वसित हैं, जो निखिल नियमों का परम नियन्ता है, उसकी आज्ञा ही तो नियम है। धर्मराज को विलम्ब क्या होता।

× × × ×

'श्रीचरणों में और कोई सेवा समर्पित करने का सौभाग्य मिलता !' श्यामसुन्दर हाथ जोड़े मस्तक झुकाये आचार्य के सम्मुख खड़ा हो गया है।

'गुरुदेव की आज्ञा से अनुगृहीत होंगे हम !' यह राम खड़ा है छोटे भाई के समीप।

'मृत बालक--गुरुदेव ने मृत बालक चाहा ! कितने दिन हो गये थे उसे महासागर में विलीन हुए ! ये दोनों भाई ऐसे चल पड़े जैसे कहीं मार्ग में पड़ी तुच्छ वस्तु उठा लानी हो और इतना शीघ्र लौटा इनका रथ !' छात्रों, नगर-वासियों के आश्चर्य का पार नहीं है। 'रथ आया ! राम-श्याम आये ! गुरुपुत्र—गुरुपुत्र को ला रहे हैं !' कितना उल्लास, कितनी उमंग उठी थी। मृत गुरुपुत्र—जैसे बालक कहीं प्रवास से लौटा हो। वही आकृति, वही स्वरूप—अवस्था कुछ बढ़ गयी है और बहुमूल्य वस्त्र--रत्नाभरण--यमराज ने भी इस ब्राह्मण-कुमार की अर्चा की हो तो आश्चर्य क्या !

'राम-श्याम आये !' आचार्य के लोचन रथपर लग गये। गुरुपत्नी उटज से बाहर कब से पथ की ओर दृष्टि लगाये प्रतीक्षा कर रही थीं।

'तात ! मातः !' पुत्र रथ से उतर कर माता-पिता के चरणों पर गिरा—मृत्यु के मुख से लौटा पुत्र; करों ने उसे उठाकर हृदय से लगा लिया। नेत्रों के जल से उसकी अलकों का अभिषिञ्चन चल रहा है; पर यह उसके लिये वात्सल्य उमड़ा है या इतनी देर पर लौटे इन गौर-श्याम के लिये, कौन कह सकता है। नेत्र तो राम-श्याम को ही अपलक देखने में लगे हैं !

'गुरुदेव !' महर्षि जैसे निद्रा से जागे हों। ये राम-श्याम--आचार्य तो भाव के अपार सागर में थकित हो गये थे। वे तो मूर्ति की भाँति स्थिर हो रहे थ। उनके ये दोनों परम सुन्दर शिष्य—इनका महान प्रभाव और यह शील ! अब ये बद्धाञ्जलि सम्मुख खड़े हो गए हैं ! ये आग्रह कर रहे हैं कि गुरुदेव और कोई गुरुदक्षिणा देने की आज्ञा दें। इनका आग्रह—इनका विनय—जैसे कुछ दिया ही नहीं है अब तक। महर्षि ने दोनों को अङ्क में खींच लिया। नेत्रों की धारा द्विगुण हो उठी।

'वत्स, मैंने क्या नहीं पाया ! तुमने गुरु-ऋण की जिस प्रकार निष्कृति सम्पादित की है—कौन समर्थ है इसमें ! मैं तुम्हारा गुरु हुआ, तुम्हारे जैसे शिष्य मिले मुझे, अब क्या कामना शेष रही मेरी। तुम्हारे आचार्य की कोई कामना शेष रह जाय—कैसे सम्भव है ! अब तुम अपने घर लौटो !' घर लौटो—गुरुदेव ने आज्ञा तो दे दी—पर कैसे दी, वे ही जानते हैं ! वाणी रुद्ध हो गयी किसी प्रकार स्वर सम्हाला उन्होंने—'तुम दोनों का भुवन-पावन यश लोक में विस्तीर्ण हो ! ब्राह्मण क्या आशीर्वाद दें तुम्हें—इस लोक एवं पर लोक में भी समस्त छान्दस ज्ञान—निखिल श्रुतियाँ सदा स्मृत रहें !'

दोनों भाइयों ने साष्टाङ्ग प्रणिपात किया ! प्रणिपात किया गुरुदेव को बार-बार, गुरुपत्नी को और सहपाठियों को वन्दन किया, अङ्कमाल दी ! रथ प्रतीक्षा कर रहा है ! चल रहा है यह वन्दन, आलिङ्गन का पुनः पुनः क्रम ! 'राम-श्याम जायँगे !' आश्रम आकुल हो उठा है ! पशु-पक्षी, गुल्म, पादप, लता, तृण तक जसे चञ्चल—व्यथित हो गये हैं। राम-कृष्ण को सबका सत्कार करना है ! सब के स्नेह का सम्मान पाना है। ये दोनों भाई जा रहे हैं--जा रहे हैं घर अपने और इस मङ्गल-अवसर पर अश्रु-निरोध करके स्वस्ति-पाठ करना है। गद्गद स्वरों का वह स्वस्तिपाठ ! श्रुति के स्वर इस स्नेह-कम्पन में ही तो पूर्णतः शुद्ध हो पाते हैं। स्वस्ति-पाठ, वन्दन, आशीर्वाद, जयघोष·····।

× × × ×

'राम-श्याम आ रहे हैं !' पाञ्चजन्य का जलद-गम्भीर स्वर, जैसे यह गूँजती ध्वनि युग-युग की परिचित है ! कब सुनी ? कहाँ सुनी ? प्रश्न ही नहीं है। शङ्खनाद गूँज रहा है—वासुदेव के अधरों से लगा शङ्खनाद ! 'श्रीकृष्णचन्द्र आ रहे हैं !' प्राणों में जो अपार उन्मद स्नेह उमड़ पड़ा है एक साथ—लगता है युगों के पश्चात् लौटे हैं वे लोचनों के परमधन ! कितनी व्यथा, कितनी प्रतीक्षा करते रहे हैं ये प्राण ! एक-एक जन मार्ग पर दृष्टि लगाये रहा है--'अब आयेंगे ! अब आ रहे होंगे !' ये प्रतीक्षा के लगभग साठ-सत्तर दिन--साठ-सत्तर कल्प भी इनसे कदाचित् छोटे ही होते होंगे ! और अब वे आ रहे हैं ! उनकी तो पदचाप भी श्रवण पहचान ले--यह शङ्खनाद ! अस्तव्यस्त वस्त्राभरण, करों में जो आया--वही झपटा उपहार—दौड़े, दौड़ चले ये नगर-जन राजपथ की ओर ! इनके ये वेश, ये उपहार—पर वे जो रथ से आ रहे हैं, ये कहाँ कभी व्यवस्था से की गयी अर्चा स्वीकार करते हैं ! उन्मद प्राणों की अस्तव्यस्त स्नेह-गद्गद अस्पष्ट पुकार ही तो आकर्षित करती है उन्हें। वे इसी अटपटे अर्चन के तो चिर अभ्यासी हैं !

'राम-श्याम आ रहे हैं !' पथ की अट्टालिकाएँ आतुर दृगों से झूम उठी हैं ! दृगों में उत्कण्ठा, उल्लास—पता नहीं क्या-क्या और करों में अक्षत, पुष्प, लाजा, चन्दन, दूर्वाङ्कुर--प्राण तो इतने में

ही सीमित हो गये हैं। 'रथ आ रहा है! मन्द-मन्द मुस्कराते, दृगों से इधर-उधर जीवन-सुधा सिञ्चित करते राम-श्याम आरहे हैं!' पुष्प, माल्य, दूर्वाङ्कुर, दधि, लाजा—मार्ग का आस्तरण उच्च होता जा रहा है।

विप्रों की वेदध्वनि, नारियों के कलगान, मागध-वन्दियों के स्तवन, गृहों की पुष्पवर्षा, वाद्यों के साथ शङ्खों का मङ्गल-नाद और जयघोष—सुरों की सम्पूर्ण सेवा आज धरा की प्रतिध्वनि बन गयी है। ये राम-श्याम—ये कूदे रथ से! यह आचार्य-चरणों में वन्दन और यह भुजा फैलाये दौड़ते महाराज उग्रसेन और वसुदेवजी!

माता देवकी का रत्न-थाल नीराजन की सज्जा लिये उनके करों में प्रतीक्षा कर रहा है द्वार पर और माता का हृदय—राम-श्याम आ रहे हैं! गुरुकुल से शिक्षा लेकर लौट रहे हैं। पूजन, यज्ञ, महोत्सव—आज तो पूरी मधुपुरी श्रीवसुदेवजी के भवन में ही महोत्सव मनायेगी!

कुब्जा

"शृङ्गाररससर्वस्वं शिखिपिच्छविभूषणम् ।
अङ्गीकृतनराकारमाश्रये भुवनाश्रयम् ॥"

—श्रीलीलाशुक

'मैं तुम्हारे घर आऊँगा !' उस दिन राजपथ पर वे नीलसुन्दर मिले; उन्होंने वचन दिया ! उनकी वह मन्द मुस्कान, वह बंक विलोकनि, वह त्रिभुवन-मोहन रूप, वह हृदयहारिणी मधुरवाणी और वह स्पर्श—उनके कोमल करों का वह स्पर्श—वह भी क्या विस्मृत होने की वस्तु है ? प्राणों को वही स्पर्श तो निरन्तर आवृत्त किये है !

कंस--कंस मारा गया--नीलसुन्दर ने मार दिया उस अहंकार की मूर्ति को ! कुब्जा के लिये तो कदर्य कंस तभी मर गया, जब हँसकर उस मयूर-मुकुटी ने उससे अनुलेपन माँगा ! कंस--एक क्षुद्र घृणित कीट--कौन सोचे उसकी बात ! वह दासी—दासी हो तो; पर उस वनमाली पीताम्बरधारी की विना मूल्य क्रीत दासी है वह--उसी की—उसी मोहन की वह दासी है।

'मैं आऊँगा !' उन्होंने वचन दिया है। दासी का क्या मान और क्या अपमान। वह तो दासी है, चाहे जब अपने उस हृदय-हारी स्वामी के द्वार पर जाकर अञ्चल फैला सकती है। वह कोई महारानी है कि उसे बुलाने की अपेक्षा होगी ! वह जायगी—एक बार, एक सहस्र बार जायगी ! लोग हँसेंगे—हँस लेंगे ! वे नीलजलधर झिड़केंगे—सुन लेगी मस्तक झुकाकर ! वह अन्ततः उनके उन अरुण चरणों की दासी ही तो है ! पर उन्होंने आने को कहा है—स्वयं आने का कहा है । तुच्छ दासी— वहाँ जाने से उन्हें संकोच होगा ! लोग पता नहीं क्या कहेंगे उन्हें ! उनका संकोच हो, उनका अयश हो—उन्होंने स्वयं आने को कहा है ! अवश्य आयेंगे वे ! वह प्रतीक्षा करेगी ! यहीं प्रतीक्षा करेगी।

कुब्जा प्रतीक्षा करती है—'वे आते होंगे !' प्रातः अँधेरे ही वह अपनी दासियों से खीझने लगी है ! क्यों उसे शीघ्र जगा नहीं दिया गया ! गृह परिमार्जित नहीं हुआ, उसे अभी कक्ष सज्जित करना है ! शय्या के किसलय, कुसुम बदलने हैं ! अपना शृङ्गार करना है ! वह उनके सम्मुख बिना शृङ्गार किये कैसे जायगी ! बहुत कार्य है और उन्होंने कहाँ कोई समय बताया है। प्रातः-कृत्य करके यदि वे कालिन्दीकूल से इधर ही घूम पड़ें।' कुब्जा व्यस्त हो उठती है। उसकी आतुरता, शीघ्रता की सीमा नहीं है।

'मध्याह्न में अवसर मिलता होगा उन्हें ! कुसुम तो म्लान हो गये ! स्वेद ने मेरा अङ्गराग मलिन कर दिया !' निराशा तो जैसे मन को छूती ही नहीं। उन्होंने स्वयं कहा है—आयेंग ही ! मध्याह्नोत्तर भोजन के पश्चात् विश्राम किया होगा ! ठीक समय तो अब हुआ है ! सायंकाल नगर-भ्रमण को निकल रहे होंगे ! मेरे यहाँ पधारने का उपयुक्त समय तो रात्रि का यह प्रथम प्रहर है ! गुरुजनों का संकोच होगा, अब सब के शयन के अनन्तर पधारेंगे ! बहुत कार्य हैं उन्हें, कल न आ सके—आज आते होंगे !' प्रतीक्षा चल रही है; नित्य नूतन—नित्य आशामय आतुर प्रतीक्षा। 'वे आते होंगे !' गृह बार-बार सज्जित होता है, पूजा के उपकरण परिवर्तित किये जाते हैं, शय्या के किसलय और कुसुम नूतन होते रहते हैं, पता नहीं कितनी बार दर्पण के सम्मुख जाकर वह अपने आप को देखती है। अपना शृङ्गार सुधारती है !

'वे आते होंगे !' जैसे एक अद्भुत उन्माद हो गया है। वह भोजन करने बैठती है और द्वार पर दासी को नियुक्त करके भी मध्य में ही झटपट हाथ धो लेती है। 'शीघ्रता करो !' स्नान पूरा हुआ नहीं और शृङ्गार का आग्रह करने लगती है। कुसुम मुरझा जाते हैं, किसलय म्लान होते हैं,

दिन आता है, संध्या होती है और रात्रि भी चली जाती है। सखियाँ बार-बार नेत्र भर ले ती हैं। दासियाँ दुखी होती हैं। न भोजन की चिन्ता, न स्नान का ध्यान। नेत्रों में निद्रा नहीं, शरीर का ध्यान नहीं। एक धुन, एक आशा—'वे आते होंगे! प्राणों की यह प्रतीक्षा शिथिल होना जानती ही नहीं। अवधि बीतती जाती है और आशा—वह तो क्षीण होने के स्थान में बढ़ती ही जाती है। न घर में चैन, न द्वार पर स्थिरता। 'वे आते तो नहीं!' कक्ष में से अट्टालिका पर भागती है और फिर कक्ष में—'वे आ रहे होंगे! कहीं शय्या के सुमन तो म्लान नहीं हुए!'

× × × ×

'श्रीकृष्णचन्द्र गुरु-गृह चले गये!' कुब्जा की प्रतीक्षा, उसकी आतुरता कहाँ शिथिल हुई। गुरु-गृह—क्या पता यह उसी को सनाथ करने का कोई ढंग निकाला हो उन श्यामसुन्दर ने! गुरुगृह से वे आ भी तो सकते हैं। पता नहीं कब आ जायँ। 'वे आये! उनका रथ आया! वे पुकारते हैं।' कोई आता हो, किसी की पदचाप हो समीप, किसी रथ का शब्द सुनायी दे—सैरन्ध्री कुब्जा को लगता है कि वे ही आ गये। वह चौंकती ही रहती है। कोई किसी को मार्ग में, समीप के सदन में पुकारे—'उन्होंने पुकारा मुझे!' वह दौड़ती है द्वार की ओर।

'श्याम! नीलसुन्दर!' प्राणों की प्यास अपरिसीम है। 'उस दिन उनका वह चिबुक-स्पर्श!' वे कोमल अङ्गुलियाँ तो जैसे अब भी चिबुक पर ही लगी हैं! प्राणों में नित्य-नूतन वह स्पर्श—वे आयेंगे! उन्होंने कहा है!—चल रही है प्रतीक्षा। प्रमादहीन जाग्रत् प्रतीक्षा!

'भगवान् वासुदेव की जय!' यह जयघोष, ये मङ्गल-वाद्य—'वे लौट आये! गुरुगृह से लौट आये वे!' कुब्जा कहाँ जाय! उसे कहाँ अवकाश है किसी महोत्सव में जाने का। वह गृह से बाहर जाय और वे आ जायँ तो? वह तो आतुर हो उठी है। गृहसज्जा, अर्चन-सामग्री, शृङ्गार—नित्य की साज-सज्जा द्विगुण हो उठी है।

'वे गुरुगृह से लौटे हैं, श्रान्त होंगे! पिता माता, बन्धु-बान्धव, सचिव, सभासद्—पता नहीं कौन-कौन मिलते होंगे। उन्हें अवकाश न मिलता होगा। बड़े सरल हैं, लोग छोड़ते ही न होंगे! वे उदार—वे अवश्य आयेंगे! वे आना चाहते होंगे, पर लोग—लोगों को भी तो वह भुवनमोहन रूप परम प्रिय है। वह तो दासी है! किससे स्पर्धा करे वह! वे परमोदार, वे भला, भूल सकते हैं! उन्होंने कहा है—न आना होता, क्यों कहते वे? वह दासी ही तो है, उसे झिड़क देना कितना सरल था! उन्होंने स्नेह से सम्मान किया उसका। उसे आने का वचन दिया और तब वे न आयें, कैसे हो सकता है! वे आते होंगे! अवश्य आते होंगे! क्या हुआ जो अब तक न आ सके! उन्हें अवकाश न मिला होगा! अब तो आयेंगे! आयेंगे ही!' चल रही है प्रतीक्षा! दिन बीतता है, रात्रि आती है और फिर दिन; पर कुब्जा—उसे तो जैसे अभी कल की बात लगती है जब उन सुन्दर ने उसके पैरों पर पैर रखा, कोमल करों से चिबुक उठाया और तनिक-सा झटका—कूबर पता नहीं क्या हो गया! वह कुब्जा—जन्म की त्रिवक्रा सीधी खड़ी थी, खड़े थे वे भुवनमोहन उसके सम्मुख मन्द-मन्द मुस्कराते—'मैं तुम्हारे घर आऊँगा!' उन्होंने ही तो कहा था। वह प्रतीक्षा कर रही है! प्रतीक्षा ही तो करनी है उसे!

प्रतीक्षा—प्रतीक्षा ही तो की जा सकती है उस मयूर-मुकुटी वनमाली की। उस चपल को कोई कहाँ ढूँढ़े! वही जब कृपा करके पधारे—उस धन्य क्षण की प्रतीक्षा ही तो समस्त साधनों का परम रहस्य है। प्रतीक्षा—आकुल प्राणों की सतत जागरूक प्रतीक्षा! और जब किन्ही प्राणों में यह उन्मद प्रतीक्षा आ विराजती है—श्यामसुन्दर कब तक दूर रह सकता है उससे।

× × × ×

'वह आया रथ! वह दीखी ध्वजा! वे आ रहे हैं नीलसुन्दर!' और सचमुच यह आतुर प्रतीक्षा एक दिन तो सफल होनी ही थी। प्राणों की पुकार में ही वह नीलघन बँधा करता है और दासी कुब्जा के द्वार पर वही रज्जु उसे खींच लायी है। रथ—सचमुच रथ आया और द्वार पर रुका! उद्धव के साथ हँसता हुआ कूदा वह भुवन-मोहन! धन्य हो गयी कुब्जा!

कुब्जा—वह उठी, दौड़ी और जैसे भूल ही गयी कि क्या कर रही है ! कहाँ है ! क्या करना है ! आनन्द की जो बाढ़ आयी—एक क्षण उसे अपना ही पता नहीं रहा और एक क्षण—'छः ! कितनी असभ्य, कितनी ग्राम्या है वह ! पता नहीं कैसे नाचने लगी ! कहाँ उलझी ! वे आये हैं और वस्त्र अस्त-व्यस्त हो गया ! माला टूट गयी ! कुसुमाभरण स्रस्त हो गये ! इसी रूप में सत्कार करेगी वह इन त्रिभुवन-सुन्दर का !' सखियों ने बड़े सुअवसर पर सहायता की। आसन, अर्घ्य, पाद्य, अङ्गराग, माल्य, पुष्प—वह क्या यह सब कर पाती ! सखियों ने सहायता की और किसी प्रकार अर्चन सम्पन्न हुआ।

'आप खड़े हैं ! विराजें !' ये उद्धवजी—श्रीकृष्णचन्द्र के साथ आये—उनके सखा ! कुब्जा ने बड़े आदर से सत्कार किया ! स्वयं आसन लाकर रक्खा !

'मैं अनुगृहीत हुआ !' उद्धवजी ने हाथ से स्पर्श किया आसन का, मस्तक झुकाया और भूमि पर ही बैठ गये। 'ये श्रीकृष्णचन्द्र—कितना अपार अनुग्रह है इनका ! ये सखा मानते हैं, साथ रखते हैं ! यहाँ भी आग्रह-पूर्वक साथ लाये !' गुरुदेव भगवान् बृहस्पति के प्रिय शिष्य उद्धवजी क्या शिष्टाचार भूल सकते हैं। यहाँ आसन कैसे स्वीकार करलें वे। यहाँ का आसन तो वन्दनीय ही है उनका।

'मैं अभी आऊँगा !' बंक दृगों की स्मितपूर्ण भाषा—श्यामसुन्दर ने केवल देखा एक बार उद्धवजी की ओर। मस्तक झुका लिया उद्धव ने। जैसे वे कहते हों—'प्रभु, आप जो करें, वही आप को शोभा देगा ! क्या पता किसके मङ्गल के लिये आप कब कैसी लीला करते हैं ! पधारिये—आप पूर्णकाम की लीला में किन पिपासु प्राणों का प्रतिबिम्ब है, यह आपकी कृपा से मैं देख सकता हूँ !' मस्त झुकाये पता नहीं क्या सोच रहे हैं उद्धवजी। इन्हें पता भी न लगा हो कि श्यामसुन्दर समीप से उसी समय भीतर चले गये—तो क्या आश्चर्य ! ये ज्ञानमूर्ति—ये तो अपनी ही चिन्ताधारा में तन्मय हो रहे हैं।

× × × ×

'शृङ्गार अस्त-व्यस्त हो गया ! मुख पर, शरीर में पता नहीं क्यों स्वेद की धारा चल पड़ी ! वस्त्र आर्द्र हो गये !' कुब्जा शीघ्रता से चली गयी भवन में। आज वह जैसे उन्मादिनी हो गयी है। श्यामसुन्दर मोहन आये हैं ! वे विराजे हैं आकर ! वह तो उनके समीप से भाग आयी है—किसी प्रकार उनकी अर्चा करके भाग आयी है। इस अस्त-व्यस्त शृङ्गार को लेकर—इस दशा में कैसे रहे उनके सम्मुख।

'स्नान, वस्त्र, अङ्गराग, आभरण, माल्य, ताम्बूल, पुष्प, सज्जा—सखियाँ शीघ्रता नहीं करतीं ! इनके कर चलते ही नहीं !' अन्तर में जो उत्सुकता है, किसी के कर कैसे उस गति से कार्य कर सकते हैं। किसी प्रकार शृङ्गार पूर्ण हुआ 'उन भुवनसुन्दर की अर्चा करनी है, वे आये हैं ! प्रतीक्षा कर रहे हैं ! वे कक्ष में आ गये हैं और आज यह अकस्मात् लज्जा ! सखियों ने जो जीवनदायी उन्मद द्रव दे दिया है वह प्रेरणा न दे तो कदाचित् जाया ही न जा सके ! वे कक्ष में आ गये हैं ! आते ही सीधे कक्ष में आ गये ! उन्हें अपने ही इस सदन में कहाँ पूछना था और अब बुला रहे हैं ! कितने स्नेह से बुला रहे हैं !' कुब्जा के चरण जैसे उठते ही नहीं। लज्जा—पता नहीं कहाँ से यह लज्जा का अपार भाव दबाये दे रहा है आज और वे उठे, वे उठे वे हृदयहारी ! उन्होंने स्वयं बढ़कर अपने कमल-करों में उसका कर ले लिया !

× × × ×

'अब तुम कुछ दिन तो यहीं रहो ! मैंने कितनी प्रतीक्षा की, कितने दिनों पर आये तुम ! अब तुम्हें मैं जाने नहीं दूँगी ! कमलनयन, मैं तुम्हारा सङ्ग छोड़ने में समर्थ नहीं हूँ ! अब मुझे छोड़ो मत !' धन्य हो गयी कुब्जा ! श्रीकृष्णचन्द्र ने उसे अपनाया, स्वीकार किया ! उसकी चिर अभीप्सा पूर्ण हुई और अब उसका यह आग्रह—यह अपनत्व-पूर्ण आग्रह—मोहन इसकी उपेक्षा कर देगा ? कर सकेगा ? उद्धवजी प्रतीक्षा कर रहे हैं, विलम्ब हो रहा है। उसे लौटना है शीघ्र और यह आग्रह—यह कुब्जा का आग्रह—वह रथपर आ गया है; पर क्या कुब्जा के लिये ! उस भवन से भी भला, कहीं जा सकता है वह।

—❀○❀○❀—